हिन्दी रगमन्च का उद्भव और विकास

—डॉ विश्वनाथ शर्मा—
एम ए पी-एच डी

उपा पब्लिशिंग हाउस
जोधपुर ० जयपुर ० दिल्ली

आदरणीय गुरुदेव

डॉ सूर्य प्रसाद जी दीक्षित

(रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्व विद्यालय)

को सादर समर्पित

प्राक्कथन

अपनी रंगानुभूति और चिरसंचित रंग प्रेम को प्रबंध रूप में प्रस्तुत करते हुए आज मैं विशेष मनस्तुष्टि का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी रंगरुचि को लेकर तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा० कुं० चन्द्र प्रकाश सिंह जी ने सन् 1968 में मुझे इस विषय पर कार्य करने का आदेश दिया था। उनके स्थानान्तरण के पश्चात गुरुवर डा० सूर्य प्रसाद जी दीक्षित ने कृपा कर अपना निदेशन प्रदान कर इस कार्य को सम्पन्न कराया। तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा० मोतीलाल जी गुप्ता एवं जोधपुर विश्वविद्यालय के अधिकारियों की कृपा से मुझे पर्याप्त यात्रा अनुदान भी प्राप्त हुआ। तदोपरान्त विभागाध्यक्ष डा० नामवर सिंह जी से भी मुझे इस कार्य में प्रोत्साहन मिला, अतः इन सभी महानुभावों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिन्दी रंगमंच सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करने के लिए मैंने जयपुर, दिल्ली, इलाहाबाद, वाराणसी, कलकत्ता, बम्बई की यात्रा की। जयपुर में सर्व श्री भारत रत्न भार्गव, वेणी प्रसाद शर्मा, नन्दलाल शर्मा, रणवीर सिंह, कर्मवीर माथुर आदि ने जयपुर की रंगकला से मुझे अवगत कराया। हिन्दी के पारसी रंगमंच की जानकारी मुझे राम प्रकाश सिनेमा के प्रवेश द्वार पर संगमरमर शिला पर उत्कीर्ण कुछ पंक्तियों से प्राप्त हुई जिससे सम्बन्धित पारसी मंच की जानकारी प्राप्त कराने में श्री गिरीश के० सुमन ने अत्यधिक सहयोग दिया। मैं इन सबों के प्रति आभारी हूँ।

दिल्ली में सर्व श्री इ० अल्काजी, नेमिचन्द्र जैन, ओम शिवपुरी आदि से मिला। इ० अल्काजी ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का छोटा प्रेक्षालय मुझे दिखलाया तथा विद्यालय की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली से अवगत कराया और श्री नेमिचन्द्र जैन ने प्रमुख रंगकर्मियों एवं रंग संस्थाओं के विषय में विस्तृत चर्चा की। गीत एवं नाटक प्रभाग दिल्ली के अधिकारियों के आदेश से श्री सतीश कपूर ने वेशभूषा, रंग सज्जा,

छत्रनियम्रो ग्रौ' प्रकाश म न्का तथा वहा का काय प्रणाली के बारे में मुझे बतलाया। रगलपन की नवीनतम विधिया मुझे समझन को मिली श्री अजीवाबू स। श्रोम शिवपुरी मर पुरान सहरगकर्मी है। उ होन ग्रपनी सस्था दिशान्तर' की उपलब्धियों तथा नाटक 'ग्राधे अधूरे के फिल्माकरण के प्रयत्नो क विषय स मुझे ग्रवगत कराया। मैं इन सभी कृपालु सज्जनो की दया दृष्टि को कभी नहीं भूल सकता।

लखनऊ म सवश्री ग्रमृत लाल जी नागर डा भ नूलाल सुतानिय ग्रन त', जयन्त शमा 'कमल' शरद नागर, श्रो एव श्रीमती माया गोवि द स मरा साक्षात्कार हुग्रा। श्रद्धेय ग्रमृतलाल जी नागर ने हि दी रगमच के वर्षों पुरान इतिहास को मर सामने रखा ग्रौर श्री शरद नागर ने 'जानकी मगल नाटक की फोटो कापी देकर मुझ कृतकृत्य किया। डा ग्रनात न कानपुर के रगकम से तथा श्री शरद नागर ने 'भारतेन्दु रगमच एव ग्रनुसधान केन्द्र' की गतिविधियो से मुझ ग्रवगत कराया। नाट्य निदेशक श्री जयदव शर्मा कमल क सौज य से मुझ रेडियो रूपक की प्रस्तुति कला का ज्ञान मिला। माया गोविन्द ने भी मुझे ग्रपन रगमचीय सस्मरण दिए एतदथ इनके प्रति मैं ग्रपना ग्राभार प्रकट करता हू।

इलाहाबाद म ग्रादरणीय डा रामकुमार वर्मा डा सत्यव्रत सिन्हा, सव श्री विनोद रस्तागी विजय बोस वाचस्पति गराल देवी शकर ग्रवस्थी वीरेन्द्र शर्मा तथा ग्रोकार शरद ग्रादि का मुझे दशन लाभ हुग्रा। डा रामकुमार जी वर्मा से पुरानी मच तकनीक एव उसके प्रारूप तथा उनकी रगानुभूति, श्री विनोद रस्तोगी ग्रादि की ग्रनुकम्पा से रेडियो नाट्य प्रसारण तकनीक की यथोचित जानकारी प्राप्त हुई। श्री रस्तोगी एव विजय बोस ने मुझे कानपुर के हिन्दी रगकम सम्ब धी सामग्री भी दी। श्री देवीशकर ग्रवस्थी की कृपा से मुझे बात रगमच की जानकारी मिली। श्री ग्रोंकार शरद से मुझ श्री पृथ्वीराज कपूर श्री बेनीपुरी, डा लाल श्री ग्रश्क तथा इप्टा के विषय मे सूचनाए मिली। श्री वीरेन्द्र शर्मा क ग्रद्वितीय सहयोग से मुझे ग्रखिल भारतीय नाट्यायोजना क बारे मे ज्ञानार्जन हुग्रा ग्रत मैं इन सभी महानुभावों क प्रति ग्रनुग्रहीत हू।

वाराणसी म मैंन ग्राचाय डा हजारी प्रसाद जी द्विवदी सवदानद जी सुधाकर जी पाण्डेय रुद्र' काशिकय कु वर जी ग्रग्रवाल ग्रादि विद्वानो के दशन किए। डा हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने श्री जयशकर प्रसाद क विषय मे ग्रपनी स्मृति मुझे बतलाई। रुद्र जी ने हिन्दी रगमच के व्यावहारिक ज्ञान के बारे में मुझे

जानकारी दी। सदानन्द जी ने अपनी रंगानुभूति से अवगत कराके मुझे 'रंगमंच' नामक उनकी पुस्तक भी उपहार स्वरूप दी। रामचन्द्र जी नॉटक वाले से पारसी नाट्य कम्पनियों के विषय में जानकारी मिली। श्री लक्ष्मण प्रसाद जी की कृपा से राम नगर की रामलीला के विषय में मुझे अनेक सूचनाएं मिली। अत मैं इन सब का ऋणी हूं। भारतेन्दु भवन में मैंने पुरानी नाट्य सज्जा की सामग्री देखी, और रामनगर दुर्ग के सर्वेक्षण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की पखावज देखी जिनसे भारतेन्दु जी की कला का प्रमाण प्राप्त हुआ। मैंने अयोध्या रंगमंच से लेकर 5 मील के घेर में प्रसारित सम्पूर्ण रामलीला मंचों में से बहुत से मंचों का अवलोकन भी किया।

कलकत्ता में रंगनाटिकाओं के सुप्रसिद्ध निदेशक एवं कवि श्री गजानन्द वर्मा कलाकर्त्री डा प्रतिभा अग्रवाल, सर्व श्री श्यामानंद जालान, केशव चमड़िया राजेन्द्र शर्मा और कृष्ण कुमार आदि से साक्षात्कार हुआ। वहां अनामिका पदातिक भारत भारती, आदि संस्थाओं के विषय में जानकारी मिली। मैंने यहां 'आधे अधूरे' का पूर्वाभ्यास तथा प्रस्तुतीकरण भी देखा। इन सबों से परिचय कराने और रंगमंच सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करवाने में श्री वर्मा की अत्यधिक सहायता रही। श्री वर्मा ने 'वाटर वेल मंच' और 'सक्र स्कोप' में भी मुझे परिचित कराया। इन सभी महानुभावों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

बम्बई में सारिका सम्पादक श्री कमलेश्वर ने मेरी बड़ी मदद की। सिने जगत के महान् ख्यातिप्राप्त अभिनेता (आधुनिक नाट्याचार्य) श्री पृथ्वीराज जी कपूर तथा श्री सज्जन जी ने अपने बाल्यकाल से लेकर अब तक की रंगानुभूतियों से मुझे अवगत कराया। पृथ्वीराज जी और सज्जन जी ने कई अमूल्य ग्रन्थ देकर मुझे अनुगृहीत किया। इनके अतिरिक्त श्री सज्जन जी ने 'वन मन शो' और स्टूडियो में शूटिंग दिखाकर फिल्म तकनीक तथा रंग रंजन विधी में मुझे अवगत कराया ताकि मैं नाटक और फिल्म के तकनीकी और अभिनय अन्तर को स्पष्ट करने में सफल हो सकूं। नाट्य सम्राट स्व पृथ्वीराज जी कपूर के द्वारा प्रदत्त ग्रन्थ पुञ्ज आज भी उनके सान्निध्य प्रेम, अथाह ज्ञान सहृदयता की याद दिला रहे हैं। ऐसे उदारमना सज्जनों की अहैतुकी कृपा के समक्ष मैं विनयावनत हूं।

जोधपुर में संगीत नाट्य अकादमी की सचिव सुश्री सुधा राजहंस सर्वश्री रानेन्द्रसिंह बारहट, डाऊन्नोल आचार्य की मुझ पर विशेष कृपा रही। गीत एवं नाटक प्रभाग जोधपुर के अधिकारी श्री आर के पिल्लई ने मुझे भारत सरकार के

ध्वनियंत्रों और प्रकाश मञ्चों तथा वहा की कार्य प्रणाली के बारे में मुझे बतलाया। रंगलपन का नवीनतम विधियां मुझे समझने को मिलीं श्री अजीबाबू से। श्री ओम शिवपुरी मेरे पुराने सहरंगकर्मी हैं। उन्होंने अपनी संस्था दिशान्तर' की उपलब्धियों तथा नाटक 'आधे अधूरे' के फिल्मीकरण के प्रयत्नों के विषय से मुझे अवगत कराया। मैं इन सभी कृपालु सज्जनों की दया दृष्टि को कभी नहीं भूल सकता।

लखनऊ में सर्वश्री अमृत लाल जी नागर डा भृंगूलाल सुल्तानिय 'अनन्त', जयदेव शर्मा 'कमल' शरद नागर श्री एवं श्रीमती माया गोविन्द से मेरा साक्षात्कार हुआ। श्रद्धेय अमृतलाल जी नागर ने हिन्दी रंगमंच के वर्षों पुराने इतिहास को मेरे सामने रखा और श्री शरद नागर ने जानकी मंगल नाटक की फोटो कापी देकर मुझे कृतकृत्य किया। डा अनन्त ने कानपुर के रंगकर्म से तथा श्री शरद नागर ने भारतेन्दु रंगमंच एवं अनुसंधान केन्द्र', की गतिविधियों से मुझे अवगत कराया। नाट्य निर्देशक श्री जयदेव शर्मा कमल के सौजन्य से मुझे रेडियो रूपक की प्रस्तुतिकला का ज्ञान मिला। माया गोविन्द ने भी मुझे अपने रंगमंचीय संस्मरण दिए एतदर्थ इनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

इलाहाबाद में आदरणीय डा रामकुमार वर्मा डा सत्यव्रत सिन्हा, सर्व श्री विनोद रस्तोगी विजय बोस वाचस्पति गरोल देवी शंकर अवस्थी वीरेन्द्र शर्मा तथा ओंकार शरद आदि का मुझे दर्शन लाभ हुआ। डा रामकुमार जी वर्मा से पुरानी मंच तकनीक एवं उसके प्रारूप तथा उनकी रंगानुभूति, श्री विनोद रस्तोगी आदि की अनुकम्पा से रेडियो नाट्य प्रसारण तकनीक की यथोचित जानकारी प्राप्त हुई। श्री रस्तोगी एवं विजय बोस ने मुझे कानपुर के हिन्दी रंगकर्म सम्बन्धी सामग्री भी दी। श्री देवीशंकर अवस्थी की कृपा से मुझे बाल रंगमंच की जानकारी मिली। श्री ओंकार शरद से मुझे श्री पृथ्वीराज कपूर श्री बेनीपुरी, डा लाल श्री अश्क तथा द्रष्टा के विषय में सूचनाएं मिलीं। श्री वीरेन्द्र शर्मा के अद्वितीय सहयोग से मुझे अखिल भारतीय नाट्यायोजना के बारे में ज्ञानार्जन हुआ अतः मैं इन सभी महानुभावों के प्रति अनुगृहीत हूं।

वाराणसी में मैंने आचार्य डा हजारी प्रसाद जी द्विवेदी सर्वदानंद जी सुधाकर जी पाण्डेय रुद्र काशिकेय कुंवर जी अग्रवाल आदि विद्वानों के दर्शन किए। डा हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने श्री जयशंकर प्रसाद के विषय में अपनी स्मृति मुझे बतलाई। रुद्र जी ने हिन्दी रंगमंच के व्यावहारिक ज्ञान के बारे में मुझे

जानकारी दी। सदानन्द जी ने अपनी रंगानुभूति से अवगत कराया मुझे 'रंगमंच' नामक उनका पुस्तक भी उपहार स्वरूप दी। रामचन्द्र जी 'नाटक वाले' से पारसी नाट्य कम्पनियों के विषय में जानकारी मिली। श्री लक्ष्मण प्रसाद जी की कृपा से राम नगर की रामलीला के विषय में मुझे अनेक सूचनाएं मिलीं। अत मैं इन सब का ऋणी हूं। भारतेन्दु भवन में मैंने पुरानी नाट्य सज्जा की सामग्री देखी, और रामनगर दुर्ग के सर्वेक्षण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की पखावज देखी जिनसे भारतेन्दु जी की कला का प्रमाण प्राप्त हुआ। मैंने अयोध्या रंगमंच से लेकर 5 मील के घेरे में प्रसारित सम्पूर्ण रामलीला मंचों में से बहुत से मंचों का अवलोकन भी किया।

कलकत्ता में नृत्यनाटिकाओं के सुप्रसिद्ध निदेशक एवं कवि श्री गजानन वर्मा कलाकृर्ती डा. प्रतिभा अग्रवाल, सर्व श्री श्यामानंद जालान, केशव चमरिया रवीन्द्र शर्मा और कृष्ण कुमार आदि से साक्षात्कार हुआ। वहां अनामिका अदाकार भारत भारती आदि संस्थाओं के विषय में जानकारी मिली। मैंने यहां आधे अधूरे का पूर्वाभ्यास तथा प्रस्तुतीकरण भी देखा। इन मंचों से परिचय कराने और रंगमंच सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करवाने में श्री वर्मा का अत्यधिक सहायता रही। श्री वर्मा ने 'वाटर वले मंच' और 'शकर स्कोप' से भी मुझे परिचित कराया। इन सभी महानुभावों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

बम्बई में सारिका सम्पादक श्री कमलेश्वर ने मेरी बड़ी मदद की। सिने जगत के महान् ख्यातिप्राप्त अभिनेता (आधुनिक नाट्याचार्य) श्री पृथ्वीराज जी कपूर तथा श्री सज्जन जी ने अपने बाल्यकाल से लेकर अब तक की रंगानुभूतियों से मुझे अवगत कराया। पृथ्वीराज जी और सज्जन जी ने कई अमूल्य ग्रन्थ देकर मुझे अनुगृहीत किया। इनके अतिरिक्त श्री सज्जन जी ने वन मैन शो और स्टूडियो में शूटिंग दिखाकर फिल्म तकनीक तथा रंग-रंजन विधि से मुझे अवगत कराया ताकि मैं नाटक और फिल्म के तकनीकी और अभिनय अंतर को स्पष्ट करने में सफल हो सकूं। नाट्य सम्राट स्व. पृथ्वीराज जी कपूर के द्वारा प्रदत्त ग्रन्थ मुझे आज भी उनके सानिध्य प्रेम अथाह ज्ञान सहृदयता की याद दिला रहे हैं। ऐसे उदारमना सज्जनों की अहैतुकी कृपा के समक्ष मैं विनयावनत हूं।

जोधपुर में संगीत नाटक अकादमी की सचिव सुश्री सुधा राजहंस सर्वश्री राजेन्द्रसिंह बारहट, देवीलाल आचार्य की मुझ पर विशेष कृपा रही। गीत एवं नाटक प्रभाग जोधपुर के अधिकारी श्री आर. के. सिन्हा ने मुझे भारत सरकार के

सूचना एव प्रसारण मत्रालय की सास्कृतिक योजनाओ के बारे मे जानकारी दी। मेरे परममित्र श्री पूसाराम प्रजापति का इस ग्रथ के निर्माण म आद्योपा त सहयाग रहा। इन सबों का मैं बहुत आभारी हू।

इस शोध के दौरान मेरी धम पत्नी श्रीमती सरला शर्मा न मुझ अत्यधिक सहयोग दिया। मेर ज्येष्ठ भ्राता स्व श्री मुकन मुरारीलाल जी, श्री देवीदत्तजी एव पूजनीया मा स मुझे अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। पूज्य पिताजी स्व श्री प सामरीमल जी क शुभ आशीर्वाद स तो यह काय सम्पन्न ही हुआ है। आभार प्रदर्शित करके भी मैं इनका भार उतार नही सकता। इस शोध प्रवध को अथक परिश्रम करके पूरा कराने का श्रेय मेरे पूजनीय गुरू डा सूय प्रसाद जी दीक्षित को है। मेरा इसमें कुछ नहीं है। वस्तुत यह सब इन्ही का है।

मेरा विश्वास है इस ग्रथ की विषय सामग्री हिन्दी के रगमचीय अध्ययन की एक कडी सिद्ध होगी। श्री अमृतलाल जी नागर तथा डा कु चन्द्रप्रकाश सिंह जी ने कहा था— हिन्दी रगमच के इतिहास न 100 वष पूरे कर लिए है लकिन किसी न उसके विषय म सौ पन्ने भी नहीं लिखे। (प्रतिवेदन प्रयाग पृ 11) और 'भारते दु के आदश से अनुप्राणित अनेक साहित्यकारो और साहित्य प्रेमियों न स्थान स्थान पर नाटक मडलियो की स्थापना कर हिन्दी नाटक और रगमच के अभ्युत्थान का जो सगठित प्रयास किया वह किसी नाटक साहित्य के इतिहास का सुवर्णाक्षरों मे लिखने योग्य अत्य त गौरवशाली अध्याय है खद है वह अब तक विस्मृत है हिन्दी नाटय साहित्य और रगम च की मीमासा पृ 336 मैंने इन्ही म गलआशाओं को कार्यान्वित करने का प्रयास किया है।

आज हिन्दी रगमच से सम्बधित यद्यपि कई ग्रथ उपलब्ध हैं फिर भी बहुत कुछ ऐसा है जो अभी अकथित रह गया है। स्थानाभाव के कारण कई बातें यहा छूट भी गई है क्योंकि मेरी अपनी सीमाए है फिर भी अपने अध्यवसाय और अनुभूति क्षेत्र से बटोर कर मैंने इसम अधिक स अधिक सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दीर्घावधि की प्रतीक्षा के बाद आज यह ग्रथ पुस्तक रूप मे साकार हुआ है। यह सब उषा पब्लिशिंग हाउस जोधपुर की ओर स श्री पुरुषोत्तम जी थानवी की कृपा का ही फल है। अनुबधन म मेरे तथा थानवी जी क सहयोगी मित्र श्री भगवान फुलवानी जी की प्रमुख भूमिका रही है जिनके शुभ प्रयासो से यह सब सभव हुआ

सका। सुबोध प्रिंटिग प्रेस के श्री अमरजी ने इसे प्रकाशित करने में अपना असीम सहयोग दिया है। मैं प्रकाशक जी तथा सुबोध प्रिंटिग प्रेस के सभी कार्यकर्ताओं विशेषत श्री उम्मेदसिंह शक्तावत के प्रति आभार प्रकट करता हू। यथा संभव सतर्कता के बावजूद प्रकाशन मे त्रुटियां रह जाती हैं अस्तु मैं क्षमा प्रार्थी हू। इन शब्दों के साथ मैं अपनी अद्यावधि संचित राशि को पाठकों, विद्वानो एवं रंगकर्मियो के समक्ष रखते हुए आशा करता हू कि यत्किंचित उपलब्धियां मुझे भावी दिशा इंगित करेंगी और सीमाएं मुक्त नवनवोपलब्धियों का अवसर प्रदान करेंगी।

डॉ विश्वनाथ शर्मा
विष्णु-सदन
107 महाराजा अजीतसिंह कालोनी
बाल निकेतन रोड, जोधपुर (राजस्थान)

महा शिवरात्रि
25 फरवरी 1979

अनुक्रमणिका

अध्याय—1

रंगमंच का स्वरूप निरूपण

अध्याय—2

पूर्ववैदिक एवं वेद कालीन रंगमंच

अध्याय—3

हिन्दी का लोकमंच

अध्याय—4

हिन्दी का प्रथम मंचित नाटक

अध्याय—5
हिन्दी का पारसी रगमच

अध्याय—6
हिन्दी का आधुनिक रगमच

अध्याय—7
हिन्दी का समसामयिक रगमच

अध्याय — 1

'रंगमंच का स्वरूप-निरूपण'

'रंग' शब्द की व्युत्पत्ति

व्युत्पत्यथ के अनुसार रंग एक पुल्लिंग संज्ञा है। यह शब्द संस्कृत के 'रञ्ज्' धातु से व्युत्पन्न माना जाता है। व्युत्पत्य के अनुसार 'रंग' शब्द का अर्थ है पु (सं० रंग, (गति) + घञ् या रञ्ज (राग) + घञ् अर्थात् किसी द्रश्य पदार्थ का वह गुण जो उसके आकार या रूप से भिन्न होता है और जिसका अनुमान केवल आँखों से होता है। वर्ण। जैसे नीला, पीला, लाल सफेद या हरा रंग।[1] 'रंग' शब्द की व्युत्पत्ति रागा नामक धातु से भी बतलाई गयी है।[2]

'रंग' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जैसे नृत्य, गीत, अभिनय स्थल, युद्ध-स्थल, वर्ण, यौवन प्रभाव, व्यापार, अवस्था, क्रीडा उमंग, आनन्द, काण्ड, दृश्य, प्रसन्नता कृपा अनुराग, ढंग चाल, तर्ज, भांति, प्रकार, दशा, रंग, शोभा सौन्दर्य आदि।[3]

'रंग' का अर्थ अभिनय भी है। अभिनेता को अन्य सम्बन्धों के साथ-साथ 'रंगा' भी कहा जाता है।[4]

लोकोक्तियों मे 'रंग रंग है' का अर्थ मादकता से लिया जाता है। 'रंग' शब्द का अर्थ 'क्रीडा-क्षेत्र' तथा 'नाटकीय रंगमंच दोनों के लिये भी प्रचलित बतलाया गया है।[5]

---

1 मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) सपादक रामचन्द्र वर्मा—पृष्ठ 43

2. हिन्दी शब्द सागर (पांचवाँ खण्ड) सपादक श्यामसुन्दरदास—पृष्ठ 2869

3 वही, पृष्ठ : 2869 एवं 2871

4 रंगमंच—श्री सवदानन्द पृष्ठ 37

5 संस्कृत नाटक तथा अभिनय भारतीय नाट्य साहित्य, डा श्री राघवन—पृष्ठ , 3

रंग का अर्थ 'रंगा अर्थात् रंग अथवा नाट्य से सम्बद्ध व्यक्ति' से भी लिया गया है।[1] अगर य हरकतें कानूनी रंग लेंगी' पंक्ति[2] को पढ़कर 'रंग का अर्थ' रूप अथवा स्वरूप' से भी लगाया जा सकता है।

संस्कृत नाट्यकाल में 'जहाँ अभिनय होता था उसे रंगभूमि या केवल 'रंग' कहा करते थे। रंग + अवतरण अर्थात् रंगावतरण शब्द का प्रयोग भी मिलता है, जिसका अर्थ है रंगभूमि में उतरना।[3]

आचार्य भरत ने 'रंग' के पर्याय रूप में रंगपीठ, रंगमंडप, आदि शब्दों का प्रयोग किया है जिसका अर्थ मंच से ही है।

'रंग' शब्द की महत्ता--

रंग शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए इसके आगे पीछे कई शब्दों उपसर्गों एवं प्रत्ययों को जोड़कर नए-नए अर्थबोध कराये जाते हैं, यथा-रूपरंग रंगरूप रंगमंच, रंग दर्शन, पूर्वरंग रंगढंग रंगशीर्ष, रंगशिल्प, रंगमंग नारंग सारंग तुरंग सुरंग कुरंग भदरंग, बदरंग रंगकर्मी रंगक्षत्र रंगभूमि, रंगस्थल, नवरंग नटरंग रंगवाद्य, रागरंग रासरंग अंग-रंग रंगपूजा रंगयोग, रंगलोक, रंगतंत्र रंगमंडप रंगदीपन (Light effect) रंगलेपन रंगचर्या, रंगत, रंगला, रंगद्वार रंगविद्याधर रंगजीवक, रंगावतार अरंग आदि।

यद्यपि इन सभी प्रयुक्त शब्दों का अपने-अपने स्थान पर महत्व है फिर भी कुछ शब्द— जैसे मंचसज्जा प्रकाश व्यवस्था प्रदर्शन शैली, कथा शिल्प रंगशिल्प (रंगतंत्र) रंगकर्मी, रंगपूजा, रंगलेपन आदि का अपेक्षाकृत विस्तृत विधान है।

'मंच' शब्द की व्युत्पत्ति—

व्युत्पत्यर्थ के अनुसार 'मंच' पुल्लिंग (सं० मंच (उच्च होना) + घञ) संज्ञा है, जिसके अर्थ हैं खाट, खटिया सभा समितियों में ऊंचा बना हुआ मण्डप जिस पर बैठ कर सब साधारण के सामने किसी प्रकार का-कार्य किया

1 हिन्दी लोक नाटक परम्परा और नाट्य रूढ़ियां भारतीय नाट्य साहित्य डा० सुरेश अवस्थी— पृष्ठ 411

2 धर्मयुग फिल्म सोसायटियों के लिए ही सेंसर की कैंची खामोश क्यों ? श्री सत्य देव दुबे (8 मार्च 1970 पृष्ठ 42)

3 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डा दशरथ ओझा—पृष्ठ 47

जाये, स्टेज रंगमंच, विशिष्ट क्रिया-कलापों के लिए उपयुक्त क्षेत्र, जैसे—राजनीतिक मंच, आदि होते हैं।[1]

साधारणतया मंच का अर्थ माचा (खटिया) का पर्यायवाची होता है। मंच का अर्थ पलंग प्रतिष्ठा का स्थान, मचान रंगमंच व्यास गद्दी आदि से भी लगाया जाता है।[2] राजस्थानी भाषा में मांचा शब्द चारपाई व खटिया के लिये प्रयुक्त होता है। छोटे माच के स्त्रीलिंग-स्वरूप को मचली कहते हैं। उदाहरणार्थ

(1) आप मांचे माथे विराजो सा।

(2) मचली कमरे रै माय डाल दे।

बोलचाल में 'मांचा शब्द माचा' से भिन्न है। 'माचा' का राजस्थानी भाषा में अर्थ हो जाता है— मचना जैसे शोर मचना। इसी तरह राजस्थानी भाषा के स्त्रीलिंग स्वरूप को 'मचनी' के अतिरिक्त यदि मचली कहेंगे तो उसका अर्थ भिन्न हो जायेगा। यहां मचली मचलने के लिये और मचली' खटिया के लिये प्रयुक्त है और माचा या 'मचनी' शब्दों पर अनुस्वार (चन्द्र बिन्दु) लगने से ये शब्द मंच शब्द के मौलिक स्वरूप को अपेक्षा अधिक निकट हैं।

मंच शब्द के कई तद्भव रूप भी हैं जैसे— माच, माचा मांचा मचान आदि। इनमें माच' शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। मालवी में यह शब्द मंच बांधने और उस पर अभिनीत किए जाने वाले ख्याल (खेल) दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है।[3]

डा० सुरेश अवस्थी ने सिद्ध किया है कि मंच एक प्रकार का निरपेक्ष स्थान मात्र होता है और किसी विशेष व्यापार स्थल का आभास नहीं देता।[4]

'मंच को अंग्रेजी में प्लेट फार्म (Platform) कहते हैं। मंच पु० (सं०) मुख्यतः ऐसे बड़े चबूतरे को कहते है, जो ईंटों पत्थरों आदि के चारों खम्भों या बाँसों और लकड़ी के तख्तों से पाट कर किसी विशिष्ट कार्य के लिए

1 मानक हिन्दी कोश चौथा खण्ड, सम्पादक—रामचन्द्र वर्म्मा पृष्ठ 254
एवं हिन्दी शब्द सागर पाँचवा खण्ड, पृष्ठ 2608

2 संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृष्ठ 280

3 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा० श्याम परमार पृष्ठ 28

4 हिन्दी लोक नाटक परम्परा और नाट्य रूढ़ियां, सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ 411

बनाया गया हो। यह एक ऐसे क्षेत्र का भी वाचक है जिसमें कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे राजनीतिक मंच साहित्यिक मंच आदि।[1]

भरत के नाट्य शास्त्र में रंग पूजा शब्द का अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। स्वाभाविक रूप से इसका शाब्दिक अर्थ मंच पूजा ही होता है। 'रंग' शब्द का अर्थ भरत ने मंच से ही लिया है

मर्त्यलोके ध्ययवेद शुभां पूजामवाप्स्यति।
अपूजयित्वा रंग तु नव प्रेक्षा प्रवर्तते॥[2]

भरत के अनुसार रंग शब्द का अर्थ मंच अथवा रंगपीठ अथवा रंगमंडप ही है। नाट्य शास्त्र मे वर्णित सूत्रधार स्वेत पुष्प विखेरता हुआ मंच की परिक्रमा करता था। रंगमंच के देवता को प्रणाम करके वह स्वर्णिम घट से पानी की अंजली भरकर उसे चारों ओर छिड़क कर, स्थल को पवित्र करता था। तदुपरांत वह देवराज इन्द्र का 'जजर' उठाकर उसे पुष्प अर्पित करता था और पृथ्वी को शीश नवाकर रंगमंच को प्रणाम करता था।[3] इस अनुष्ठान के आधार पर रंगपूजा का अर्थ मंच के पूजन से ही है। तात्पर्य यह है कि रंग का अर्थ 'मंच' हो सकता है और मंच का अर्थ रंग भूमि तथा मंचन का अर्थ नाट्य व्यापार हो गया है।[4] कई जगह 'रंगमंच' का भावार्थ प्रयत्न लाघव के अनुसार 'मंच' से भी लिया गया है। अंग्रेजी का 'स्टेज' शब्द रंगभूमि नाट्य साहित्य और नाटयवृत्ति के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[5] आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार "Stage is a platform of Boards the part of a theatre on which the actors perform the acting performance[6]

1 शब्दार्थ दर्शन रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 473
2 नाट्य शास्त्र प्रथम अध्याय प्रो० भोलानाथ शर्मा पृष्ठ 47
3 रंगमंच, बलवन्त गार्गी पृष्ठ 21–22
4 (अ) हिन्दी लोक नाट्य का शैली शिल्प डा० दशरथ ओझा, गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ 70 व 80
(आ) प्रामाणिक हिन्दी कोश सम्पादक रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 943
(इ) प्रसाद नाट्य और रंग शिल्प डा० गोविन्द चातक पृष्ठ 256
5 कामप्रहेंसिव इङ्गलिश हिन्दी डिक्शनरी, सम्पादक डा० बाहरी पृष्ठ 1411
6 दि पाकेट आक्सफोर्ड डिक्शनरी स० फोलर एण्ड फोलर पृष्ठ 809

संप्रति मंच' शब्द का प्रयोग

आज रंग शब्द के अतिरिक्त दूसरे शब्दों के साथ भी 'मंच' शब्द का प्रयोग होने लगा है, जैसे राजनीतिक मंच, कथा मंच, लीला मंच, लोक मंच, नागर मंच, मंच चित्र, मंच व्यवस्था, मंचक, मंच पदावलियां आदि। डा० रामसेवक सिंह ने 'मंचाने' शब्द को भी प्रयुक्त किया है।[1]

नाटकीय काय व्यापार के लिय 'मचन' शब्द प्रचलित हो रहा है। मंच का प्रयोग महाकवि तुलसी और केशव ने भी किया है— 'सब मंचन ते मंच इक ... सोभित मंचन की अवली गजदन्त मयी छवि उज्ज्वल छाई' इस प्रकार मंच का अर्थ ऊँचा बैठने का स्थान अथवा आसन से ही है। मंच से सम्बंधित कामकर्ताओं का मंच-मिस्त्री, मंच-विशेषज्ञ और मंच-व्यवस्था के लिये मंच सज्जा, मंच विन्यास आदि सज्ञाएं प्रयुक्त होती हैं।

मंच शब्द शनै शनै बहु-प्रयोगी होता जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नही, जब मंच शब्द का तादात्म्य रंग शब्द के साथ हो जाता है तो वह 'रंगमंच' बन जाता है। वैसे मंच शब्द की एक बड़ी विशेषता यह है कि जब यह किसी शब्द के पूर्व लगता है तो इसका अर्थ बहुत ही सीमित हो जाता है और जब किसी शब्द के पीछे लग जाता है तो इसका अर्थ व्यापक हो जाता है। यही कारण है कि जब यह रंग शब्द के पीछे लगता है तो इस मिश्रित शब्द का अर्थ भी बहुत विस्तृत हो जाता है। वैसे रंगमंच शब्द का अर्थ अनेक विद्वानों ने अपने अपने ढंग से किया है। परन्तु 'रंग' और 'मंच' शब्दों के अर्थ विश्लेषण के बाद अब 'रंगमंच' शब्द विचारणीय है।

रंगमंच

विद्वानों के अनुसार

'रंगमंच साहित्य, कला एवं संस्कृति के उन्नयन का निकष है।[2]

'रंगमंच को सभी कलाओं का मिलन-बिन्दु और जन-जीवन के कल्याण और मनोरंजन का समवेत माध्यम माना गया है।[3]

---

1 ऐश्वर्य नाट्य परम्परा' डा० रामसेवक सिंह पृष्ठ 40

2. नागरी पत्रिका अंक 6 7 सुधाकर पाण्डेय पृष्ठ 10

3 [illegible] और आज का हिन्दी रंगमंच 'अनामिका' कला संगम ग्रंथ माला पृष्ठ 5

डा० दशरथ ओझा ने रगमच का अर्थ नाट्य प्रदर्शन वाले ऊँचे स्थान विशेष से लिया है।[1]

स्वाग भवाई और लट्ट लोक नाटयो के शास्त्रीय विवेचन करते हुए डाक्टर दशरथ ओझा लिखते हैं— 'रगमच पर पट-परिवर्तन और दृश्य-परिवर्तन की आवश्यकता नही होती। वहाँ सज्जन-मच की अपेक्षा नही यहा रगमच का अर्थबोध अग्रेजी के स्टेज से होता है।[2]

ड० लक्ष्मीनारायणलाल ने रगमच का अर्थ पारम्परिक विधा नाट्य वृत्ति, नाट्य परम्परा से लगाया है।[3]

सवदान दजी के शब्दो मे 'रगमच का अर्थ यदि केवल ईट-पत्थरो से बना भवन हो या प्रेक्षा स्थल हो तो बात दूसरी है अन्यथा आजकल तो नाटको की आत्मा को प्रस्फुटित करने वाले रगमच ही विशेष प्रयोग मे आते हैं।[4]

वस्तुत 'रगमच' तो समाज के सम्मुख रस रचना करने वाली खुली धर्मशाला है।'[5] नाट्य शास्त्र मे वर्णित विकृष्ट नाट्य मण्डप के सम्बन्ध मे प्रसाद जी का मत है— उस भूमि के दो भाग किये जाते थे। पिछले आधे के फिर दो भाग होते थे। आध मे रगशीर्ष और रग पीठ और आध के पीछे नेपथ्य गृह बनाया जाता था। 'रगमच मे भी दो भाग होते थे। पिछले भाग को रगशीर्ष कहते थे और सबसे आगे का भाग रगपीठ कहा जाता था। इन दोनो के बीच जवनिका रहती थी।[6] इन पक्तियो मे प्रसादजी ने रगमच शब्द का जो प्रयोग

---

1 हिन्दी लोकनाट्य का शास्त्रीय शिल्प गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ डा दशरथ ओझा पृष्ठ 70

2 वही पृष्ठ 80

3 वही हिन्दी मे एकाकी का स्वरूप डा० लक्ष्मीनारायणलाल पृष्ठ 100

4 नागरी पत्रिका हिन्दी रगमच शतवार्षिकी विशेषाक अक 6 7 पृष्ठ 48

5 नागरी पत्रिका (हिन्दी रगमच शतवार्षिकी विशेषाक) अक 6-7 सुधाकर पाण्डेय पृष्ठ 11

6 काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशकर प्रसाद पृष्ठ 94 96

किया है उसका अभिप्राय नाट्य प्रस्तुतीकरण स्थान तथा नाट्य मच से है। प्रकट है कि भारत में रगमच शब्द का अनेकार्थक व्यवहार हुआ है।[1]

रगमच ऐसा कला माध्यम है, जिसम बहुत से व्यक्तियों और तत्वों का योग होता है। इसका मूल सगठनकर्ता एक भिन्न व्यक्ति अथवा एक व्यवसायी मालिक जैसा गैर कलाकार व्यक्ति भी हो सकता है।[2] डा रामसेवक सिंह के अनुसार रगमच का अर्थ मच ही होता है।[3] डा गोविन्द चातक ने भी रगमच का अर्थ मच कर दिया है।[4] अपवाद रूप म योरप म 19 वीं शती में रगमच शब्द झूठ व मिथ्यात्व का पर्यायवाची माना गया है। समवत इसलिए कि रगमच पर प्राय, कृत्रिम (अवास्तविक) लीलाए होती हैं जो सत्य न होकर सत्याभास मात्र कराती हैं।

मामा वरेरकर के अनुसार "रगमच लोक शिक्षा का अति प्रभावशाली माध्यम है जो स्वतन्त्र हैं या स्वतन्त्र हुए हैं उन राष्ट्रों का यही अनुभव है। रगमच ससार का चित्र कहा जाता है। उसका यही कारण है। भारत के स्वतन्त्रता सग्राम म रगमच का एक भारी हिस्सा था। रगमच केवल मनोरजन का साधन नहीं बल्कि राष्ट्रीय पुनर्जागरण और अभ्युत्थान का महत्वपूर्ण माध्यम है।[5]

वस्तुत रगमच का अर्थ बड़ा व्यापक है। अधिकांश व्यक्ति इसे निम्नस्तरीय समझते रहे हैं। वे इसके कला रूप को नहीं देख पाते थे। आज कला माध्यम के रूप म रगमच हमारी सृजनात्मक अभिव्यक्ति का आधार माना जा रहा है। रगमच तथा नाटक की प्राचीनता के सम्बन्ध म बड़ा विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार जातक कथाओं म (जिन्हें दूसरी तीसरी शती ई पू का माना जाता है) नट तथा नाटक के प्रगणित वर्णन मिलते हैं। करणवीर जातक में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के एक नाटकोत्सव का वर्णन है जिसमें कुख्यात डाकू बोधिसत्व एव दरबारी स्त्री

1 पश्चिम का थियेटर तथा भारत का नाट्य और रगमच 'आधार' (भारतीय रगमच विशेषाक) वर्ष 11 अक 4 नवम्बर फरवरी 1966 डा लक्ष्मीनारायण लाल पृष्ठ 49

2 रग दर्शन नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 129

3 एकाड नाट्य परम्परा - डा रामसेवकसिंह पृष्ठ 18

4 प्रसाद नाट्य और रगशिल्प डा गोविन्द चातक पृष्ठ 253

5 हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास पृष्ठ 7

डा० दशरथ ओझा ने रंगमंच का अर्थ नाटय प्रदर्शन वाले ऊँचे स्थान विशेष से लिया है।[1]

स्वांग भवाई और लट्टू लोक नाटयों के शास्त्रीय विवेचन करते हुए डाक्टर दशरथ ओझा लिखते है— रंगमंच पर पट-परिवर्तन और दृश्य-परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ संकलन-त्रय की अपेक्षा नहीं यहां रंगमंच का अर्थबोध अंग्रेजी के स्टेज से होता हैं।[2]

डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने रंगमंच का अर्थ व्यापक रूप लिया नाटय वृत्ति, नाटय परम्परा से लगाया है।[3]

सेवदान जी के शब्दों में 'रंगमंच का अर्थ यदि केवल ईंट-पत्थरों से बना भवन हो या प्रेक्षा स्थल हो तो बात दूसरी है अन्यथा आजकल तो नाटकों की आत्मा को प्रस्फुटित करने वाले रंगमंच ही विशेष प्रयोग में आते है।[4]

वस्तुतः 'रंगमंच' तो समाज के सम्मुख रस रचना करने वाली खुली प्रमशाला है।'[5] नाटय शास्त्र में वर्णित विकृष्ट नाटय मण्डप के सम्बन्ध में प्रसाद जी का मत है— उस भूमि के दो भाग किये जाते थे। पिछले आधे के फिर दो भाग होते थे। आधे में रंगशीर्ष और रंग पीठ और आधे के पीछे नेपथ्य गृह बनाया जाता था। रंगमंच में भी दो भाग होते थे। पिछले भाग को रंगशीर्ष कहते थे और सबसे आगे का भाग रंगपीठ कहा जाता था। इन दोनों के बीच जवनिका रहती थी।[6] इन पंक्तियों में प्रसादजी ने रंगमंच शब्द का जो प्रयोग

---

1 हिन्दी लोकनाटय का रूली शिल्प गोविन्ददास अभिनंदन ग्रंथ डा दशरथ ओझा पृष्ठ 70

2 वही पृष्ठ 80

3 वही हिन्दी में एकांकी का स्वरूप डा० लक्ष्मीनारायणलाल पृष्ठ 100

4 नागरी पत्रिका, हिन्दी रंगमंच शतवार्षिकी विशेषांक अंक 6 7 पृष्ठ 48

5-नागरी पत्रिका (हिन्दी रंगमंच-शतवार्षिकी विशेषांक) अंक 6-7 सुधाकर पाण्डेय पृष्ठ 11

6 काव्य और कला तथा अन्य निबंध जयशंकर प्रसाद पृष्ठ 94, 96

किया है उसका अभिप्राय नाट्य प्रस्तुतीकरण स्थान तथा नाट्य मंच से है। प्रकट है कि भारत में रंगमंच शब्द का अनेकार्थक व्यवहार हुआ है।[1]

रंगमंच ऐसा कला माध्यम है, जिसमें बहुत से व्यक्तियों और तत्वों का योग होता है। इसका मूल संगठनकर्ता एवं भिन्न व्यक्ति अथवा एक व्यवसायी मालिक जैसा गैर कलाकार व्यक्ति भी हो सकता है।[2] डा रामसेवक सिंह के अनुसार रंगमंच का अर्थ मंच ही होता है।[3] डा गोविन्द चातक ने भी रंगमंच का अर्थ मंच कर दिया है।[4] अपवाद रूप में योरुप में 19 वीं शती में रंगमंच शब्द झूठ व मिथ्यात्व का पर्यायवाची माना गया है। संभवत इसलिए कि रंगमंच पर प्राय, कृत्रिम (अवास्तविक) लीलाएं होती हैं जो सत्य न होकर सत्याभास मात्र कराती है।

मामा वरेरकर के अनुसार 'रंगमंच लोक शिक्षा का अति प्रभावशाली माध्यम है जो स्वतन्त्र हैं या स्वतन्त्र हुए हैं उन राष्ट्रों का यही अनुभव है। रंगमंच संसार का चित्र कहा जाता है। उसका यही कारण है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में रंगमंच का एक भारी हिस्सा था। रंगमंच केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि राष्ट्रीय पुनर्जागरण और अभ्युत्थान का महत्वपूर्ण माध्यम है।[5]

वस्तुत रंगमंच का अर्थ बड़ा व्यापक है। अधिकांश व्यक्ति इसे निम्नस्तरीय समझते रहे हैं। व इसके कला रूप को नहीं देख पाते थे। आज कला माध्यम के रूप में रंगमंच हमारा सृजनात्मक अभिव्यक्ति का आधार माना जा रहा है। रंगमंच तथा नाटक की प्राचीनता के सम्बन्ध में बड़ा विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार जातक कथाओं में (जिन्हें दूसरी तीसरी शती ई पू का माना जाता है) नट तथा नाटक के अगणित वर्णन मिलते हैं। कणवीर जातक में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के एक नाटकोत्सव का वर्णन है जिसमें कुख्यात डाकू बोधिसत्व एवं दरबारी स्त्री

---

1 पश्चिम का थियेटर तथा भारत का नाट्य और रंगमंच आधार' (भारतीय रंगमंच विशेषांक) वर्ष 11 अंक 4 नवम्बर फरवरी 1966 डा लक्ष्मीनारायण लाल पृष्ठ 49

2 रंग दर्शन नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 129

3 ऐक्सड नाट्य परम्परा - डा रामसेवकसिंह पृष्ठ 18

4 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प डा गोविन्द चातक पृष्ठ 253

5 हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास पृष्ठ 7

श्यामा की प्रेम कथा का उल्लेख है। यहाँ नट का अर्थ अभिनेता समाज का अर्थ अभिनय दर्शक समाज और मंडल का अर्थ रंगमंच से है। नाटय अभिनय के अर्थ में 'समाज शब्द' का प्रयोग भी बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर हुआ है।[1] डा कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह के अनुसार बौद्ध साहित्य म समाज शब्द नाटकीय प्रयोगों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उनके शब्दों मे अभिनेताओं को नट नाटक को समाज और रंगशाला को 'समाज मंडल' कहा गया है।[2]

श्री कृष्णदास जी के कथनानुसार दूसरी तीसरी शती ई पू म रंगमंच के लिए समाज मण्डल शब्द प्रयुक्त होता था और डा कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह के मतानुसार रंगशाला के लिए समाज मंडल शब्द प्रयोग मे लाया जाता था। अभिप्राय यह है कि समाज मंडल में रंगमंच (रंगमंच के सम्पूर्ण तत्वों) को परिभाषित कहा गया है और उस रंगशाला के नाम से भी अभिहित किया गया है। रंगशाला का अर्थ प्रेक्षा भवन से लगाया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसमें रंगमंच के सम्पूर्ण उपकरण (*नाटक नाटककार प्रेक्षक अभिनेता वाद्यवृन्द र मंच-शिल्प आदि*) विद्यमान रहते हैं।

अस्तु रंगमंच एक कलात्मक संस्था है। 'रंगमंच' अभिनेता, मंचसज्जा संगीत प्रकाश तथा अन्य कलाओं का सम्मिश्रण होकर भी स्वयं एक स्वायत तथा मौलिक कला है जिसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है।[3]

व्युत्पत्त्य के अनुसार रंगमंच को नाटय शाला (विशेषत वह स्थान जिस पर अभिनेता अभिनय करते हैं (स्टेज) कहा गया है।

रंगमंच- पु० (सं० हमारे यहां का यह बहुत पुराना शब्द है। यह विशिष्ट रूप से ऐसे मंच का वाचक था जिस पर नाटकों के अभिनय गीत नृत्य आदि के कार्यक्रम जनसाधारण के सामने प्रस्तुत करते थे। आज भी यह शब्द मुख्य रूप से इसी अर्थ मे प्रचलित है। मंच की तरह लाक्षणिक रूप मे इसका भी एक और

---

1 हमारी नाटय परम्परा श्रीकृष्णदास पृष्ठ 67 68

2 हिन्दी नाटय साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह पृष्ठ 11 12

3 हिन्दी नाटक एक मूल्यांकन डा पवनकुमार हिन्दी साहित्य पिछला दशक म विश्वनाथ (1952 62) पृष्ठ 35

विस्तृत श्रय होता है। जहा बहुत स लोगो के अनेक प्रकार के आचरण, व्यवहार आदि देखने वाले की दृष्टि से तमाशो या लीलाओ के रूप म होते हो, उसे भी रगमच कहते हैं। यह समार मदा से सभी प्रकार के लोगों का रगमच रहा है। कुछ लोग इसके स्थान पर केवल मच का भी प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।[1]

उपयुक्त मनमता तरों से रगमच के निम्नलिखित अथ प्रकट होत हैं — ऊचा स्थान रगबिरगा प्रागण, एक व्यावसायिक विद्या नाट्य कला, नाटक परम्परा रग भवन (कलागार) मिश्रित कलाओ की सख्या एव स्वायत्त मौलिक कला आदि।

रगमच का अथ प्रयत्न लाघव वश 'मच' शब्द से भी निकाल लिया जाता है और अभिनय से भी। मच का यद्यपि स्थायी अथ है— 'ऊचा स्थान', किन्तु आज नाट्य क्रिया के अथ म 'मचन शब्द' प्रयुक्त होन लगा है। तात्पय यह है कि ये दोनो शब्द अन्योन्याश्रित और पूरक हैं। निष्कष रूप मे रग या मच अथवा रगमच कला-संस्कृति क प्रदशन का द्योतक है। रगमच शब्द का जगह मच शब्द का प्रयोग साकेतिक या सक्षिप्तीकरण प्रयोग है। किसी भी प्रस्तुतीकरण क लिए यदि यह कहा जाये कि 'इस आप मच पर देखगे' — तो यह एक उचित प्रयोग है, किन्तु यह कह देना कि आप इसे मच रगमच पर देखेंगे सही नहीं माना जा सकता क्योंकि रगमच शब्द का अर्थविधान बहुत विस्तृत होता है। इसका अथ केवल ऊचे स्थान से ही नहीं है। मच' शब्द रगमच का मात्र अगभूत शब्द है।

रग का अथ जब रगना अर्थात् स्वभाव प्रकृति व्यवहार आदि से लिया जाता है तब रगमच का अथ होगा— ऐसा प्रदशन स्थान, जहा पर सासारिक जीवो क स्वभावों एव प्रवृत्तियों का प्रदशन होता हो। व्यावहारिक रूप से रग का अथ रूप या स्वरूप भी प्रतीत होता है। रूप रूपक म अथसाम्य भी है क्योंकि रूप का जिस पर आरोप किया जाता है, उसे ही रूपक कहते हैं वसे भी रूप के पीछे 'क प्रत्यय जोड कर रूपक शब्द बनता है, जिसका अथ है-नाटक। यदि हम रग अथवा रूप अथवा रूपक मच शब्द का प्रयोग करे, तो रगमच का अथ होगा—रूप का अभेद आरोप करने वाले अभिनेताओ की प्रदशन स्थली।

व्यावहारिक सम्बन्धों को ध्यान मे रख कर यदि हम विचार करे जसे— आपने क्या रूप बना रखा है ? अथवा क्या स्वरूप बना रखा है, तो भी रग का

---

1 शब्दाथ दशन— सम्पादक रामचन्द्र वर्मा पृष्ठ 474

अर्थ बिल्कुल सही उतरता है। वसे भी स्वरूप को पात्र अनुकर्ता अभिनेता कहा गया है। डा० श्याम परमार के अनुसार अभिनेता स्वरूप कहलाते हैं। कहीं-कहीं उन्हें स्वाग और रूप भी कहते हैं।[1]

रास परम्परा में डा० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के अनुसार पात्र अथवा अभिनेता स्वरूप कहे जाते हैं।[2]

श्री जयशंकर प्रसाद ने नाट्य शास्त्र अध्याय 24 के एक श्लोक की व्याख्या में स्वरूप का प्रयोग मुखौटे के अर्थ में किया है, उनके मतानुसार रूप अर्थात मुखौटों का भी प्रयोग दैत्य-दानवों के अंगों की विचित्रता के लिए होता था।'[3]

रग शब्द का प्रयोग रगरूप स्वरूप (पात्र) आदि अर्थों में भी होता है। यदि रगमच का अर्थ जीवों की आकृति-प्रकृति (स्वभाव) प्रदर्शन से लें तो यह शब्द और व्यापक प्रतीत होता है क्योंकि इन स्वभावों के प्रदर्शन हेतु जुटाए गये साधन सहयोगी तत्व कलात्मक प्रयत्न, फल प्राप्ति उद्देश्यक हैं। उनकी गणना न करना रगमच की अधूरी परिभाषा देना है। अत यह स्पष्ट है कि रगमच न किसी इमारत का नाम है, न किसी यवनिका आच्छादित स्थान का नाम है और न ही किसी प्रदर्शन स्थल का नाम है प्रत्युत रगमच एक भाव वाचक सज्ञा है अथवा स्वय में एक परिपूर्ण विद्या है जिसके अनेक पक्ष हैं।

रगमच के अन्तर्गत जीवों के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों के स्वरूपों लेखक के मन में उठे हुए विचारों और कृति के कथ्य, पठन मनन निर्देशक पात्र चयन, पूर्वाभ्यास मच योजना दर्शक प्रदर्शन उद्देश्य प्रभाव एव प्रतिक्रियाए सभी कुछ समाविष्ट हैं। इन सभी क्रियाओं के मिश्रित स्वरूप का जो समवेत नाम दिया जा सकता है वह है रगमच।

थियेटर और रगमच —

उपर्युक्त शब्दों को लेकर बड़ा विवाद और मतिभ्रम फल रहा है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने एक लेख कुछ विचार में रगमच शब्द को स्पष्ट

---

1 लोक धर्मी नाट्य परम्परा डा० श्याम परमार— पृष्ठ 36

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा, डा० कुवर चन्द्रप्रकाश सिंह— पृष्ठ 51-52

3 काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—प्रसाद — पृष्ठ 98

करते हुए लिखा है—'भारत में रंगमंच शब्द की जगह पहले नाट्य गृह, नाट्य शाला आदि शब्दों का प्रयोग होता आ रहा है। 'नाटक' नट अभिनय, साज सज्जा सबको मिलाकर अब रंगमंच शब्द का प्रयोग होने लगा है। यह शब्द 'थियेटर' का अनुवाद है।[1] रंगमंच की व्याख्या के साथ साथ यह कथन है कि रंगमंच शब्द थियेटर का अनुवाद है, विचारणीय है। यह प्रश्न भी यवनिका के लिये दिये गये मतमतान्तरों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'थियेटर' का शब्दोत्पत्ति के लिए ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

प्राय 1576 ई० में यह जेम्स बरबाज (James Burbage) ने एक नाट्य शाला का निर्माण कराया और इसे 'थियेटर' की संज्ञा दी।[2]

Theater variant spelling of theatre Hence theaterian one connected with Stage an actor
1602 Dekker Satirom wks 1873 Stage workers

Theatre, Theater The word was completely naturalized in L whence It, Sp teatro, Pg Theatro, OF teatre, theatre (12–13th c)

The earliest recorded English forms c 1380 are theatre and teatre, from c 1550 to 1700 or later the prevalent spelling was theater (So in Dictionaries from Cawdrey to Kersey) but theatre in Holland Milton, Fuller, Dryden Addison, Pope, Bailey 1721 has both 'Theatre Theater" and between 1720 and 1721 theater was dropped in Britain has remained or (?) revived in U S The pronouncian, or it's accentuation, appears in found as early as 1591

---

1 नागरी पत्रिका— (हिन्दी रंगमंच शतवार्षिकी विशेषांक) अंक 6-7 पृष्ठ 17

2 हिन्दी विश्वकोश (खण्ड-6) पृष्ठ 297-298

3 The Oxford English Dictionary Vol XI, Page 261-262

(1) खुली वायु में बनाया गया स्थान, जिस पर नाटकादि देखे जाते हैं।
(2) नाटकीय प्रस्तुतीकरण का स्थान, नाट्यघर।
(3) मंच जहाँ पर नाटकीय प्रदर्शन होते हैं। प्लेटफोम।
(4) साधारण प्लेटफोम, जिस पर सार्वजनिक उत्सव होते हैं।
(5) एक कमरा अथवा चहार दीवारी से घिरे हुए बड़े कक्ष, जहाँ पर सभाषण, प्रदर्शन आदि होते हैं।
(6) अभिनय-स्थल।
(7) किसी विषय पर विचार पूर्ण पुस्तक।

इन उक्तियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'थियेटर' शब्द का प्रचलन 16 वी शताब्दी से आज तक किन किन अर्थों में हुआ है। यह स्मरणीय है कि अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय नाट्य परम्परा बहुत समृद्ध थी। 'रंग'[1] तथा 'मंडप' शब्दों का अलग अलग प्रयोग तो संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर मिल जाता है। जैसे—

> गीतव द्य पाट्यवृतनाट्याक्षरचित्रवीणावणु मृदंग परिचित ज्ञान
> गन्धमाल्यस यूहन-सम्पादन सवादहन वशिककला ज्ञानानि गणिका
> दासी रंगोपजिविनीश्च ग्राहू यताराजमंडलादाजीव कुर्यात।
> (कौटिल्य अर्थशास्त्र)

इसी प्रकार— रंगशीर्ष रंगपीठ आदि शब्दों का प्रयोग नाट्यशाला में प्राप्य है। भरतमुनि ने मंच के स्थान पर मंडप' शब्द का प्रयोग किया है।

> त्रिविध सन्निवेशश्च शास्त्रत परिकल्पित।
> विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव तु मण्डप॥

यहाँ मंडप से अभिप्राय 'घर' से लगाया जा सकता है। नाट्य मंडप शब्द का प्रयोग भी आचार्य भरत ने किया है—

> काष्ठणर्यासं प्रतिद्वारं द्वारविद्ध न कारयेत्।
> कार्य शैल गुहाकारो द्विभूमिर्नाट्य मंडप॥

इसमें नीचे की पंक्ति मे 'द्विभूमिर्नाटयमंडप' (दुहरा मण्डप) ध्यान देने योग्य है। इनमें एक भूमि स्तर पर प्रेक्षक बैठते और दूसरे (अभिनय स्थल अथवा

1 हमारी नाट्य परम्परा—श्रीकृष्णदास पृष्ठ 70

मंच) पर अभिनय होता था। श्री जयशंकर प्रसाद का मत यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि मंच शब्द के स्थान पर 'मंडप' शब्द का प्रयोग संस्कृत नाटकों में होता आया है।[1] यह कहना यद्यपि बहुत ही कठिन है कि रंग और मण्डप अथवा मंच आदि शब्दों का आविष्कार कब हुआ और कब कहाँ किसके द्वारा रंगमंच शब्द का प्रयोग प्रथम बार किया गया फिर भी यह माना जा सकता है कि नाट्यशास्त्र में रंगमंच शब्द का व्यवहार नहीं हुआ है।[2]

डा० दशरथ ओझा के अनुसार हिन्दी रंगमंच की उत्पत्ति संवाद तत्व के आधार पर 13 वीं शताब्दी में हुई है।[3] इस प्रकार सिद्ध है कि रंगमंच विषयक शब्दों का अलग अलग प्रयोग संस्कृत नाटकों में अंग्रेजी थियेटर से बहुत पहले हो चुका था। अतः यह धारणा है कि रंगमंच शब्द थियेटर का अनुवाद है समीचीन प्रतीत नहीं होती। श्री सदानन्द की मान्यता है कि पारसी काल में रंगमंच शब्द उतना बहुचर्चित और प्रचलित शब्द नहीं था।[4]

यह माना जा सकता है कि थियेटर शब्द को भारत में 'सिनेमा' की जगह अवश्य प्रयुक्त किया गया है। आजकल तो सिनेमाघरों के नाम के पीछे भी थियेटर शब्द जोड़ने का फैशन चल पड़ा है। कलकत्ता के मूनलाइट थियेटर में पहले प्रात सिनेमा चलता था, सायंकाल रंगारंग कार्यक्रम। वह पहले एक सिनेमाघर था, किन्तु नाटकों के प्रदर्शन भी वहाँ होते थे। सम्भवतः इसीलिए थियेटर शब्द रंगमंच के लिये प्रयुक्त होने लगा था। आज भी कलकत्ता में कुछ ऐसे बंगाली नाटयघर हैं, जिन्हें थियेटर कहा जाता है, जैसे—'विश्वरूपा थियेटर'। थियेटर को लोकभाषा में 'ठेठर' भी कहा गया है।

थियेटर का अर्थ एक चहार दीवारी से 'बन्द' 'सिनेमा हॉल' से है, किन्तु रंगमंच का अर्थबोध बड़ा ही विस्तृत है। अतः सिद्ध है कि थियेटर रंगमंच का एक छोटा सा विभाग है।

डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने अपने एक लेख में 'पश्चिम का थियेटर तथा

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबंध जयशंकर प्रसाद— पृष्ठ 94
2 आधार (भारतीय रंगमंच विशेषांक) अंक 4 डा० लक्ष्मीनारायणलाल पृष्ठ 49
3 हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास— डा० दशरथ ओझा पृष्ठ 82, 83, 84
4 रंगमंच— सदानन्द— पृष्ठ 18

भारत का नाटय और रगमच म पश्चिमी साहित्य म प्रयुक्त थियटर शब्द का अथ बतलाते हुए लिखा है—

वहाँ थियटर, क अतगत नाटय साहित्य (Drama Literature) प्रस्तुतीकरण (Production) अभिनय (Acting) उपस्थापन (Performance) रगशिल्प (Stage Technic Stage Light, makeup etc) रगभवन (Stage and Anditorium both combined unit) और नाटयालोचन इन श दो का शास्त्र समाहित है। [1]

प्रसादजी ने पश्चिम के प्रसन गौरवपूण शब्द थियेटर के लिये रगमच शब्द का प्रयोग नही किया। [2]

डा० भानु महता क एक लेख 'रगमच' की टिप्पणी करत हुए सम्पादक ने लिखा है— थियेटर शब्द केवल मच के लिए ही नही आता। मच और नाटक दोनों इमम अनिवाय रूप से निहित ह । [3]

शब्दकोषो क अनुसार थियटर— (स० पु०) (अ०)। — रगभूमि/ रगशाला/2 नाटक का अभिनय या तमाशा। [4]

शब्दकोशीय ग्रथ क अनुसार भारत में थियटर शब्द अय कई रूपो म भी प्रचलित है— जैस थियटर थ्यटर[5] और थियेत्र[6] और थीयात्र।[7]

नाटक और रगमच—

साहित्य म नाटक और रगमच क पारस्परिक एव सवसापेक्ष सबध की समस्या भी विचारणीय है। यद्यपि रगमच एक अत्यत विशुद्ध विद्या है और नाटक

---

1 आधार वष 11 अक 4 पृष्ठ 45-46

2 वही पृष्ठ 49

3 नागरी पत्रिका, अक 6-7, माच अप्र ल 1968, पृष्ठ 102

4 नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृष्ठ 552

5 भारतीय नाटय सिद्धान्त, (सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्र थ,) पृष्ठ 137

6 हिन्दी विश्वकोश (खण्ड 6) पृष्ठ 300

7 वही पृष्ठ 299

उसका एक प्रश्न मात्र है फिर भी नाटक और रगमच अन्योन्याश्रित हैं अथवा नाटक अग हैं और रगमच उसका अगी है।

श्री उत्रिनाथ पाण्डेय का मत है कि 'नाटक और रगमच' का परस्पर सबध केवल इसी बात पर ही आश्रित नही है कि नाटक को खेलने के लिये रगमच का होना आवश्यक है। वास्तव म नाटक की रचना पर भी रगमच के आकार, स्वरूप प्रकृति उपादान परम्परा, उपचार, अभिनय – पद्धति तथा साधनो का प्रभाव पड़ता है।[1] सभी युगो और देशो मे निश्चित नाटक और रगमच का इतना घनिष्ठ तथा अन्योन्याश्रित सबध रहा है कि रगमच के बिना नाटक की और नाटक के बिना रगमच की कल्पना ही नही की जा सकती।[2]

श्री जयशकर प्रसाद ने लिखा है— 'रगमच की बाधकता का जब हम विचार करते हैं तो उसके इतिहास से यह प्रकट होता है कि काव्यो के अनुसार प्राचीन रगमच विकसित हुए और रगमचो की नियमानुकूलता मानने के लिये काव्य बाधित नही हुए। अर्थात् रगमचो को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पडा और यह प्रत्येक काल म माना जायगा कि काव्यो के अथवा नाटक के लिए ही रगमच होते हैं। काव्यो की सुविधा जुटाना रगमच का ही काम है। 'क्योकि रसानुभूति के अनन्त प्रकार नियमबद्ध उपायो से नही प्रदर्शित किये जा सकते है और रगमच ने सुविधानुसार काव्यो के अनुकूल समय–समय पर अपना स्वरूप परिवर्तन किया है।[3] रगमच के सम्बन्ध म एक भारी भ्रम है कि नाटक रगमच के लिए लिखे जायें। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिये रगमच हो, जो व्यवहारिक है।[4]

डा० लक्ष्मीनारायणलाल का मत है कि नाटक म कहा नहीं जाता, किया जाता है और–किया भी–एक बार नहीं बार बार किया जाता है। –एक बार तो नाटककार के मन, दुबारा निर्देशक प्रस्तुतकर्त्ता अभिनेता व दर्शक के साथ किया जाता है। इसलिए नाटक लिखा नही जाता, उसकी रचना होती है। वह रचना है

---

1 नागरी पत्रिका हिन्दी रगमच शताब्दिकी अक 6 7 पृष्ठ 45
2 वही, पृष्ठ 47
3 काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, जयशकर प्रसाद पृष्ठ 103
4 वही, पृष्ठ 110

और तभी इसकी सारी कठिनाई है—इसका रचना बोध।[1] नाटक साहित्य भी है और कला भी, यह विचार भी है और मनोरंजन भी। यह खेल है, पर उद्देश्य के साथ। यह रचना है पर प्रतिबद्ध है कहीं। यह जीवन कौतुक है और उसका प्रचार प्रसार भी। असली नाटककार अपने युग विशेष में मानव चेतना की उस उच्चतर धारा का प्रतिनिधित्व करता है, जो सर्वथा मानवता की कमाई होती है जो इतनी सूक्ष्म और अस्पष्ट होती है कि मौजूदा मनुष्य उसे देख नहीं पाता। वही देखने के लिए नाटककार अपनी कृति में उस रंगमंच का निर्माण करता है जिसे देखकर और अनुभूत कर समझा जा सकता है। उसी सवंग्ना सत्यानुभूति के लिए नाटककार मनुष्य समाज को अपनी रंगशाला में लेजाकर बठाता है और मानव जाति को उसकी सप्राण शक्ति तथा प्रवृत्ति वृत्तियों का अत्यन्त सरलता से खेल खेल में ही भान करा देता है।[2]

डा० कन्हैयालाल सुल्तानिया 'अनात' ने अपने एक लेख 'हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के रंगमंच आदान प्रदान और योगदान' में लिखा है— *रंगमंच और नाटक में शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है।*[3] श्री इन्द्र अरोड़ाजी का मत है कि नाटक को चरित्र की अनुभूति यात्रा कहा जा सकता है और रंगमंच वह स्थल है जहाँ वह यात्रा की जाती है।[4] डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने लिखा है कि 'नाटक में नाटक की आत्मा की अनुभूति और उसके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए हमें रंगमंच का सत्यभाव चाहिए।[5] श्री नन्दकिशोर मित्तल ने अपने लेख 'रंगबोध' में लिखा है— किसी रंगविधा के सहारे मंच पर मनुष्य की खोज ही नाटक है।[6] श्रीमती इन्दुजा अवस्थी ने अलेक्जेंडर मथ्यूज की विचार धारा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि नाटक को *रंगमंच से अलग करके उस पर विचार करना असम्भव है। रंगमंच से ही वह*

---

1 नागरी पत्रिका (हिन्दी रंगमंच शताब्दिका विशेषांक) अंक 6 7 पृष्ठ 49

2 वही पृष्ठ 50

3 वही पृष्ठ 51

4 वही पृष्ठ 63

5 आधार पश्चिम का थियेटर तथा भारत का नाटय और रंगमंच डा० लक्ष्मी नारायण लाल पृष्ठ 53

6 वही पृष्ठ 77

उत्पन्न हुआ है और वही उसे पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है।[1] 'इन्दर सभा' की समीक्षा करते हुए डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह लिखते हैं—'नाटक तत्वत दृश्य काव्य होने के कारण सतत रगमच सापेक्ष अर्थात् रगमचीय है। अरगमचीय कृति नाटक नहीं स्वीकार की जा सकती।[2]

निश्चय ही नाटक एव रगमच मे परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। दोनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भी मान्य है। इसलिए यह स्वीकार्य है कि रगमच के लिए ही नाटक की उत्पत्ति हुई है और रगमच ही उसका पहला एव अन्तिम लक्ष्य है।[3] किन्तु यह मान लेना कि रगमच के बिना नाटक की और नाटक के बिना रगमच की कल्पना ही नही की जा सकती, आज के नाट्यधर्मी प्रयोगों के सन्दर्भ मे सहज स्वीकार्य नही है। रगमच के सीमित अर्थ 'मच के लिए नाटक' का इतना ही सम्बन्ध है कि जितना गानएव नृत्य मे। आज रगमच अपना सम्बन्ध जन जीवन से प्राप्त प्रत्येक कला मे बनाता जा रहा है। अस्तु रगमच केवल नाटक पर ही आश्रित नही है। प्राचीन मच अथवा रगमच प्राय काव्यो के आधार पर निर्मित हुए थे क्योंकि उस काल मे काव्य पक्ष ही अभिव्यक्ति का माध्यम था किन्तु सम्प्रति इस तथ्य को आधार बनाकर चलना असामयिक है।

प्रसादजी के मतानुसार रगमच रसानुभूति के अनन्त प्रकारों में से एक नियमबद्ध उपाय है अर्थात् यह रसानुभूति का एक विशिष्ट प्रकार है।

निष्कर्ष यह है कि नाटककार नाटक मे रगमच के माध्यम से समकालीन मानव संघर्ष के सुनियोजित तत्वो को सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस प्रकार नाटक का अर्थ अभिनय, सवाद पात्र, वस्तु आदि की परिधियो तक व्याप्त है। वस्तुत नाटक का आरम्भ रगमच से ही होता है और अवसान भी रगमच मे ही।

डॉ० अज्ञात, श्री मलकानी श्री नन्दकिशोर मित्तल, ब्रेन्डर मथ्यूज और डा० कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह आदि विद्वानो की उक्तियाँ रगमच के इसी अर्थ की ओर सकेत करती हैं। रगमच जब कृतिबद्ध होता है, तो नाटक कहलाता है और खेले जाने पर

---

1 नाटक साहित्य का अध्ययन ब्रेन्डर मैथ्यूज अनुवादक इन्दुजा अवस्थी पृष्ठ 2
2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमांसा—डा चन्द्रप्रकाशसिंह पृष्ठ 39
3 प्रसाद नाट्य और रगशिल्प—डॉ गोविन्द चातक पृष्ठ 253

यह स्वयं रंगमंच बन जाता है। संसार में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती आई है। अभी इसकी अन्य सम्भावनाएँ भविष्य के गर्भ में हैं।

रंगमंच का विधान

निष्कर्षत: रंगमंच के विधान के मुख्यत: 3 पक्ष हैं—

(1) व्यावहारिक पक्ष।
(2) तकनीकी अथवा यांत्रिक पक्ष।
(3) सैद्धान्तिक पक्ष।

व्यावहारिक पक्ष—

रंगमंच के व्यावहारिक पक्ष के विधान में निम्नलिखित संभाव्य उपादान हैं।

(1) नाटककार एवं नाट्यकृति।
(2) निर्देशक और निर्देशन।
(3) पात्र, अभिनेता तथा अभिनय।
(4) पूर्वाभ्यास।
(5) अर्थ व्यवस्था कार्य संचालन तथा सरकारी योगदान—
(1 व्यक्तिगत प्रयास 2 संस्थागत प्रयास 3 राजकीय संस्था द्वारा)
(6) प्रदर्शन व्यवस्था एवं मंच व्यवस्था।
(7) दर्शक (सामाजिक)।
(8) मंचन या प्रस्तुतीकरण।
(9) प्रतिक्रियाएँ (समीक्षा) आदि।

नाटककार एवं नाट्य कृति—

सांसारिक जीवन के पर्यवेक्षण में जो कुछ भी विद्यमान है जो कुछ भी हो रहा है वह सभी नाट्य कृति का विषय हो सकता है किन्तु नाटककार उसमें से भी कुछ एक विशिष्ट विषयों को चुनकर अपनी कृति में आबद्ध करता है जो संवेदना मूलक होते हैं और जिनके प्रस्तुतीकरण से दर्शकों के अन्तस्तल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः नाटककार एवं उसकी नाट्यकृति रंगमंच की आधारशिला है। नाट्यकृति में प्रायः लेखक के रंग-संकेत (रंग-निर्देश) मिलते हैं किन्तु वे अपर्याप्त होते हैं। प्रस्तुतीकरण हेतु नाटककार और उसकी रंगमंचीय नाट्यकृति यद्यपि अनिवार्य प्रतीत होता रहा है पर समसामयिक युग में यह अपरिहार्य नहीं

रह गई है। सम्प्रति ऐसी अनेक अलिखित कृतियाँ (मौखिक नाट्य रचनाएं) भी रखी जाती हैं जिन्हें मंचित किया जाता है और कृति रूप में विरचित या प्रकाशित नहीं किया जाता। अप्रकाशित कृति का यह स्वरूप प्रायः पूर्व निर्धारित नहीं होता। उसकी रूप रेखा भी सुनियोजित सुचिंतित न होकर आशुरचना रूप में विद्यमान रहती है। इसके प्रमाण समकालीन नाटक साहित्य में प्राप्य हैं। श्री कमलेश्वर का नाटक 'जेबखना',[1] श्री अमृतलाल नागर का नाटक 'युगावतार' तथा मंच पर 'ड्राटम्ब' नाटक इसके कुछ प्रमाण हैं। इनमें नाटककार और नाट्यकृति का पक्ष गौण है। ये रचनाएं स्थायी साहित्यिक कृति न होकर तात्कालिक अभिव्यक्ति के रूप में उपस्थापित होती हैं। इसमें लेखक का उद्देश्य क्षणिक रसास्वादन मात्र रहता है। वह अपने मनोवेग एवं युगबोध को खुद भी झेलता है और दूसरों पर भी उस प्रति फलित करता है। वह आत्मभावों की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता, इसलिए उसे लिखित रूप नहीं देता है। मुद्रण कला *उद्भव के पूर्व जब हस्तलिखित प्रतियां संचित की जाती थीं, उस समय भी यही* परम्परा प्रचलित थी किन्तु वह वर्तमान मौखिक नाट्य स्थिति से भिन्न थी। नाटक कृतियों को भी आज दो श्रेणियों में विभक्त किया जाने लगा है (1) पाठ्य (2) दृश्य। परन्तु यह भेद असंगत है, क्योंकि नाटक तो मूलतः दृश्य माना है। हां उसकी दो स्थितियाँ अवश्य हैं (1) अध्ययन (2) प्रस्तुतीकरण। अधिकांश व्यक्ति ऐसे होते हैं जो नाट्यकृति को पढ़ते हैं। प्रदर्शन का अवसर नहीं पाते क्योंकि प्रदर्शन एक कष्टसाध्य नाट्य व्यापार है। यद्यपि नाट्य रचना का वाचन, उसके संवादों का समुचित पठन स्वयं में वाचिक अभिनय होने के कारण रंगमंच का एक महत्वपूर्ण पक्ष है फिर भी वह प्रस्तुतीकरण से भिन्न मात्र वैयक्तिक आयोजन है। यह प्रायः मौन पाठ के रूप में सम्पन्न होता है, जो दृश्य नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक नाट्य कृति इन दोनों अवस्थाओं को पार करती है।[2] कुछ लेखकों ने तो मात्र *पठनीय कृति को नाट्य कृति नहीं स्वीकार किया है।*[3] नाटकों की रचना प्रदर्शन के लिये होती है। उसे पाठ्य के अन्तर्गत गिन लेना उचित नहीं है। साहित्य के सभी अंगों (पाठ्य, श्रव्य एवं दृश्य) में *नाटक सर्वोपरि कला है। इसीलिए नाटक को* पंचम वेद की संज्ञा प्रदान की गई थी।

---

1 श्री कमलेश्वर के पत्र दिनांक 6-8-70 से।

2 हमारी नाट्य परम्परा–श्री कृष्णदास पृष्ठ 15

3 हिन्दी नाटक साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० चन्द्रप्रकाश सिंह पृष्ठ 39

अभिनय नाट्य कृति की मुख्य विशेषताएँ हैं —

(1) सक्षिप्तता
(2) अन्विति (कथा सगठन)
(3) समुचित अक दृश्य विभाजन
(4) व्यावहारिक भाषा
(5) रोचक एव प्रभावोत्पादक विषयवस्तु
(6) मौलिकता (नवीनता)
(7) कुतूहल वर्द्धक शिल्प

नाटक त्रिकालधर्मी कला है। वह सार्वभौमिक एव सार्वकालिक अनुभूतियो का प्रत्यक्षीकरण करा सकती है। समय की सीमाओ को बाँध लेने के बाद जब कभी उनका प्रदर्शन किया जाता है तो वही वातावरण हमारी आँखो के सामने मच पर उतर आता है। यही नाटक का लक्ष्य होता है।

सम्प्रति जो कृति–विहीन मौखिक नाटक प्रस्तुत होने लगे हैं, जिन्हे प्राय सडको पर मचित किया जाता है वे भी किसी सर्जक या विचारक की अलिखित अथवा हृदय लिखित अनुभूतियो का ही प्रतिरूप है अस्तु उस नाटय कृति मानने मे कोई बाधा नही है।

रगमच मे नाटककार का स्थान और उपयोग—

नाटककार नाटक का सवप्रथम रसभोक्ता दर्शक है वह अपने अतस मच पर नाट्यवस्तु का अनुभूत करता है अर्थात् नाटक की उत्पत्ति अथवा नाट्य रचना के पूर्व ही नाटककार उस अलिखित रूप म अपने भावो के जगत म अभिनीत होते देखता है और जब वह उससे प्रभावित हो जाता है तो उसका कृतिरूप विधिवत् स्थापित होकर दर्शक समूह के समक्ष आता है। अच्छे नाटककार (जो किसी घटना अथवा प्रभाव विशेष को सुनिश्चित एव सुनियोजित रूप मे अनुबन्धित कर सके) रगमच को सुन्दर कृति देते है इसलिये रगमच म सबसे प्रथम स्थान नाटककार का होता है बाद म निर्देशक अभिनेता मचशिल्पी तथा दर्शको का। प्रथम होने के नाते यह स्वत सिद्ध है कि जब नाटककार नाटक ही नही देगा तो रगमच के अन्य व्यावहारिक तत्व निष्क्रिय पडे रहेंगे। पारसियो ने इनकी उपयोगिता को समझा था, तभी उन्होने अपनी नाटक कम्पनियो म स्थायी नाटककार नियुक्त कर रखे थे जो कम्पनी के लिये नियमित रूप से नाटक लिखते थे। इसके और कई कारण थे। पहली बात यह कि तब अधिक नाटककार प्राप्त नही थे। जो थे भी उनके नाटक छापाखाने की

कमी के कारण प्रकाशित होकर सर्वोपलब्ध नहीं हो पाते थे। किन्तु आज यह स्थिति नहीं है। आज नाटक बहूपलब्ध हैं अतः नाटककार को किसी नाट्य संस्था में स्थायी नियुक्ति नहीं मिलती हाँ कुछ नाट्य कंपनियों ने अच्छे नाटककारों से अपने संबंध अवश्य बना रखे हैं फलतः उन्हें नए नए नाटक प्राप्त होते रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि रंगमंच से नाटककार का स्थान और उसकी उपयोगिता निर्विवाद है।

निर्देशक एवं निर्देशन

नाट्यकला को निर्देश (स्वरूप) देने वाला व्यक्ति निर्देशक कहलाता है। स्पष्ट है कि जो व्यक्ति नाट्य कला में पारंगत होता है वही सफल निर्देशक बन सकता है। नाट्य कला में निर्देशन करने हेतु एक प्रकार का अध्ययन स्तर भी अपेक्षित है। इसमें अध्यवसाय, अभ्यास और प्रतिभा तीनों का योग है। कोई एकदम निर्देशक नहीं बन सकता। उसे पहले नाटकों में अभिनय करके प्रायोगिक अनुभव प्राप्त करना पड़ता है तथा रंगमंचीय तत्वों का सामान्य ज्ञानार्जन करना पड़ता है।

श्री कृष्णदासजी ने लिखा है—नाटक को मंच पर लाने के पूर्व वह वर्षों अध्ययन करता है और कलाकार को महीनों अभ्यास कराता है। मन की आँखों के सामने रखकर वह पहले नाटक की रचना है और तब वह उसके लिए उपयुक्त अभिनेता और अभिनेत्री चुनता है। फिर नाटक के वातावरण के अनुकूल वह मंच पर वातावरण तैयार करता है।[1]

निर्देशक के कार्य को स्पष्ट करते हुए श्री सुधाकर पाण्डेय ने लिखा है—सहयोग सबसे लेना और उतना ही जितने की आवश्यकता है यह निर्देशक का महत्वपूर्ण कार्य है। निर्देशक अनंत साधन वाला नहीं अपितु उसकी सीमाएं हैं, भौतिक से लेकर बौद्धिक तक। उसे अपनी क्षमता और योग्यता के साथ जनता के सम्मुख अपनी कला का जाग्रत दर्शन करना पड़ता है। इसलिए सृष्टा होते हुए भी प्रतिक्षण दर्शकों से अपनी सृष्टि के विश्लेषण एवं तज्जन्य प्रतिक्रिया का ध्यान रखना उसके लिये अनिवार्य है। इसीलिए निर्देशक का उत्तरदायित्व बहुत गहन है। वह रंगमंच की आत्मा है।[2]

निर्देशक का कृति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। रंगमंच के ऐसे निर्देशक जो स्वयं को पूर्ण या सर्वसमर्थ समझते हैं, प्रायः दूसरे निर्देशक से ईर्ष्या करते हैं। प्रतिस्पर्धा कृति का जहाँ मान बढ़ाने में सहायक होती है, वहीं घृणा उसको डुबाने में

1 रंगमंच (शेल्डन चेनी) अनुवादक श्री कृष्णदास पृष्ठ 640

2 नागरी पत्रिका (हिन्दी रंगमंच शतवार्षिकी विशेषांक अंक 67) वर्ष 11 पृष्ठ 9

भी ।[1] निश्चय ही निर्देशक या परिचालक में कला सजा की प्रेरणा प्रत कलाकारों के प्रति सात्विक मधुर सम्बंध, बदलते समय की रुचि का पूर्ण ज्ञान एवं आयोजन की क्षमता होनी चाहिये । परिचालक अपने इस गुरुतर भार को निभाता है अपने कलाकारों के पूर्ण निष्ठायुक्त सहयोग म तथा व्यवस्थापकों और सस्था के शुभ चिंतकों की प्रेरणा सहानुभूति तथा अर्थपूर्ण सहायता म ।[2]

व्यवहार की उत्पत्ति सिद्धान्त म पहले होती है । श्री सवदानन्द सैद्धांतिक निर्देशक के लिये लिखते हैं–व्यावहारिक ज्ञान ही हमारे निर्देशक का गुरु होगा मचावतारण की बात उठते ही निर्देशक का कर्त्तव्य प्रारंभ हो जाता है । विशेषज्ञ बनकर तो निर्देशक के द्वार बन्द हो जायेंगे । स क्षेप में निर्देशक का प्राण ही मंच है । निदेशक को कुछ अर्थों म डिक्टेटर होना चाहिये । उसके प्रति सबम सम्मान होना चाहिये । उसे भिन्न स्वभाव और आचार व्यवहार वाले व्यक्तियों से काम लेना होता है । मूर्ख को मूर्ख कह देना सरल है किन्तु मूर्खता को सहकर काम करा लेना कठिन है ।[3] नाटक लेखक तो केवल मिट्टी जमाकर देता है उसमें विविध रूप रंग के पात्र और मूर्तियाँ गढ़ना और उनमें प्राणों का संचार करना निर्देशक की कुशलता पर निर्भर है ।[4]

अस्तु यह सही है कि कुशल निर्देशक में सांसारिक कार्य व्यापारों, मानव स्वभावों आदि का सूक्ष्म ज्ञान पैनी दृष्टि और गहरी सूझ होनी चाहिये ।

निदेशक ही वह केन्द्रीय सूत्र है जो नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न तत्त्वों को पिरोता है और उसकी समग्रता को एक समन्वित बल्कि सर्वथा स्वतंत्र कला रूप का दर्जा देता है । साधक प्रदर्शन म नाटक जिस रूप मे दर्शक के पास पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कलाबोध सौन्दर्यबोध और जीवनबोध का ही सूचित करता है ।[5]

निर्देशक मुख्यत 4 प्रकार के होते है —

(1) व्यावसायिक

(2) अव्यावसायिक

---

1 नागरी पत्रिका (हिन्दी रंगमंच शतवार्षिकी विशेषांक) अंक 6-7 वर्ष 11

2 श्री नाट्यम पत्रिका वर्ष 8 1969 70 अंक 8 पृष्ठ 6

3 रंगमंच सवदानन्द पृष्ठ 94 95

4 वही 96

5 रंगदर्शन-श्री नेमिचन्द्र जैन पृष्ठ 54

(3) स्वनिर्मित
(4) दीक्षित

भरत के अनुसार नाट्य शिक्षा देने वाले को नाट्याचार्य कहा जाता है।[1] हिन्दी में इस निदेशक (निर्देशक) कहा जाने लगा। व्यावसायिक निर्देशक जहाँ कहीं भी नाटक सिखाने जाते हैं, उसका पारिश्रमिक लेते हैं। अव्यावसायिक निर्देशक शौकिया होते हैं। निर्देशक चाहे स्वनिर्मित हो अथवा दीक्षित, दोनों में अनुभूति प्रधान होती है। अभिनेता ने भले ही राष्ट्रीय नाट्य महाविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त करता हो फिर भी वह उतना सफल निर्देशक नहीं कहला सकता, जितना प्रतिभाशाली निर्देशक। स्वनिर्मित निर्देशक वही बनता है, जिसने नाटक के व्यावहारिक पक्ष का वर्षों अनुभव प्राप्त किया हो। यह एक बहुत बड़ी साधना है। अतः दीक्षित निर्देशक को भी पहले वर्षों तक निर्देशन या अभिनय करते हुए अनुभव प्राप्त करना पड़ता है, तब वह निर्देशक कहलाने योग्य होता है। कलाकार की दीक्षा स्वयं की आत्मप्रेरणा, अध्ययन, लगन एवं परिश्रम से होती है। सफल और महान निर्देशक वही है, जो कृति और मंच दोनों को समान महत्व देता है।[2]

पात्र, अभिनेता और अभिनय

परिचालन कला का पहला परीक्षा नाट्य कृति और अभिनेताओं के चयन से होता है। पात्र चयन प्रायः अभिनेता का व्यक्तित्व, वाणी, अभिनय कला आदि देख कर किया जाता है। व्यक्तित्व से अभिप्राय है, चाहे आकृति एवं मुखाकृति से है अर्थात् तीन फुट के आदमी से आप भीम के अभिनय की आशा नहीं रख सकते छह फुट आदमी लव-कुश के रूप में मंच पर हास्यास्पद लगता।[3] महाराजा पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, रावण आदि पात्रों के लिए मोटे डीलडौल का एवं सुदामा गांधी विनोबा आदि पात्रों के लिए दुबला पतला व्यक्ति ही चुना जायेगा। हाँ, विशेष परिस्थितियों में जब नाटक में हास्य प्रदर्शित करना हो अथवा व्यंग्य प्रदर्शन करना हो तो निर्देशक पात्रत्व के नियम को तोड़ भी सकता है।

पात्र के लिए आवश्यक है कि उसका स्वरोच्चारण स्पष्ट हो। यदि पृथ्वीराज का अभिनय करने वाले कलाकार की वाणी धीमी, तोतली या मरी हुई सी सुनाई दे

---

1 भरतकृत नाट्यशास्त्र— प्रो० भोलानाथ शर्मा पृष्ठ 88
2 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प— डॉ० गोविन्द चातक, पृष्ठ 262
3 रंगमंच— बलवन्त ह पृष्ठ 101

तो वह ग्राह्य नहीं हो सकती। जिसकी वाणी में गूंज हो, हुंकार हो, भारीपन हो वही पृथ्वीराज की भूमिका को यथार्थता निभा सकेगा। निर्देशक प्राय अभिनय के आधार पर पात्रों का चयन करता है। वह एक संवाद पढ़कर बोलने को कहता है। कलाकार पहले अपनी ही बुद्धि से उस कथन को बोलता है। उसके साथ साथ उसके आंगिक अभिनय की परीक्षा होती है। कलाकार को निर्देशक स्वयं अभिनय करके बतलाता है। जिसकी पुनरावृत्ति वह पात्र करता है और तभी निर्देशक चयन का निर्णय करता है।

संवादोच्चारण के समय शरीर के अंग निष्क्रिय नहीं रहते। वे भी उन शब्दों को अपनी आवृत्तियों से बांधकर दर्शक को समझाने में मदद करते हैं जैसे 'मैं' शब्द का उच्चारण करते समय बहुधा हाथों की पांचों अंगुलियाँ सीने पर लगती है और भौंहे तन जाती हैं। कई बार संवाद बोलते-बोलते चलना भी पड़ता है। उसमें एक स्वाभाविक गति होनी चाहिये। संवादोच्चारण में कभी कभी भाषा दोष[1] भी आ जाता है निर्देशक इन सब बातों का ध्यान में रखकर ही उसका चयन करता है।

निर्देशक के उचित पात्र चयन के बावजूद भी कभी कभी किसी मुख्य भूमिका में न चुने जाने पर कुछ पात्र पूर्वाभ्यास के बाद अनुशासनहीन या व्यवस्था विरोधी होकर मंच पर स्वच्छन्द गति मति द्वारा व्यवधान उपस्थित करने के उपक्रम भी करते हैं। अस्तु सावधानी पूर्वक स्थिति पर नियन्त्रण स्थापित करना निर्देशक के लिए अपेक्षित होता है।[2]

पात्र तीन प्रकार के होते हैं—

(1) व्यावसायिक या नियमित पात्र।
(2) अस्थायी या अवैतनिक पात्र।
(3) भिन्न लिंगीय पात्र।

(1) व्यावसायिक या नियमित पात्र—

कई संस्थाओं में अभिनेताओं को उनका मासिक पारिश्रमिक (वेतन) दिया जाता है। इसकी परम्परा पारसी रंगमंच से प्रारम्भ हुई है। जो अभिनेता वैतनिक

1 रंगमंच श्री सदानन्द पृष्ठ 101
2 वही पृष्ठ 98

होते हैं, उन्हें निश्चित समय पर आना पड़ता है क्योंकि यह उनका अनुबन्ध होता है। यही पद्धति सरकार के गीत एव नाटक प्रभाग, सगीत नाटक अकादमी आदि विभागों मे अपनाई गयी है। इससे कलाकारों की उदरपूर्ति होती है, कला को स्थायी सरक्षण मिलता है साथ साथ सरकारी उद्देश्यों का भी प्रचार प्रसार होता है।

(2) अस्थायी या अवैतनिक पात्र —

आज सैकड़ों ऐसी सस्थाएँ हैं जो अव्यावसायिक रूप से नाटय प्रदर्शन करती है। इनमे कलाकार अवैतनिक तो होते ही हैं परन्तु साथ ही स्थायी भी होते हैं। ऐसी सस्थाएँ स्वय चिरस्थायी नहीं रहती।

(3) भिन्न लिंगीय पात्र —

अभिनय हेतु पुरुष पात्र तो सहज मिल जाते हैं परन्तु स्त्री पात्रों की कमी रहती है। पहले पुरुष पात्र ही स्त्री पात्रों की भूमिका किया करते थे किन्तु आज इस प्रकार का प्रचलन कम हो गया है। महिला कलाकारों के चयन मे विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।[1]

पूर्वाभ्यास —

निर्देशक जब पात्रों का चयन कर लेता है तो उसके बाद पूर्वाभ्यास करने के लिए समय व स्थान निश्चित किया जाता है। पूर्वाभ्यास हेतु निर्धारित समय पर कलाकारों को आना होता है। किन्तु प्राय पूरे कलाकार एकत्रित नहीं हो पाते। नाटकाभिनय मे पूर्णता अथवा परिपक्वता लाने के लिए यह आवश्यक है कि पूर्वाभ्यास कम से कम एक महीने तक चले। किन्तु यह भी दुष्कर लगता है। कारण है एक माह की लम्बी अवधि और दूसरे कलाकारों की व्यस्तता। व्यवसायी कलाकार तो समय पर आ भी सकते हैं किन्तु अव्यवसायियों के लिए समय पर पहुँच कर एक माह तक पूर्वाभ्यास चलाना बड़ा कठिन कार्य प्रतीत होता है।

कलाकार (अभिनेता) प्राय पूरा पाठ स्मरण न कर सकने के कारण पार्श्ववाचक (Prompter) पर निर्भर रहते हैं। पूर्वाभ्यास मे गोपनीयता आवश्यक होती है। नाट्य कला जो सामूहिक सहयोग मागती है उसके बिना परिष्कृत

---

1 नाट्य और रगशिल्प डा गोविन्द चातक पृष्ठ 103-104

पूर्वाभ्यास सम्भव नहीं है।[1] पूर्वाभ्यास में भी अनुशासन की बहुत आवश्यकता है। नियत समय पर आना तथा निर्देशक की आज्ञानुसार कार्य करना आवश्यक है। श्री कृष्णदास ने 1547 ई० के वेलेंशीन्स पतन के लिए बहुत युक्ति युक्त बात कही है। वहाँ रिहर्सल में देरी के कारण 'दण्ड शुल्क' देना पड़ता था शराब पीना वर्जित था और इसी तरह निर्देशक की अवहेलना करना भी वर्जित था। अभिनेता बहुत अधिक परिश्रम करते थे खतरों का सामना भी करते थे। इसका एक लिखित विवरण भी प्राप्त है। 1437 में सूली पर चढ़ाये ईसा और फाँसी पर लटकाये जूडा को मृत्यु से बचाने के लिये काटकर नीचे गिरा दिया गया था।[2] पूर्वाभ्यास में अनुशासन और कठिन परिश्रम द्वारा ही नाट्य प्रदर्शन सुन्दर हो सकता है।

पूर्वाभ्यास नये पुराने सभी नाटकों हेतु आवश्यक है। जीवन भर एक ही भूमिका करने वाले अभिनेता भी पूर्वाभ्यास करते हैं, चाहे थोड़ी देर के लिये ही क्यों न करें। इसके बारे वे मत पर उतरते हैं। उर्मिला जैन ने 17 वर्षों से खेले जाने वाले नाटक माउसट्रैप के लिए लिखा है उनमें एक हैं डेविड रेवन, जो नाटक में मेजर मेटकाफ का रोल अदा करते रहे हैं। उन्होंने लगातार 11 वर्ष 4 महीने तक इस भूमिका को निभाया। विश्व में किसी भी एक भूमिका में एक व्यक्ति के इतने दिन तक लगातार अभिनय करने का यह एक अनोखा उदाहरण है।[3] श्रीकृष्णदास ने अपनी अनूदित पुस्तक रंगमंच के अध्याय 10 (असंस्कृत लोकप्रिय सुखान्त नाटक) में 16 वीं शताब्दी के अभिनय के बारे में लिखा है-एक प्रसिद्ध अभिनेता के बारे में यह कहा जाता है कि उसने 70 वर्ष की उम्र में भी प्रेमी की भूमिका की। एक ही भूमिका जीवन भर करने के कारण इस प्रकार के अभिनयों में अभिनेता को पूर्ण कौशल प्राप्त हो गया था।[4] संगीतज्ञों की भाषा में इसे 'रियाज' कहा जाता है।

पूर्वाभ्यास के समय जो कमियाँ (चाहे उच्चारण में हों अथवा अभिनय में) रह जाती हैं वे प्रदर्शन में भी वैसी ही रहती हैं। इसीलिए पूर्वाभ्यास नाट्य प्रदर्शन

---

1 रंगमंच श्री नवदानन्द, पृष्ठ 32

2 रंगमंच शेल्डन चेनी अनु० श्री कृष्णदास पृष्ठ 197

3 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (18 जनवरी 1970 पृ० 22) 'माउस ट्रैप' नाटक जो सत्रह वर्षों से खेला जा रहा है— उर्मिला जैन

4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ० 277

का एक बहुत आवश्यक अंग माना गया है। पूर्व अभ्यस्त होकर प्राग्भिनय का प्रस्तुत किया जाना मुख्य पूर्वाभ्यास 'ग्रण्डरिहसल' कहलाता है। पूर्वाभ्यास में प्रायः बहुत समय लिया जाता है ताकि किसी प्रकार की कमी न रहे और प्रदर्शन की पूर्ण रूपेण तयारी हो सके। पूर्वाभ्यास सर्वत्र आवश्यक माना गया है।

श्री कृष्णदास ने रंगमंच के अध्याय 2 में पृष्ठ 47 पर आदिम जातियों के नृत्य के लिए लिखा है–उनके नृत्य घंटों और कभी कभी कई दिनों तक लगातार चलते थे। उनके पग और उनकी मुद्राएं लगातार बदलती रहती थीं। एक गलत पग उस जाति के विरुद्ध अपराध समझा जाता था और यह माना जाता था कि ऐसा करने से देवता रुष्ट हो जाते हैं। आज जो आदिम जातियां हैं उनमें अक्सर ऐसा होता है कि जरा सी गलती पर पूरा का पूरा नृत्य रोक दिया जाता है और सम्पूर्ण उत्सव को फिर से दुहराना पड़ता है। माओरियों में अगर कोई एक शब्द भी भूल गया हो अथवा उसका गलत उच्चारण हुआ हो तो यह विश्वास किया जाता है कि नर्तक अथवा अभिनेता की मृत्यु अवश्य हो जायेगी। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब ऐसा गलती करने वाले अभिनेता को मृत्युदण्ड दे दिया गया है।

रामनगर काशी में श्री रामलीला के लिए रामनगर के महाराजा जिन अभिनेताओं का चयन करते हैं उन्हें प्रदर्शन के दो माह पूर्व में पूर्वाभ्यास हेतु रामनगर में ही आकर रहना पड़ता है। उन सभी अभिनेताओं को रामनगर दुर्ग के पास वाली धर्मशाला में रामलीला का पूर्वाभ्यास व्यास जाति के उच्च ब्राह्मणों द्वारा कराया जाता है। महाराजा स्वयं उस समय विराजमान रहते हैं। पूर्वाभ्यास में गलती होने पर उन पर 'दण्डशुल्क' लगाया जाता है। वे 24 (चौबीस) घण्टे सराय में ही रहते हैं। उनके लिये घर पर आना-जाना मना होता है। खाने-पीने का पूर्ण प्रबन्ध महाराजा की ओर से किया जाता है। परिवार के सदस्य यदि उनसे मिलना चाहें तो रामनगर दुर्ग के पड़ोस की धर्मशाला में आकर रह सकते हैं।[1]

डॉ० भानुशंकर मेहता का कथन भी ध्यान देने योग्य है। वे लिखते हैं – 'रिहर्सल' पर शायद हमारे नाटकों में सबसे कम ध्यान दिया जाता है। जिन्हें पाट मिलता है कृपापूर्वक आ जाते हैं संवाद दुहरा लेते हैं। बड़े कलाकार कहते हैं कि आप मेरी-चिन्ता-छोड़िय-मैं अपना पाट मंच पर-कर लूंगा। छोटे-कलाकार कहते

1 दिनांक 7-6-70 को रामनगर दुर्ग के श्री लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव से भेंट वार्ता।

हैं कि मेरा पाट तो है ही कितना जो मन्द हो सो कहते हैं वह सूँगा। दो शब्द के लिए हर रोज अपने चार घन्टे क्यों बर्बाद करूँ? अलव में यदि पचास कलाकार हैं जिन्हें पाट मिला है वे ही अभ्यास के लिय पधारते हैं। बाकी के लोग समय व्यय नहीं करते। फिर भी नियमानुसार रिहसल की बात तो अभी अपूर्ण ही है। हमारे यहाँ पर नाटक चुनने से अभ्यास प्रारम्भ करने से पहले नाटक पढने (ड्रामा रीडिंग) की परम्परा भी नहीं है। फलत गलत पात्र का चुनाव एक आम बात है। पुराने जमाने में ग्रैण्ड रिहर्सल पर बहुत जोर दिया जाता था। यह भी अब प्राय लोप हो गया है। फुलड्रेस का कौन कहे अब तो हाफ या विदाउट ड्रेस ध्वड-रिहर्सल भी नहीं होते। जस तस नाटक सीधे मंच पर पेश कर दिये जाते हैं। अतएव रिहर्सल की महत्ता समझने और उसे नियमानुसार करने पर गम्भीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है।[1]

प्रबंध व्यवस्था एवं कार्य संचालन —

अनुकूल रंगपरिवेश का निर्माण सार्थक रंग प्रस्तुतियों का अनिवार्य आधार है। 'बना प्रबंध सब कुछ व्यर्थ है। समुचित प्रबंध व्यवस्था के अभाव में निर्देशक तथा उसकी टीम के मस्तिष्क में टिकिट बेचने हैं, चन्दा इकट्ठा करना है, विज्ञापन लाने हैं अथवा रंगबिरंगे आमंत्रण पत्र छपवाने हैं आदि समस्याएं समय असमय उदित होकर पूर्वाभ्यास तथा प्रस्तुति में बाधक सिद्ध होती हैं। ये सारे कार्य प्राय कलाकारों को ही करने पड़ते हैं। रंगबिरंगे आमंत्रण पत्र प्रायकर से बच निकलने की एक कला है। यदि खुलमखुल्ला टिकिट बेच जायें तो कर अवश्य ही लगेगा। अत लाल पीला हरा, सफेद आदि रंगों के आमंत्रण पत्र क्रमश 5, 10 15 50 अथवा 100 रुपये के समान जायेंगे और जो रंग प्रेमी जितना रुपया देगा उसे वैसा पूर्व निश्चित रंग का कार्ड (आमंत्रण पत्र) देकर उसके अनुसार दर्जे में बिठा दिया जायेगा। वस्तुत अव्यावसायिक संस्थाओं को ही नाट्य प्रदर्शन के लिये इधर उधर से धन एकत्र करके उसका प्रस्तुतीकरण करना होता है। ऐसी संस्थाएं अर्थाभाव के कारणवश वर्ष में एक या दो प्रस्तुतीकरण ही कर सकती हैं। कभी-कभी ऐसी भी व्यावसायिक संस्थाएं संगठित की जाती हैं जिनका मिशन (उद्देश्य)

---

2 श्री नाट्यम वर्ष 8 सन 1969-70, अंक 8, पृष्ठ 29

3 श्री नाट्यम, श्री कु वरजी अग्रवाल, पृष्ठ 46

होता है—समाज में नाट्य प्रदर्शनों के द्वारा शिक्षा एवं संस्कृति का प्रसारण। ऐसी स्थिति में वे शहर शहर भ्रमण करती हैं। ऐसी संस्थाएं टिकिट लगाकर प्रदर्शन करती हैं पर इन्हें व्यावसायिक नहीं कहा जायेगा, क्योंकि टिकिट लगाकर धन कमाना उनका उद्देश्य नहीं होता वे तो अपने व्यय निर्वाह के लिए टिकिट लगाती हैं श्री पृथ्वीराज कपूर के पृथ्वी थियेटर का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है।

सम्प्रति अर्थ प्रबन्ध का स्तर बढ़ गया है। अव्यावसायिक संस्थाएं अपनी संस्था के सदस्यों से अग्रिम वार्षिक अर्द्ध वार्षिक अथवा मासिक शुल्क भी लेती हैं। ऐसी संस्थाएं वर्ष में एक या दो बार सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। अव्यावसायिक संस्थाएं प्रायः कलाकारों के लिए साधक होती हैं। पर कभी कभी बाधक भी सिद्ध होती हैं। जिन कलाकारों के पास धन नहीं रहता वे उनकी साधारण सदस्यता स्वीकार नहीं कर पाते और व्यावसायिक संस्थाएं उनकी कला से वंचित रह जाती हैं व्यावसायिक संस्थाएं इन कलाकारों से बहुधा लाभ उठाती हैं।

प्रदर्शन एवं मंच व्यवस्था—

मंचीकरण हेतु किसी नाट्य शाला रंग मंडप रवीन्द्र मंच स्कूली कॉलेज (हाल) विश्वविद्यालयीय रंगालय आदि ढूंढे जा सकते हैं। कहीं कहीं मंच सुलभ नहीं होते हैं। मिलते भी हैं तो शहर से बहुत दूर छोटे अथवा आवश्यकता से अधिक बड़े। मंच पर सैटिंग का प्रारूप-प्रकाश ध्वनि की व्यवस्था वस्त्राभूषणों और दर्शनार्थियों का प्रबन्ध और निर्देशन व्यवस्था का भी अपना महत्व है। हिन्दी जगत में टिकाऊ मंच प्रायः दुर्लभ है। इधर सरकार की ओर से नाट्य भवनों की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। बड़े-बड़े शहरों में अब रवीन्द्र मंच, रवीन्द्रालय, रवीन्द्र भवन आदि बनवाए गए हैं। इनमें नाट्य प्रस्तुतियों को प्रोत्साहन मिला है किन्तु ये भी व्यय साध्य हैं। नाट्य प्रस्तुति के अतिरिक्त भी चूंकि इन मंचों का उपयोग होता रहता है।[1] इसलिए कभी कभी इनकी उपलब्धि कठिन हो जाती है।

मंच की आवश्यकता नाटक के अनुसार होती है। यदि नाटक मुक्तपरिवेश चाहता हो तो उसे खुले स्थान में निर्मित करना पड़ता है। इ० अल्काजी का मुक्ताकाशी मंच, रवीन्द्र भवन प्रांगण नई दिल्ली, इसका उदाहरण है। कई बार

1 रंग दर्शन—नेमिचन्द्र जैन पृष्ठ 26

ऐसे स्थाई मच भी बना लिए जाते हैं जहाँ प्रतिवर्ष परम्परानुगत नाट्य प्रदर्शन होते हैं जस रामनगर क लीला मच ।

दशक (सामाजिक)

दर्शकों को विजिटर, आडिएंस, स्पेक्टेटर सामाजिक प्रेक्षक तमाशबीन आदि नामों से सबोधित किया जाता है। नाट्य प्रस्तुतीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया दशकों के लिए ही होती है। उन्हीं की प्रतिक्रियानुसार रगमच की पूरी रूपरेखा निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दशक नाटक प्रक्रिया का मूलाधार है। प्रेक्षक नाटक में प्राय अपने भावों को अभिव्यक्त करता है तथा उसे अपने तर्क की कसौटी पर कसता है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव नाटक व कलाकारों दसक आयोजकों और नाट्य सस्थाओं पर पडता है।[1] नाटक का लक्ष्य है दर्शकों का परितोष।[2] अस्तु यह कहा जा सकता है कि दर्शक रगमच का एक बहुत अनिवाय एव महत्वपूर्ण अग है। दशकत्व की अनिवार्यता के कारण रगमच एक व उद्योग का रूप धारण कर लेता है। (जस अमेरिका म ब्रॉडवे का रगमच) फिर उस वृहद् रूप में चलाया जाता है माउसटप जसा जासूसी (रोमाचक) नाटक लदन में लगातार दस साल तक चलता रहा है।[3]

दर्शक रगमच का असाधारण तत्व है जो आज हिन्दी रग आन्दोलन में चर्चा का विषय बना हुआ है। दशक वग दो प्रकार का माना गया है (1) देहाती (सामान्य वग) (2) शहरी अथवा प्रबुद्ध वग। इनमें भी कई प्रकार है। दशकों का अध्ययन करते हुए हम दशक रुचि को भी नहीं भूल सकते। विभिन्न स्तरीय दर्शकों के अध्ययन के अन्तगत अन्य कई बौद्धिक प्रश्न सामने आते है जस दशक वग कैसा होता है ? कसे जुटाया जाता है ? विशेष दशक वग क्या होता है ? दशक नाटक का होता है या प्रस्तोता तकनीक किसी अभिनेता अथवा व्यक्ति विशेष का ? प्रबुद्ध दशक जिसे रगमच के व्यावसायिक यान्त्रिक और सैद्धान्तिक प ा का न हो—समीक्षक कहलाता है। वह दशकों में श्रेष्ठ दशक कहलाता है।

---

1 श्री नाट्यम–सम्पादकीय पृष्ठ 5

2 दशक और आज का हिन्दी रगमच श्री श्यामसुन्दर कर्नाडिया एव श्री विष्णुकान्त शास्त्री पृष्ठ 6 9

3 दशक और आज का हिन्दी रगमच श्री नेमिचन्द्र जैन पृष्ठ 16

मंचन (प्रस्तुतीकरण)

मंच-व्यवस्था पूर्ण हो जाने के बाद मुख्य प्रदर्शन के एक दिन पूर्व उस नाटयकृति का मुख्य पूर्वाभ्यास' (ग्राड रिहर्सल) होता है ताकि इसमें जो भी त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें दूसरे दिन ठीक करली जाए। 'ग्राड रिहर्सल' में मुख्य नाटय प्रस्तुतीकरण की सामग्री जुटाई जाती है। खर्च भी लगभग उतना ही होता है।

मुख्य प्रस्तुति होने के समय कई प्रकार की कठिनाईयाँ आती हैं तथा कई व्यवधान हो जाते हैं इनका अध्ययन इसी विचारक्रम में किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के बाद भी कलाकारों की पारस्परिक समीक्षा का आदान प्रदान होता है। कोई कलाकार अपने अभिनय से स्वयं असंतुष्ट लगता है। उसे प्रायश्चित होता है। कभी वह अपने साथी कलाकार की कटु आलोचना करता है। पर्दे के पीछे कहीं-कहीं प्रशंसा की बौछार भी होती है। संगीतज्ञ भी अपने संगीत की प्रशंसा किया करता है। सज्जाधीक्षक और रंगलपकार की भी यही स्थिति होती है।

प्रतिक्रियाएं—

मंच पर नाटय प्रस्तुतीकरण को जब प्रबुद्ध दर्शकवृन्द देखता है तो उनके मस्तिष्क पर उस प्रस्तुति का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। चेतन मन की कुछ प्रतिक्रियाएं वार्तालाप में भी प्रकट हो जाती हैं। यह समीक्षा कथानक (थीम) उसकी प्रस्तुति शिल्प अभिनय आदि से सम्बन्धित होती है। दर्शक प्राय निर्देशन, अभिनय, मंचसज्जा ध्वनि प्रयोग प्रकाश प्रयोग, मंच प्रकार नाटक की भाषा शैली, प्रस्तुतीकरण की नवीनता आदि तत्वों पर विचार करता है। ये विचार मौखिक या लिखित रूप में व्यक्त होकर प्रतिक्रिया कहलाते हैं। यद्यपि सभी दर्शक समीक्षक नहीं हो सकते फिर भी प्रबुद्ध दर्शक उस प्रस्तुति विशेष का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन सबके सम्मुख रखता ही है।

तकनीकी पक्ष—

रंगमंच के तकनीकी पक्ष को पारिभाषिक शब्दावली में रंगशिल्प अथवा रंगतंत्र कहते हैं।

रंगशिल्प (रंगतंत्र)—

शिल्प का अर्थ है (शील+प ह्रस्व) कला आदि कर्म। वात्स्यायन के मत से नगीत आदि 64 बाह्य क्रियाएं और आलिंगन-चुम्बन आदि 64 आभ्यान्तर

क्रियाएं शिल्प कहलाती हैं। कारीगरी हुनर स्वरूप होता है।[1]

इसे अंग्रेजी में स्टेज टक्नीक (Stage Technic or Stage Craft) और हिन्दी में मंच तकनीक भी कहते हैं। रंगशिल्प का प्रयोग संस्कृत नाटयों में प्राय हुआ करता था। हिन्दी नाटकों ने भी इसे अपनाया है। किन्तु आजकल इसका नामान्तर रंग तकनीक या मंच तकनीक रूप में हो गया है। कभी-कभी मंच प्रयोग (रंग प्रयोग) एवं मंच सज्जा (Stage Setting) शब्दों में भी रंगशिल्प का अर्थ बोध कराया जाता है। यद्यपि 'मंच सज्जा' रंग शिल्प के विधान का एक प्रमुख पक्ष है।

रंगशिल्प के अन्तर्गत मंच सज्जा (1) (Stage Setting) (2) प्रकाश व्यवस्था (3) प्रदर्शन शैली (यथार्थ एवं यथार्थाभास प्रदर्शन) (4) पट कथा लेखन शिल्प (5) मंच निर्माण (6) रंगलेपन एव वेशभूषा (7) ध्वनि आदि के प्रयोग ग्राह्य हैं।[2] कुछ विद्वानों का कथन है कि रंगशिल्प पाश्चात्य रंगमंच से ही ग्रहण किया गया है। डॉ० अज्ञात के अनुसार आधुनिक रंगशिल्प को अपनाने की दिशा में बंगला रंगमंच अग्रणी रहा है। बिजली की चमक बादल आदि दृश्य सर्व प्रथम 'श्याम बाजार थियेटर' द्वारा भारतचन्द्र राय गुणाकार के विद्यासुंदर के प्रदर्शन के समय सन 1835 ई० में दिखाए गए थे।[3]

डॉ० अज्ञात ने रंगशिल्प का अर्थ मात्र प्रयोग (बिजली की चमक, मंच पर वर्षा के बादलों की उमड़ घुमड़ आदि) तक ही सीमित कर उसे पाश्चात्यानुकरण बतलाया है। किन्तु रंगशिल्प को केवल यान्त्रिक प्रयोग मान लेना समीचीन प्रतीत नहीं होता। अगर तकनीकी और यान्त्रिक सुविधाएं ही सब कुछ होतीं तो हॉलीवुड ही सब श्रेष्ठ कलात्मक फिल्मों का इजारेदार होता और ब्राडवे श्रेष्ठ कलात्मक नाटकों का।[4] तात्पर्य यह कि रंगशिल्प में मात्र यन्त्र योजना ही नहीं रहती अपितु

---

1 संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ सम्पादक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा पृष्ठ 1111

2 हिन्दी नाटक और रंगमंच की कुछ प्रवृत्तियाँ आधार भारतीय रंगमंच त्रिवार्षिक वर्ष 11 अंक 4 नवम्बर 65 फरवरी 66 डॉ सुरेश अवस्थी पृष्ठ 16 से 18

3 नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6 7 मार्च अप्रैल 1968 डॉ भव्बूलाल सुल्तानिया अज्ञात पृष्ठ 56

4 आधार (नाट्यांक) वर्ष 11 अंक 4 नवम्बर 65 फरवरी 66 नन्दकिशोर मित्तल पृष्ठ 74

पन्नों का भी इसके सान्निध्य में आना आवश्यक माना गया है। रंगशिल्प विधा को पाश्चात्य अनुकरण से प्राप्त न बतलाकर संस्कृत नाट्य परम्परा में घटित करना अधिक न्यायोचित होगा क्योंकि नाटक में सच्चाई का भ्रम पैदा करने के लिये उन दिनों भी भरसक प्रयत्न किया जाता था। हाँ, यह बात सही है कि रथ का वेग, स्वर्गारोहण अवतरण आदि के दृश्य आंगिक अभिनय के सहारे नहीं कराये जा सकते थे अतः 'रूपगति', 'नाट्यगति' जैसी स्वशब्द वाची सूचनाएं दे दी जाती थीं। पुरुरवा के रथ का आकाश में उड़ना, इन्द्र के रथ में बैठकर दुष्यन्त का पृथ्वी पर आना, सानुमति का आकाश में उड़ना आदि के संबंध में तो दर्शक कल्पना या अनुमिति करने को बाध्य अवश्य होते होंगे। आज भी मंच पर ऐसे दृश्यों को दिखाना आसान नहीं है।[1]

अतः स्पष्ट है कि भारतीय नाटक की प्रकृति और स्वभाव यूनानी नाटक से पूर्णतया भिन्न है। इसका रंगमंच तथा इसकी अभिनय कला यूनानियों से पृथक् है।[2] उक्त कथनों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि संस्कृत नाटकों के अभिनय के लिए रंगशिल्प आधार-भूत रहा है। श्री गार्गी के अनुसार यह अभिनय प्रायः प्रतीकधर्मी रहा है। संस्कृत नाटकों में अभिनेता नदी पार करते हैं, हाथी की सवारी करते हैं, आकाश में उड़ते हैं, सब केवल हस्तमुद्राओं के भाव सचलित अभिनय द्वारा। यदि अंधकार दिखाना अभीष्ट हो तो मंच का प्रकाश बुझा नहीं दिया जाता था बल्कि तेज रोशनी में अभिनेता हाथों से राह टटोलता हुआ इस प्रकार चलता था कि घोर अंधकार का मिथ्या आभास होता था। कालीदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक में रथ पर सवार दुष्यन्त जंगल में हिरन का पीछा करता है तो वास्तविक रथ मंच पर प्रदर्शित नहीं किये जाते थे। शकुन्तला फूल तोड़ती है और लताओं को सींचती है किन्तु मंच पर न फूल होते थे न पानी और न बेलें। यह सब अभिनय का चमत्कार है।[3] कभी कभी विमान या चौकी पर बैठे हुए राजा प्रवेश करते थे (तत प्रविशति आसनस्थो राजाविदूषकश्च) उस समय अभिनय पूर्ण प्रतीकात्मक होता था इसलिये स्थान स्थान पर नाटकों में

---

1 प्राचीन भारतीय रंगमंच वर्ष 11 अंक 4 डा मो दि पराडकर पृष्ठ 22

2 'रंगमंच' बलवन्त गार्गी पृष्ठ 33

3 रंगमंच बलवन्त गार्गी पृष्ठ 21

'रथावतरण नाटयति' अथवा घटसेचन नाटयति' आदि रग सकेत दिये हुए हैं। उस समय न रथ होता था और न घट वरन् उसका नाटय मात्र होता था, जैसा कि चीनी नाटकों और योरुप के प्रतीकात्मक नाटकों मे प्राप्य है [1]

अस्तु डा० अज्ञात का यह कथन कि भारतीय भाषाओं ने रगशिल्प पश्चिम से ग्रहण किया, असिद्ध हो जाता है। सस्कृत एक समृद्ध भाषा रही है उस पर पाश्चात्य रगशिल्प की छाया दृष्टिगत नही होती। सस्कृत नाटय-प्रदर्शनों पर यदि पाश्चात्य रगशिल्प का प्रभाव होता तो उस समय सच्चाई का भ्रम पदा करने के लिये बिजली का चमकना, बादलो का मच पर दिखाना आकाश म उडना आदि यत्रो से दिखलाया जाता और आगिक अभिनय की जगह यत्रों की चर्चा मिलती। हा पाश्चात्य प्रभाव पारसी कम्पनियो पर अवश्य दिखाई देता है। हिदी नाटकों के प्रदशन मे भी बादलों को मच पर दिखाने के लिये गुलाल लाल पीली नीली) का प्रयोग होता है। पखवाईयो क दोनों ओर कुछ कलाकार अपनी हथेलियों पर कई रगों की गुलाल रखकर फूक से उडाकर मच की ओर फकते हैं। तल-बत्तियों (Footlights) के प्रकाश क कारण व रग बादल सरीखे दिखाई देते हैं। यह हमारा निजी प्रयोग है जिसकी अवहेलना नही की जा सकती। यह प्रक्रिया सत्याभास कराने म समथ है।

आधुनिक रगमच का जहाँ तक प्रश्न है डा० अज्ञात का कथन नकारा नहीं जा सकता। आज मच पर साइक्लोरामा के माध्यम से वास्तविक बादल वर्षा रात्रि-सूर्योदय आदि दृश्यो के प्रयोग प्रदशन हो रहे हैं, जिन्हे पाश्चात्य शिल्प की देन कहा जा सकता है। यह सहज स्वीकाय है कि हिदी रगमच में समय और रुचि क अनुसार भाति भाति के प्रयोग होते चले आ रहे हैं फलत हमारा रगशिल्प परिष्कृत होता जा रहा है।

मच सज्जा (Stage Setting)

नाटक के कथानक को दृष्टि में रखते हुए मच पर जो सामग्री जुटाई जाती है उसे मच सज्जा कहते हैं। मच सज्जा नाटक के कथ्य एव पात्रों क चरित्र-प्रतीक का काय करती है। मच सज्जा को कभी कभी सजावट मान लिया

---

1 हिन्दी विश्वकोष खण्ड 6 पृष्ठ 292 293

जाता है, जो केवल एक सतही दृष्टिकोण है। जब इसे रंग व्यवस्था शब्द से सम्बोधित किया जाता है तो इसका अर्थ और भी विस्तृत हो जाता है। इसमें हमें उन सभी उपकरणों का अध्ययन करना पड़ेगा जो नाट्य-प्रदर्शन हेतु व्यवस्थित किए जाते हैं, जैसे मंच निर्माण तख्ते फाट, बल्लियाँ, प्रतिशिरा ध्वनियन्त्रों की व्यवस्था, प्रकाश, व्यवस्था दर्शकों के बैठने की व्यवस्था आदि। अतः मंच सज्जा को रंगव्यवस्था मानना अक्षम्य भूल होगी। कभी कभी मंच सज्जा शब्द पर्याय प्रदर्शन के अर्थों में भी प्रयुक्त होता है।

मंच की सज्जा नाट्य वस्तु के अनुकूल बनाया जाता है, जैसे 1948 में बम्बई के मरिन ड्राइव के मैदान में 'देवल' नाटक के लिए त्रिपरिमाणीय खुला एक दृश्य बहुपीठात्मक दृष्टिबद्ध रंगमंच (Mono scene Multi setting Purspective Stage) बनाया गया था, जिसके एक दृश्य में दो भवन सड़क और उपवन के पीछे बम्बई का पूरा दृश्य, मरीन ड्राइव, स्टेशन, दौड़ती हुई बिजली की रेलगाड़िया, नगर के बड़े प्रासाद स्वाभाविक रूप से पृष्ठ दृश्य बने हुए थे।[1] एसे और अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मंच सज्जा जहां भले ही यथार्थ प्रदर्शन की प्रतीक है, साथ ही यथार्थ का निर्जीव रूप भी है। मंच पर जो वस्तुएं दिखाई नहीं जा सकती उन्हें प्रतीक रूप में या तो पर्दे पर चित्रित कर दिया जाता है, अथवा मंच पर संकेतों द्वारा व्यक्त कर दिया जाता है।[2] संस्कृत नाटकों में रंगमंच पर सिंहासन, रथ और जीवित पशु तक प्रदर्शित कर दिये जाते थे। सत्त्वारिणी का प्रयोग आकाश मार्ग में होने वाले व्यापारों को प्रदर्शित करने के लिये होता था।[3] कहीं कहीं मंच सज्जा को भी प्रतीकात्मक ढंग से संस्कृत नाटकों में दिखाया जाता था, परन्तु जिन स्थानों पर रंगमंचीय सज्जा साधारणतया की जाती थी, वहाँ भी सेटिंग के लिये कोई स्थान नहीं होता था। 'शकुन्तला' नाटक राजा और उसके सारथी के जंगल में प्रवेश के दृश्य से प्रारम्भ होता है। ये दोनों अस्थिर दृश्य हैं।[4]

---

1 हि० वी विश्वकोष, खण्ड 6 पृष्ठ 293
2 रंगमंच (शेल्डान चेनी), अनु श्री कृष्णदास पृ 153–156
3 हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास पृ 102
4 रंगमंच (शेल्डानचेनी) अनु श्रीकृष्णदास पृष्ठ 142–143

निक्षेप आदि नाना म ुबारा जाता है । संस्कृत नाट्य प्रदर्शनों में आज तक निरंतर प्रकाश व्यवस्था समयानुसार बदलती करती दिखती है। भरत के अनुसार रंगमंच पर अनेक दीप रखे रहते थे, जिन्हें नाटक प्रारंभ होने पर कोई व्यक्ति दीपक द्वारा प्रज्वलित कर देता था। अंग्रेजी ढंग पर भारत में जो रंगमंच चले उनमें पहले गैस की बत्ती का फिर चूना बत्ती का, (केलशियम लाइट या लाइम लाइट) का फिर बिजली की बत्तियों का प्रयोग हुआ। अब भारतीय रंगमंचों पर चकमक दीप (इनकेन्डीसेंट लैम्प) के अतिरिक्त अनेक प्रकार के बिजली के प्रकाश-दीपों द्वारा मंदक (डिमर) के सहारे कम या अधिक प्रकाश देकर विभिन्न रंगों के प्रकाश का प्रयोग किया जाने लगा है। फलत रंगदीपन मेला स्वतंत्र एक कला बन गई है।[1]

संस्कृत नाट्य (तथा कुछ परवर्ती नाटकों) में प्रकाश व्यवस्था के लिए मशालों का प्रयोग होता था। न्यूयार्क जैसे सुप्रसिद्ध स्थानों में भी 18 वीं शताब्दी (1750 ई तक) में मोमबत्तियों से नाट्यशालाओं को आलोकित किया जाता था। भारतीय रंगमंचों पर पहले प्रकाश व्यवस्था के लिए तौलों (मिट्टी के दीपों में बिनौला सहित रुई डालकर उन्हें जलाया जाता था उसे तौला कहते हैं) का प्रयोग होता था। अधिकतर इन्हें तेल बत्तियों की जगह प्रयोग में लाया जाता था। सन 1860 में गैस बत्तियों का प्रयोग नहीं था। 1880 के बाद गैस बत्तियों का प्रयोग भारत में होना प्रारम्भ हुआ था।[2] श्री कृष्णदास के अनुसार दक्षिण भारतीय रंगमंच में कई प्रकार के अभिनय दिन में होते हैं जबकि प्रकाश की आवश्यकता ही नहीं होती किन्तु कुछ रात में ही होते हैं जिनमें बड़े बड़े दिये और मशालें जलती हैं। भारत में सिनेमा के प्रारंभिक काल में नाट्य प्रदर्शनों के लिए भी बिजली का प्रयोग होने लगा।[3] पारसी मंचों पर बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली का चमकना, पानी का बरसना आदि चमत्कार इसी पर आधारित थे। लोक नाटयों में प्रकाश व्यवस्था के लिए कहीं बिजली का प्रयोग होता दिखाई नहीं देता।

---

1 हिन्दी विश्वकोष (खण्ड 6) सम्पादक राम प्रसाद त्रिपाठी पृष्ठ 295

2 श्री अमृतलालजी नागर से वार्तालाप

3 हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास पृष्ठ 359

भारत सरकार के गीत एवं नाटक प्रभाग दिल्ली शाखा में प्रकाश व्यवस्था की रंगदीपन कला स्वय में एक विस्तृत विभाग है। यह नवीनतम प्रकाश व्यवस्था निम्नलिखित उपकरणों पर आधारित है —

(1) पजेन्ट में टिक्की से लाइट कम ज्यादा होती है। इसमे 1000 वाट का सट्ट लगता है। इसमें ए टाइप प्रोजेक्टर लम्प होता है। यह 60 फीट तक प्रकाश फेंकता है।

(2 बेबी लाइट 20फीट तक प्रकाश फेंकता है। 500 वाट का सट्ट ए टाइप प्रोजेक्शन का होता है। इसे जब मंच के छत एक्टिंग एरिया के ऊपर लगाते हैं तो बी टाइप का बल्ब प्रोजक्शन लम्प लगता है। यह कलाकार के ऊपर एक घेरे में प्रकाश डालता है। उस समय मंच के अन्य स्थान पर अंधेरा रहता है।

(1) डिमर यह दो प्रकार का होता है। (1) स्लाइट (2) भॉटो सीरियल। स्लाइड डिमर सीधा प्रकाश फेंकता है। इस प्रकाश को कम ज्यादा करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। आधुनिक मंचों पर इसका प्रयोग बहुत होता है।

(4) फ्लड लाइट— इसमे 1000 वाट का बल्ब होता है। पहले से ही दूरी तय करके इसे सेट कर लेते हैं। साइक्लोरामा (एक प्रकार का सफेद हार्ड बोर्ड के समान स्थाई कठोर परदा होता है जिस पर चांद सितारे, दिन रात आदि के दृश्य दिखाये जाते हैं) पर फ्लड लाइट लगे होते हैं। ये तीन तीन फीट की दूरी पर लगाये जाते हैं। 6–8 फ्लड लाइट का जो प्रयोग होता है उन पर कलर ट्रान्सपेरेन्ट पेपर लगाए जाते है। ये डिमर से भी संयुक्त किये जा सकते हैं। इन्ही से दिन रात और प्रातः काल आदि के दृश्य दिखाये जाते है। ये पेपर ग्लाईड फ्रेमों मे लगे रहते हैं। 23 नवम्बर 1969 से 11 मार्च 1970 तक अमृतसर में जगचानन होया (गुरु नानक की जीवनी) इन्ही प्रयोगों द्वारा प्रदर्शित किया गया था। कुल मिलाकर प्रकाश व्यवस्था में निम्नलिखित यंत्र काम आते हैं — (1) पजेन्ट लाइटस में— स्पाट लाइट बेबी स्पाट लाइटस फ्लड लाइटस बीम लान्टर्न टिक्की लाइटस इनफेक्टस स्पाटलान्टर्न इनफेक्ट डिमर (2) रेसिस्टेन्स डिमर्स के अन्तर्गत 1/2 kw 1 kw, 2 kw 5 kw तक होते हैं। (3) [illegible] 4 एम्पूलस 5 एम्पूलस 8 एम्पूलस 15 एम्पूलस 28 [illegible] लेडर्स (5 फोटो लाइटस (6) एमरजेन्सी लाइटस

यह प्रकाश व्यवस्था उन मचो पर भी उपलब्ध है जहां पर सरकारी रवीन्द्र मच बने हुए हैं।[1] प्रकाश उपकरणों से सबंधित टेकनीक स्टेज लाइटिंग पठनीय है। श्री सर्वदानंद ने भी प्रकाश के माध्यम से उत्पन्न रगो का व्यावहारिक (अनुभूति गत) चित्रण किया है।[2]

प्रदर्शन शैली

प्रदर्शन शैली के अंतर्गत उन सभी पक्षों को लिखा जा सकता है जो प्रस्तुतीकरण से सबद्ध हैं जैसे नाट्यों में सूत्रधार निर्देशक एवं पात्रों का प्रवेश, नाट्यारंभ (मंगलाचरण) पात्र प्रस्थान, पार्श्व वाचन, घटना विशेष के अनुसार ध्वनि का प्रयोग नाट्यानुगत वेशभूषा रंगलेपन आदि। ये प्रयोग संस्कृत रगमच में लोक नाट्यों में और नवीनतम नाट्य प्रदर्शनों में किस प्रकार होते हैं, इसका अध्ययन प्रदर्शन शैली के अंतर्गत ही किया जाता है। प्रदर्शन शैली को तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है (1) यथार्थ प्रदर्शन (2) यथार्थाभास (3) प्रतीक प्रदर्शन। नाटय के यथार्थ प्रदर्शन शैली को लगभग पच्चानवे प्रतिशत पाश्चात्य नाटककारों ने अपनाया है। यथार्थ का प्रदर्शन भारतीय रगमचो पर भी द्रष्टव्य है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार संस्कृत नाट्य प्रदर्शनों में रथ, जीवित पशु आदि मच पर प्रस्तुत कर दिए जाते थे।[3] किन्तु अधिकतर प्रदर्शनों में प्रतीक शैली ही प्राप्य है। विदेशी रगमच भी प्राय प्रतीक शैली का अनुवर्ती रहा है।[4]

भारत के नवीनतम मच प्रयोग यथार्थाभास पर आधारित हैं। पारसी मच की शैली मूलतः चमत्कार प्रदर्शन की थी किन्तु उसे भी यथार्थाभास शैली में ग्रहण किया जाएगा। उन नाटकों में पात्रों का वध अथवा सका दाह आदि के जो दृश्य दिखाए

---

1) द्रष्टव्य– रवीन्द्र मच जयपुर के प्रशासी अधिकारी श्री कमवीर माथुर का पत्र दिनांक 27–11–69

द्रष्टव्य– स्टेज लाइटिंग लेखक फ डिक एव फेजर

2) रंगमच– सर्वदानद – पृष्ठ 133

3) हमारी नाट्य परम्परा– श्रीकृष्णदास, पृष्ठ 102 तथा रगमच बलवंत गार्गी पृष्ठ 180–181

4) हिन्दी सरस्वती खण्ड 6 पृष्ठ 292–293

जाते थे वे यथार्थ में होकर यथार्थाभिमुख, मूलक ही थे। समसामयिक युग में मोडल एवं सेट पर, पुर्धारित नाट्य प्रदर्शन और ध्वनि एवं प्रकाश मिश्रित नाट्याभिनय यथार्थाभास मात्र देता है, हा भ्रमवश वे यथार्थ लगते हैं। परन्तु एक ओर भारतीय नाटककार प्रतीक से यथार्थाभास की ओर बढ़े हैं तो दूसरी ओर पश्चिमी नाटककार प्रदर्शन शैली को ओर यथार्थवाद की ओर ले जा रहे है। जैसे मंच पर संभोग का अभिनय[1] अथवा प्राचीन रोमन रंगमंच पर हत्या के वास्तविक दृश्य आदि।

पटकथा लिखन शिल्प भी इसका महत्वपूर्ण पक्ष है। आधुनिक रंगमंच के लिए नाट्य वस्तु का व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया जा रहा है क्योंकि पटकथासार को नाटयारंभ, माध्यात, चरमसीमा, कुतूहल आदि से संबंधित नित नूतन प्रयोग प्राप्त होते रहे। रंगमंच के लिए यह प्रशिक्षण निसंदेह बड़ा उपादेय है।

मंच निर्माण –

यह भी रंगशिल्प का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने इसका बहुत बड़ा विधान बतलाया है। भरत ने तीन प्रकार के प्रेक्षागृहों का विवरण दिया है। (1) विकृष्ट (लम्बा आयताकार) (2) चतुरस्त्र (वर्गाकार) और (3) त्र्यस्त्र (तिकोना)। ये तीनो परिमाण के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं– ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ। इनमें ज्येष्ठ (विकृष्ट, चतुरस्त्र) 108 हाथ लम्बा होता है, मध्यम (विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्र्यस्त्र) 64 हाथ लम्बा होता है और कनिष्ठ (विकृष्ट, चतुरस्त्र, तथा त्र्यस्त्र) 32 हाथ लम्बा होता है। इनमें से ज्येष्ठ देवताओं का, मध्यम राजाओं का और कनीयस या छोटा साधारण लोगों का होता है। भरत ने इन प्रेक्षागृहों में मध्यम (विकृष्ट चतुरस्त्र त्र्यस्त्र) को ही प्रशस्त माना है क्योंकि उसमें पाठ्य और गेय सारा अभिनय अत्यन्त सुविधा के साथ दिखाई सुनाई पड़ता है। मंच मापन का क्रम इस प्रकार है– 8 अणु का रज 8 रज का बाल 8 बाल की लिक्षा, 8 लिक्षा का यूक 8 यूक का यव 8 यव का अंगुल, 24 अंगुल का हाथ-(लगभग डेढ फाट) और 4

---

1) दैनिक वीर अर्जुन (नई दिल्ली) दिनांक 7 मई 1970 में छपी एक सूचना

2) रंगमंच श्री कृष्णदास पृष्ठ 124–125

हाथ का दंड होता है। इस नाप के अनुसार तीनों प्रकार के प्रेक्षागृह इस प्रकार होंगे —

विकृष्ट	ज्येष्ठ	प्रेक्षागृह	108×54	हाथ
,,	मध्यम	,,	64×32	,,
,	कनिष्ठ	,	32×16	,,
चतुरस्त्र	ज्येष्ठ	,,	108×108	,,
,,	मध्यम	,	63×64	,,
,	कनिष्ठ	,	32×32	,,
त्र्यस्त्र	ज्येष्ठ	,,	बीच से 108	हाथ लम्बा
	मध्यम	,,	64	,, ,,
,	कनिष्ठ	,	,, 32	,,

भरत के अनुसार 64 हाथ (96 फीट) लम्बा और 32 हाथ (48 फीट) चौड़ा विकृष्ट मध्यम प्रेक्षागृह ही बनाना चाहिये। भरत के नाट्य शास्त्र (द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या 20–21) में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

> अनेन व प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम् ।
> चतुःषष्टि कराम्कुर्याद्दीर्घत्वेन तु मण्डपम् ॥
> द्वात्रिंशत तु विस्तारान्मर्त्यानां यो भवेदिह ।
> अत उर्द्ध न कर्तव्य कर्तृभिर्नाट्य मण्डप ॥[1]

भूमि– जिस भूमि पर विकृष्ट मध्यम प्रेक्षागृह बनाना हो वह समतल, पक्की और कठिन हो। उस भूमि से झाड़, झंखाड़ निकाल कर हल चलवा कर उसमें से हड्डी, कील खापड़ी घास वृक्ष की ठूँठें और जड़े निकाल देनी चाहिये। यह काय उत्तरा भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा हस्त, पुष्य और अनुराधा नक्षत्र में करना चाहिये। भूमि स्वच्छ कर लेने पर पुष्य नक्षत्र में वाल्वज मूँज या वल्कल द्वारा डोरी से लाकर नापना चाहिये क्योंकि डोरी के बीच से टूटने पर स्वामी का मरण तीसरे भाग पर टूटने से राजकोप चौथे भाग के टूटने पर प्रयोक्ता का नाश और नापते समय हाथ से डोरी छूट जाने पर कुछ न कुछ उपद्रव होता है। इसलिये

1) भरत मुनिकृत नाट्य शास्त्र -प्रो भोलानाथ शर्मा– पृष्ठ 56

अनुकूल मुहूर्त तिथि और उपकरण देखकर ब्राह्मणो को तृप्त करके पुण्यवाचन कराकर शान्तिजल लेकर सावधानी से डोरी लगाकर भूमि नापनी चाहिये । डोरी को 64 हाथ लम्बा फैलाकर उसके दो भाग करके पीठ के भी दो भाग किये जायेंगे । उसके बाहर आधे भाग म रगशीष और पश्चिम भाग मे नेपथ्यगृह बनाया जाय और शुभ नक्षत्र योग मे शख दुदुभी मृदग, आदि बाजे बजाकर म डप की स्थापना की जाय । इस अवसर पर पाखण्डी सन्यासी, विकलांग आदि सब प्रकार के अनिष्ट पुरुषो को हटा देना चाहिये । रात का दसो दिशाओं मे ग ध पुष्प, फल तथा अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों के साथ पूव मे श्वेत अन्न की, दक्षिण मे नीले अन्न की पश्चिम मे पीले अन्न की तथा उत्तर में लाल अन्न की बली दी जाय और प्रत्येक दिशा क अधिष्ठाता देवता का म त्र से आह्वान किया जाय ।

नीव डालने के समय ब्राह्मणो को घी और पायस (खीर) राजा को मधुपर्क (दही घी और मधु) तथा म डप बनाने वाले को गुडोदन (गुड और भात) खिलाकर मूल नक्षत्र मे किसी विद्वान से ही नाटय की नीव डलवानी चाहिये और शुभ मुहूत तिथि तथा करण के अनुसार भीत (दीवार) बनाना आरभ करना चाहिये दीवाल बन चुकने पर शुभ नक्षत्र योग और करण का विचार करके रोहणी या श्रवण नक्षत्र मे प्रात काल सूर्योदय हो चुकने पर ऐसे श्रेष्ठ आचार्यों के हाथ स्तम्भो की स्थापना करानी चाहिये जो पिछले 3 दिन तक निराहार (व्रत पर) रह चुके हों ।[1]

इसी प्रकार अन्य आच र्यों ने भी स्तम्भ मत्तवारी र गशीर्ष भित्तिकम, नाटयम डप, चतुरस्त्र, प्रेक्षागृह नेपथ्यगृह, त्र्यस्त्र नाटय गृह कक्षा, प्रवेश निग म बैठने की रीति आदि पर बहुत कुछ लिखा है ।

नाटय शास्त्र म वर्णित 3 प्रकार के म च एव उनकी निर्माण विधि का विस्तृत विवरण भारतीय र गम च की समृद्धि का द्योतक है । भरतकाल मे म च निर्माण विधि अनुष्ठानमय थी । भवन बनाने का परिश्रम सभी जगह प्राय एक ही विधि से होता आया है । विदेशी नाटय शालाओं का निर्माण भी बडा विशद है । यूरोप म नाटयशाला का इतिहास प्राय 200 ई पू से आर भ हुआ बतलाया गया

---

1) हिन्दी विश्वकोष खण्ड 6 सम्पादक डा राम प्रसाद त्रिपाठी पृष्ठ 291

है। वहां ई० पू० 179 में अत्यंत विशाल मंचगृह बनाए जाते थे जो लकड़ी के होते थे और जिनमें 80 हजार दर्शक एक साथ बैठ सकते थे।[1] रंगशालाएं भी आवश्यकता से अधिक विशाल होती थीं इतनी विशाल कि उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार परक स्वांग, तमाशों के लिए भी पूरी गुंजाइश होती थी। वहां हिंसा विजय, संघर्ष जीवन के लिए उत्तेजना पूर्ण घटनाएं युद्ध, आश्चर्यजनक दृश्य विस्मयकारी वैभव और ऐश्वर्य का प्रदर्शन उचित माना जाता था। ये नाटक जब खतरे से पूर्ण होने लगे तो रोमनों ने रंगशालाओं का निर्माण करते समय वन्दवादन क्षेत्र और प्रेक्षागृह के बीच दीवार खड़ी कर दी जिससे कि किसी गलती के फल स्वरूप प्रेक्षक हताहत न हों।[2] रोम में ऐसी अर्द्ध वृत्ताकार मचीय रंगशालायें पहले ही से बनी हुई थी, उनमें एक प्रकार के सामूहिक जलयुद्ध हुआ करते थे।[3]

जूलियस सीजर ने इसी प्रकार की दो हजार फीट लम्बी और दो सौ फीट चौड़ी नाट्य शाला खोली थी। ऐसी विशाल रंगशालाओं को नौमाचिया कहते थे। द्वितीय शताब्दी में यह कला अपनी चरम सीमा पर थी। कालान्तर में वहां स्वांग तमाशे के नाम पर भद्दे प्रहसन ही रह गये।[4]

चीनी रंगमंच पर्याप्त खुला हुआ होता था। उस पर पर्दा नहीं होता था। प्रदर्शन के समय रंगमंच पूर्णतः प्रकाशित रहता था। उसमें किसी प्रकार का बिम्ब दृश्य और यन्त्र नहीं होता था। मंच की बनावट बड़ी सुन्दर होती थी। पीछे की दीवार में दो द्वार होते थे। एक द्वार से अभिनेता रंगमंच पर आते थे दूसरे से वे सज्जा कक्ष में वापस जाते थे। बड़े नगरों में बड़ी नाट्यशालायें सड़क अथवा मैदान में कहीं भी बनाई जा सकती थी। पीछे की दीवार में दो दरवाजों वाला कुछ आगे बढ़ा हुआ सीधा साधा रंगमंच अधिक टकसाली माना जाता था चाहे उसमें दर्शकों के बैठने का स्थान हो, अथवा दर्शक गली में खड़े होकर नाटक देखें। अन्दर आने और बाहर जाने के द्वारों के अतिरिक्त इस मंच के ऊपर एक छत सी होती थी जो साधारण मंदिर की छत की भांति अलङ्कृत होती थी।[5] चीनी रंगमंच पर कुछ

---

1) हिन्दी विश्वकोष खण्ड 6 पृष्ठ 295 से 303
2) रंगमंच (शेल्डान चेनी) अनु० श्री कृष्णदास पृष्ठ 125
3) व 4) रंगमंच (शेल्डन चेनी अनु० श्री कृष्णदास) पृष्ठ 124, 125, 126
5) " " " 149

पर्दे ट गे होते थे नीचे मोटी दरी बिछी होती थी लगभग ग्राधा दजन की सख्या म साज सज्जा के स मान भी होते थे।[1] जापान का नो नाटक का रगमच ग्रायताकार होता है और छत मदिरों की छत की भांति होती है। पीछे देवादारु वृक्ष का एक परम्परागत प्रतीक बना रहता है। ये लकडी के मच होते हैं। इसकी सेटिंग का एक लाक्षणिक या प्रतिकात्मक रूप है। इसे काबुकी रगमच कहा जाता है। 1600 ई के ग्रासपास ही इसका प्रादुर्भाव माना जाता है यह रगमच प्रारम्भ में एक ग्रायताकार चबूतरा जैसा होता था जिस पर तीन ग्रोर दर्शक बठते थे। बहुत दिनों तक तो यह मात्र शोभा के लिए निर्मित होता था बाद में प्रतीकात्मक रूप से इस छत को ग्र क्ति करके मच पर सजाया जाने लगा। ग्राज खुलने, बद होने वाले दरवाजे मच की फर्श मे लगा दिये गये हैं जिससे बाजीगरी ग्रौर विस्मय जनक करतब दिखाने का भी ग्रवसर मिलता है। बठने के लिये वहा कुर्सियों की कोई व्यवस्था नहीं है। ग्रभिनय प्रात काल प्रारम्भ होता है। सध्या को काफी देर म समाप्त होता है।[2]

इटली ग्रौर स्पेन में 1583 ई म प्रदशन–गाडियों पर तिमजलीय मध्य–कालीन रगमचो का उल्लेख मिलता है। य मच स्थल तिमजिले निर्मित किये जाते थे ग्रौर इन तीनों मजिलो पर एक के बाद दूसरी घटना प्रदर्शित की जाती थी। सबसे नीचे की मजिल पर नरक ग्रथवा पाताल भूमि रहती थी। बीचवाली मजिल पर ससार ग्रौर सबसे ऊपर की मजिल पर स्वग या देवलोक रहता था। कही कहीं नौ मजिलो वाले रगमच का वणन भी मिलता है।

ग्रन्य स्थलों की ग्रपेक्षा स्वर्गलोक की बहुत ऊ ची मजिल बनायी जाती थी। उनके नीचे नरक भी बना दिया जाता था।[3] इटली में कुछ समय बाद खुली-रगशालाग्रों का प्रचलन हो गया। इटालियन शली मे निर्मित विग तथा भरझरीदार हरियाली झाडियो से सुसज्जित पाश्व पटों वाली ग्राम भवन रगशालाग्रो की नकल

---

1) रगमच (शेल्डान चेनी ग्रनु श्री कृष्णदास) पृष्ठ 153, 156
2) " " " " " 160 164
3) " " " " पष्ठ 215 216

भी उत्तरी प्रदेश के राज भवन उद्यानों में होने लगी थी।[1] मंच पर विग्ज नरकुल अथवा काक की झाड़ियों से बनते थे और मंच की छतें उसके गुच्छों से बनाई जाती थीं।[2]

रूस और अमरिका ने रंगमंच तो इतने विकसित हो गये हैं कि उन पर आज हवाई जहाज उतारे जा सकते हैं, घोड़े दौड़ाये जा सकते हैं और फौजों को मार्च करते दिखाया जा सकता है। सोवियत संघ का बोलोशोई थियेटर इन्हीं सुविधाओं के कारण संसार भर में प्रसिद्ध है।[3]

निष्कर्ष मंच निर्माण विधि का जितना विस्तृत विवेचन भरत के नाट्य शास्त्र में मिलता है उतना संसार के किसी भी अन्य ग्रंथ में नहीं। भारतीय रंग परिपाटी की यही विशिष्टता है। भारतीय मंच के अन्तर्गत जो शिल्प है, कला है, और रूपवैविध्य है वह अपने अनोखेपन की छाप तो रखता ही। मंच निर्माण कोई सहज विचार लेने मात्र से सम्पन्न होने की वस्तु नहीं है। इसके लिये अथक प्रयत्न और अर्थ व्यय करना पड़ता है। भवन के शिल्पी के लिये भवन चित्र तयार करना, निर्माण सामग्री जुटाना कार्यारंभ करना, कार्य में शिथिल्य न आने देना, निर्धारित अथवा अनुमानित अवधि में उसे सम्पन्न कर लेना बहुत आवश्यक है। शिल्पकला अनुभव दो रूपों में होता है। एक तो बौद्धिक और दूसरा प्रायोगिक। आचार्य भरत एक बौद्धिक साथ ही प्रायोगिक शिल्पी थे। उन्होंने यह बताने का भरसक प्रयत्न किया है कि भूमि कैसी होनी चाहिये, नाप क्या होना चाहिए, मंचों के प्रकार कैसे होने चाहिए आदि। स्तंभ मत्तवारी, नाट्य मंडप कक्ष प्रवेश, निर्गम, तथा प्रेक्षकों के बैठने की विधि व्यवस्था किस प्रकार की होनी चाहिये? उन्होंने आनुष्ठानिक क्रियाओं का भी विधिवत उल्लेख किया है। निःसंदेह वे मंच विशेषज्ञ थे और कर्मकाण्डी मुनि भी। किन्तु ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता जिससे यह सिद्ध हो सके कि भरतमुनि ने भी कोई रंगशाला बनवाई थी। हाँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि भारतीय मंचशिल्प भरतकाल में अत्यन्त समृद्ध था।

वर्तमान युग में मंच निर्माण रंग शिल्प से बिलकुल अलग होकर अपना एक विस्तृत विभाग बना चुका है। आज के रंगकर्मी अनिवार्यतः मंच विशेषज्ञ नहीं होते।

---

1) 2) रंगमंच, (शेल्डान चेनी) अनु. श्री कृष्णदास पृष्ठ 260 261
3) हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास पृष्ठ 571-572

यह स्मरणीय है कि मच बनाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मच पर नाटक प्रस्तुत करना। यदि मच टेढ़ा मेढ़ा बना होगा तो निश्चय ही नतक अभिनेतागण रगदीपकार आदि को कष्ट होगा। यदि वाद्य वन्दकार शिराए (पटी) अथवा पखवाईयाँ अनुचित होंगे तो निर्देशक को यह अटपटा लगेगा और नाटय उपस्थापन मे बाधा आयेगी। प्रेक्षागृह में प्रेक्षकों के बैठने स्थान चाहे नीचे हों अथवा हर्मिकाग्रो मे पर यह व्यवस्था इस तरह पत्तिवार होनी चाहिये कि सभी दशकों को मच विम्बित दिखाई दे सके। वस्तुत यही मच शिल्प है जिसका अध्ययन भरत से लेकर अद्यावधि करणीय है। मच विशेषज्ञो के भी आज दो स्वरूप निर्धारित हो गये हैं।[1] (1)प्रेक्षागृह बनाने वाले अधिकारी (2) बने बनाये मच पर नाटक प्रस्तुतीकरण के विशेषज्ञ। इन्हें स्पष्टत प्रेक्षागृह निर्माता और उपस्थापक कहना समीचीन होगा। इन विभागो के और भी कई उप विभाग हैं अथवा हो सकते हैं।

रगलेपन एव साज सज्जा

रगलेपन को 'मेकअप साज सज्जा 'कास्टयूम्स' मुख विन्यास या वेष विन्यास कहा जाता है। दोनों का मिला जुला नाम है रूप सज्जा। जिस कक्ष मे यह काय सम्पन्न होता है उसे अग्रेजी में मेकअप रूम ग्रीन रूम तथा हिन्दी मे रगलेपन कक्ष कहा जाता है। रगलेपन का भी एक विस्तृत विधान है। रगलेपन द्वारा एक अभिनेता जैसा चाहे वैसा व्यक्तित्व (स्वरूप) धारण कर सकता है। कभी कभी रगलेपन मात्र से काम नहीं चलता। यह आवश्यक है कि अभिनेता का शरीर भी अनुपात मे वैसा ही हो जैसा स्वरूप धारण करना हो। कुछ साधारण भूमिकाए ऐसी भी होती हैं जिनमें हर आकार प्रकार वाला अभिनेता जच सकता है जैसे विदूषक डाक्टर नौकर, मौलाना, नेता आदि। प्रत्येक भूमिका मे मेकअप करने से मुख पर और अभिनेता के मस्तिष्क में एक भाव जाग्रत हो जाता है, और वह अपने आप को कुछ समय के लिए मूल व्यक्ति ही समझ लेता है। इससे अभिनय में वास्तविकता आती है। यही कारण है कि पूर्वाभ्यास करते समय वह तादात्म्य हमें प्राप्त नहीं होता जो साधरणीकरण की अवस्था में मूल उपस्थापन के समय होता है। इसलिए मेकअप रगशिल्प का एक अतिआवश्यक पक्ष माना गया है।[2]

---

1) रगमच सव दान द पृष्ठ 40
2) रगमच (शल्डन चनी) अनु श्री कृष्णदास पृष्ठ 152

कहीं-कहीं रगोलपन एव वेपभूषा प्रतीक का काय भी करत हैं। चीन मे चेहरे को रगने म पूव परम्परा का ही पालन किया जाता है। मुँह की सजावट और रगाई इस प्रकार की जाती है कि वह लगाय हुए चहरे की तरह म लूम पडने लगता है। बड़ा सफेद पुता हुआ चहरा दुष्ट व्यक्ति का चिन्ह है, लाल चेहरा ईम नदार व्यक्ति का सुनहरा चेहरा देवी पुरुष का और विभिन्न रेखाओं से रजित चेहरा चोर का माना जाता है।[1] लेखक के अनुसार विवाहित वधू लाल बुर्का ओढ़ती है मरे हुए पुरखे काला नकाब पहनते हैं या अपने दाहिने कान पर कागज के टुकडे लटका लेते हैं। बीमार आदमी अपारदर्शी पीला नकाब पहनत हैं भ्रष्टाचारी अधिकारी गोल हैट पहनते हैं।[2] साधारण से साधारण पात्र भी बहुत अच्छी पोशाक पहनते है यहा तक की भिखमंग भी रेशमी वस्त्र पहनते हैं। मुख्य पात्र तो बहुमूल्य चमकीले भडकीले वस्त्र धारण करते ही है।[3] प्रस ग्रन के और अनेक रोचक प्रमाण प्राप्य हैं।

वस्तु पात्रों के स्वभाव और चरित्र को उभारने के लिए उनकी प्रकृति के अनुसार अध मुखौटे और बडी-बडी नकली दाढी मूछें लगा देना था। किसी विशेष पात्र की आखे तीखी और भेडिये की तरह भूखी बनाने के लिये वह इनके इदगिद लेप कर देता था। नाक और गालों पर मोटी परत जमा देता था।[4] पारसी थियेटर के सम्बन्ध म बलव त गार्गी ने लिखा है—परदा उठता सारे कलाकार पूरी वेपभूपा और बनाव शृ गार से सजे धजे किसी देवी देवता की स्तुति करते। उनके चहरों पर शोख रगो का लेप होता था। नायिकाओं के मुखडे अबरक मलकर और भी अधिक चमकाए हुए होते। रानियों और परियो के सिरो पर झिलमिल झिलमिल करते हुए मुकुट सजे होते। इस प्रकार चहरों की रूप सज्जा और मुकुट शृ गार लोक नाटकों से लिया गया था[5] नाटकीय सज्जा अभिनय की पूरक कही गई है। काय व्यापार के अनुगमन एव वातावरण के निर्माण में इसका अनन्य योग रहा है।

---

(1) रगमच (शैल्डन चेनी) अनु श्री कृष्णदास पृष्ठ 152
(2) व 3 ' " " " 153 व 156
(4) रगमच बलव त गार्गी पृष्ठ 262
(5) ' " ' ' 172

दृश्यावलियों एव म च सज्जाओं की अपेक्षा वषभूषा और मुकुट आदि के द्वारा हमारे प्राचीन नाटक निर्माताओं को वातावरण की सृष्टि म पर्याप्त सफलता मिलती थी। दर्शकों के समक्ष नायक नायिकाओं के व्यक्तित्व और चरित्र की अभिव्यक्ति इन पोशाकों के माध्यम से ही हो जाती थी।[1] छोटे प्रक्षालयों में रगशिल्प (मेकअप) हल्का, मुक्ताकाशी मच पर भारी भरकम मेकअप इस दृष्टि से किया जाता है कि दूर के लोग मुखाकार और उसके भावों को दूर से देख सकें। सिनेमा का मेकअप भी मच के मेकअप से भिन्न होता है।

रगलेपन तथा वेषविन्यास की आवश्यकता लोक नतक को अधिक पडती है। नर्तकों के लिये यह प्रतीक का काम करता है। कर्नाटक प्रदेश में भूत कोलानृत्य गढ़वाल का पाडव नृत्य थडिया नृत्य द मलो नृत्य रासनृत्य छाऊ नृत्य[3] कथकली[4] आदि इसी के प्रमाण है। नर्तक रगलेपन की जगह मुखौटों का प्रयोग भी करने लगे हैं नृत्य के बीच मुखौटे गीत के झटके से जीवित हो उठते हैं और पात्र के सूक्ष्म भाव को दर्शक के मन पर उतार देते हैं।[5] ये मुखौटे दिखने में बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं। ये प्राय तितली, मयूर, कुरग, सप, आदि आकारों तथा महाभारत-रामायण एव पौराणिक-ऐतिहासिक कथा-प्रसगों में से अर्धनारीश्वर, दुर्योधन द्रौपदी आदि के द्योतक होते हैं। नृत्य के मुखौटे बहुत सु दर बनाए जाते हैं किन्तु नाटय प्रस्तुतीकरण हेतु जो मुखौट प्रयुक्त होते हैं व प्रतीकात्मक होने के साथ-साथ भयानक आकृतियों के भी होते हैं और उन्हें पहनाकर यदि कथानक के साथ मच पर सही प्रयोग न किया जाये तो वे निर्देशक का सतहीपन ही दर्शाते हैं।[6] जमन मच पर प्रयुक्त मुखौटे अपनी पुरानी संस्कृति के प्रतीक है।[7]

---

1) हमारी नाटय परम्परा–श्री कृष्णदास पृष्ठ 657
2) धमयुग 27 अप्रल 1969 पृष्ठ 15 व 17
3) धमयुग 27 अप्रैल 1969 पष्ठ 16 17, 29
4) रगमच बलव त गार्गी पृष्ठ 74 75
5) धमयुग अप्रल 6 1969 पष्ठ 16 व 17 जहा मुखौटे मन का दपण बन जाते हैं।
6) तरुण राजस्थान 8 माच 1970 डा सूय प्रसाद दीक्षित
7) साप्ताहिक हि दुस्तान 8 फरवरी 1970 श्री रणवीरसिंह बितना खो चुके

मच पर मुखौटो का प्रयोग कोई विशिष्ट कला नही है। यह नत्य के लिए भले ही सुन्दर प्रतीत हो, नाटयाभिनय म बनावटी ही सिद्ध होती है। अतः बुद्धिजीवी कलाकार भारतीय सस्कृति को ध्यान में रखते हुए न तो इसे अभिनय क्षेत्र मे लाना चाहते हैं न ही प्रबुद्ध दर्शकों को यह प्रिय लगता है। वे इसे सुन्दर अभिनय के बीच असुन्दर बाधा समझते हैं। फिर भी मद कवि यश प्रार्थी निर्देशक इसका प्रयोग नवीनता के उद्देश्य से मच पर प्रस्तुत करने का उपक्रम करते रहते हैं।

रगलेपन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है उसके प्रकार एव प्रयोग का बोध। नाटक के इस व्यावहारिक पक्ष पर नाटयग्रथों में प्रकाश नहीं डाला गया है वस्तुत नाटय प्रस्तुतीकरण नाटय लेखन से कम महत्वपूर्ण नही है। हिन्दी नाटक साहित्य मे दृश्य की अपेक्षा पाठ्य पर ही अधिक शोध समीक्षाएँ हुई हैं। रगमच विषय को लेकर शोध ग्रथों में अब थोडी बहुत चर्चा आरम्भ हुई है। रगतत्र के अनुसार रगलेपन बहुत बडी कला है। लोक नाट्य में अभिनेता प्राय मुर्दा सिघी, काजल, गुलाल, मोहर आदि का प्रयोग करते हैं। धीरे-धीरे इन उपकरणो में विकास होता आ रहा है। आधुनिक हिन्दी नाट्य के प्रस्तुतीकरणो मे मुर्दा सिघी (एक प्रकार की पीली मिट्टी) की जगह फाउडेशन पेस्ट (जो जिंक आक्साइड के साथ ग्लेशरिन और गुलाबी रग मिला कर तयार किया जाता है) काम मे लिया जाता है। इसका एक और विकसित रूप है—फाउन्डेशन टयूब जिसके लगाने से मुँह पर निखार आ जाता है। पहले काजल तिल्ली के तेल से तैयार करके बनाया जाता था पर अब अधिकतर भीमसेनी काजल का प्रयोग होता है। मुँह पर शेड देने के लिये गुलाल का सहारा अब नही लिया जाता। इसके लिए रूज लिपिस्टिक आदि का प्रयोग होता है। दाढी मूछे पहले भेड बकरी के ऊन को तारों में बाधकर बनाई जाती थी किंतु आजकल इसके लिए 'क्रेप का प्रचलन हो गया है। पहले दाढी मूछा में बधे तार से उसे अटकाया जाता था किन्तु आजकल क्रेप को सोल्यूशन टयूब से अथवा 'स्प्रिट गम' से लगाया जाता हैं।

मेक अप, सम्प्रति तीन प्रकार से उपलब्ध हैं —

(1) स्टेज मेट अप

(2) कमरा मेट अप

(3) कलर फिल्म मट अप

(1) लिक्विडपेन – बोडी पेंट के लिए काम आता है।

(2) पेनकेक – इसे फाउन्डेशन लगाने के बाद प्रयुक्त करते हैं।

(3) एलसापेस्टिक – मुंह पर हाई लाईट शेड देने के काम आता है।

इसके बाद पाउडर का प्रयोग होता है। फिर पानी में भिगोकर स्पंज लगाते हैं। पाउडर अधिक लग जाने से उसे ब्रुश से साफ कर लेते हैं।

(4) पिचके हुए गालों को उभारने के लिए स्पंज के टुकड़े मुंह के गढों में लगाए जाते हैं। इन सब कामों में 20 नंबर तक के ब्रुश काम आते हैं। इसके लिए एक स्पेशल ब्रुश आता है, जिससे झुर्रियां लगाते हैं। आंखों की शेडस बनाने में भी इसका प्रयोग करते हैं।

(5) मेकअप को शीघ्र हटाने के लिए चारमिस क्रीम मुंह पर लगाया जाता है। आलीवोइल से भी मेकअप छूट सकता है। यह एन्टीसेप्टिक भी है।

(6) मोडीपेंट – पेनकेक को मिलाकर स्पंज से मुंह पर लगाते हैं।

(7) स्प्रिटगम (जो स्प्रिट लाख + रोजीनम से मिलकर बनता है) दाढी मूंछें चिपकाने के काम आता है।

(8) मेस्करा – भौंहों के बालों को काला करने के लिए (देवकन्या आदि के रूप विन्यास के लिए) काम में आता है।

भारत सरकार की ओर से संचालित संगीत नाटक अकादमी तथा गीत एवं नाटक प्रभाग में मेकअप सिखाने के लिए प्रबन्ध किया गया है। गीत एवं नाटक प्रभाग दिल्ली में कुल 9 मेकमैन कार्यरत हैं। मेकअप कला पर श्री अजी बाबू (आचार्य द्वारका) की एक पुस्तक[1] भी मिलती है जो मेकअप कला के लिए एक निधि है। अजी बाबू के दो विशेष मेकअप द्रष्टव्य हैं—

(1) यदि मुंह का जबड़ा टूटा हुआ हो एक तरफ की दंतावली राक्षसनुमा भयानक दीखती हो तो ऐसे मेकअप के लिए पियानो की सफेद दंती लेकर उसको मानव दंतावली की तरह काटलें, फिर उसे कान से लेकर मुंह तक बांध दें। उसके ऊपर मोम से नकली ओष्ठ बनादें।

---

1 द्रष्टव्य- 'आहार्य मू' मंरियू रंगस्थली लेखक आचार्य द्वारका

(2) उन्होंने बताया कि आगे फाडने के लिय दशकों क समक्ष जो प्रदशन किया जाता है उसकी अपनी प्रणाली है-दो टयूबो म थोडा सा आटा तथा गाढ़ा लाल र ग भर कर उ हे दोनों प सलियों पर चिपकादें उनके दूसरे मुखों को कानों के ऊपर लाकर आंखो के सीमेंपन के पास जान्सन चातीसे चिपका कर मु ह के र ग जसा लेपन कर दें । अभिनय के साथ पात्र आँख में चाकू मारने की मुद्रा बनायेगा और एक हाथ म प सली वाली टयूब का दबायगा तो आख के पास वह खून और आटा निकलेगा जिसस दशकों को फूटी हुई आख के लोथे निकलते दिखेंगें ।

इन सब तकनीको से यह प्रमाणित हो जाता है कि अभिनय एव र गसपन का कितना घनिष्ठ सबध है ।

ध्वनि प्रयोग

यह भी र गशिल्प का एक अनिवाय अ ग है । इसका प्रयोग हमें प्रारम्भकाल से ही मिलता है । ध्वनि के अ तगत वाद्यवृन्द (सगीत) एव प्रयोग के अ तगत प्रस्तुतीकरण के सभी साधन सम्मिलित हैं । वाद्यवृन्द मे ढोलक हारमोनियम, शहनाई सितार सारगी, मृदग, बांसुरी तबले, नगाडे, पखावज क्लारनेट, बोंगाड्रम आदि गण नीय हैं । भारतीय नाटय परम्परा मूलत सगीत पर आधारित है । भा रत की ऐसी कोई नाटय रचना नही जो स गीत विहीन हो । कुछ नाट्य तो सगीत की धुना पर ही होते हैं । कुछ नाटयो के अभिनय विशेष पर सगीत लहरियो से सगत की जाती है । नौटकी नो वाद्यों और नगाडों का खेल है । आधुनिक जीवन की नाटकीय प्रस्तु तियों में शहनाई का दद भरा रहता है । नत्य नाटय, ध्वनि रूपक (रेडियो नाटक) आदि नाटक विशेषत सगीतपूण है ।

परछाइयों के पीछे से ध्वनि के प्रयोग

ध्वनि कई रूपों में प्रयुक्त की जाती है । ध्वनि के माध्यम से वास्तविकता के बोध का भ्रम उत्पन्न किया जाता है –जैसे पशु पक्षियों की आवाज, तूफान आंधियां बिजली की कडक, पानी की बौछार नाच आग्नि की ध्वनियो को मच पर प्रदर्शित करना । इनमे टेप रेकाड की सहायता लेनी पडती है । श्री सवदान द ने अनुगू ज, पदचाप, घोडो की टाप, बदूक अथवा पिस्तौल, हवाई जहाज मडराने, रेलगाड़ी

की सीटी देने टेलीफान की घटी, मकान के टूटकर गिरने शीशा फूटने, चाय के बतन टूटने, ग्रादि के ध्वनि प्रयोगों का विस्तृत उल्लेख किया है।[1] तूफान का जैसे टेप रेकार्ड दृश्य समय पर प्राप्त न हो पाए तो वहां एक बडा पखा(पेडस्टल फन) मगवाकर उसके सामने कागज, कपडे, मिट्टी घासफूस ग्रादि उडाकर तूफान का दर्शांकन किया जा सकता है।

> कभी—कभी यन्त्रों के ग्रतिरिक्त ग्रभ्यस्त कलाकार निज मुखाग्र से भी ध्वनि उत्पन्न कर सकता है। जोधपुर मे श्री ग्रनिल गुप्त ग्रौर श्री मोहन सिंह नाक से इतनी सुन्दर शहनाई बजाते कि दर्शकों को वास्तविकता का भ्रम हो जाता। इसी प्रकार कुत्तों ग्रौर गदहों की की ध्वनियां जो पहले टेपरिकार्ड की जाती थीं ग्राज ग्रभ्यस्त कलाकारों के लिये बहुत साधारण बात है।

ध्वनि ग्रौर ग्रभिनय - इन दोनों का साम्य बहुत महत्वपूर्ण है। यदि ध्वनि सयोजक दक्ष न भी हो तो श्रेष्ठ ग्रभिनेता ग्रपने ग्रभिनय कौशल से उस ध्वनि की रिक्तता की पूर्ति ग्रपनी प्रत्युत्पन्न मति से निज निर्मित सवाद की ग्राड मे कर लेता है ग्रौर दर्शकों को ध्वनि-प्रभाव हीनता (Soundeffect Failure) का ग्राभास नहीं होने देता। इसमे सावधानी की बहुत ग्रावश्यकता है।

भारत मे चलचित्रों के निर्माण काल मे माइक नाट्य प्रदर्शनों में प्रयुक्त होने लगे जो ग्राजकल बहु प्रचलित है किन्तु ग्राज भी ऐसी कई सस्थाए हैं जो धीरे धीरे इसका प्रयोग बिल्कुल बन्द कर रही है जैसे कलकत्ता की ग्रनामिका। ग्रनामिका मे ग्राज भी कलाकार को कुछ तेज बोलने का ग्रभ्यस्त बनाया जाता है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि जहां सीमित ग्रौर सम्य दर्शक हैं वहा माइक की ग्रवश्यकता नहीं होती। वे दर्शक चुपचाप बैठे देखते रहते हैं। यहां तक कि पैनोसोनिक थियेटर के लिए तो यह ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। सरकारी रगशालाग्रों मे प्राय फिलिप्स कम्पनी की ही ध्वनि व्यवस्था है। यहां एलेक्ट्रोकली एम्पली फायर-प्री एम्पलीफायर

---

1 रगमच श्री सर्वदानद पृष्ठ 128 131

बटरी एम्पलीफायर, साधारण माइक युनिवर्सल माइक आदि प्रयुक्त होते हैं।[1] शोर माइक, हंगिग माइक आदि का प्रयोग भी बढ रहा है। माइक की ध्वनि खींचने की क्षमता अलग अलग होती है। अतः कलाकार को माइक पर कैसे बोलना चाहिए तथा कितना पास आकर बोलना चाहिये आदि का भी ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। हंगिग माइक और शोर माइक बहुत दूर से बल्कि नेपथ्य और पक्षवार्ड्स में खड़े व्यक्तियों की ध्वनि भी खींच कर प्रसारित कर देते हैं।

ध्वनी एवं प्रकाश —

कभी कभी ध्वनि एवं प्रकाश के मिले जुले प्रयोग भी मंच पर दिखाई देते हैं जैसे बिजली का कड़कना बादल का गरजना वर्षा का होना आदि। इनमें ध्वनि के साथ प्रकाश का संयोग भी बहुत आवश्यक है। इन दोनों के संयुक्त प्रयास के बिना ऐसे प्रयोग दुष्कर हैं। कुछ लेखकों ने माइक के प्रयोग को भौंडापन लिए हुए बतलाया है।[2] यदि ढंग के माइक हो और उनका स्थान ऐसी जगह निश्चित किया जाए कि दर्शक उन्हें देख न सकें तो वे मंच सज्जा पर व्यवधान नहीं बन सकते। ध्वनि के माध्यम से एक विभाग का और विस्तार हुआ है जिसके द्वारा प्रसारित नाटक को ध्वनि रूपक कहा जाता है। इसका भी अपना एक तकनीक और विधान है।

ध्वनि रूपक

ध्वनि प्रसाधनों के विस्तार से ध्वनि रूपक की उत्पत्ति हुई और फलतः रेडियो पर नाट्य प्रसारण होने लगा। रेडियो नाटक में नाटक अगोचर उपकरणों के माध्यम से ही दर्शक के हृदय तक पहुँचता है। मंच पर प्रदर्शित होने वाले नाटकों के सभी उपकरण लगभग समक्ष होते हैं। रेडियो नाटक का आधार ध्वनि है। इसके मंच को श्रव्य मंच और अदृश्य मंच कहा जाता है। इनके नाटकों को ध्वनि नाटक ध्वनिरूपक और श्रव्य नाटक भी कहा जाता है। आकाशवाणी के केन्द्र इस नाट्य लेखन एवं अभिनय के व्यावसायिक केन्द्र हैं।

---

1 श्री कर्मवीर माथुर, प्रशासनिकअधिकारी रवीन्द्र मंच जयपुर का पत्र (27 11-1969) के अनुसार

2 श्री नाट्यम् वाराणसी पृष्ठ 29

इस प्रस्तुतीकरण में श्रोता अभिनेताओं से अदृश्य होते हैं और अभिनेता श्रोताओं से। इसमें सामाजिक दर्शक न कहकर श्रोता ही कहा जाता है। वे कानों से सुनते हैं किन्तु उनके ज्ञानचक्षु अपने भीतर प्रसारित नाटक की सम्पूर्ण चित्रित स्थिति का अन्तर अवलोकन करते रहते हैं। ध्वनि रूपकों में शब्द, ध्वनि और प्रभाव तीनों महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। इन तीनों के माध्यम से दर्शक (श्रोता) को बांध रखने की कला ही रेडियो नाटक की विशेषता है। इसमें प्राय रोचक कथानक का चयन किया जाता है जिसमें स्थान और समय का कोई बंधन नहीं है।[1] रेडियो नाटक में कथा आदि मध्य अथवा अन्त कहीं से आरंभ हो सकती है। पूर्व घटनाओं को फ्लैश बैक द्वारा बतलाया जा सकता है। नाटककार अपने पात्रों का परिचय संवादों के माध्यम से तत्काल दे देता है। इसमें संवाद सब प्रमुख है। संवादों के द्वारा वेशभूषा एवं मंच सज्जा से भी परिचित कराया जा जाता है। संगीत ध्वनि–प्रभाव के माध्यम से इसमें दृश्य परिवर्तन किया जाता है। फेड इन, फेड आउट, क्रास फेड आदि द्वारा कुशल निदेशक बड़ी सफलता पूर्वक दृश्यान्तर स्थापित कर देता है। उदाहरण हेतु संवाद देखिये —

मोहन– तुम अपने आपको समझते क्या हो, सोहन ? मैं अभी बड़े साहब से तुम्हारी शिकायत करूंगा।

(फेड आउट)

मोहन– (फेड इन) सर, सोहन ने मेरी तौहीन की है।[2]

इसी प्रकार स्पष्ट है कि जिसका स्वर आगे लाना हो वहां फेडइन और जिसको पीछे ले जाना हो वहां फेड आउट होता है। यही रेडियो नाटक की मुख्य दृश्यान्तरण विधि है।

रेडियो नाटक में पात्र चयन के लिये निदेशक मुख्यतः स्वर विशेषता को महत्व देता है। वह उच्च एवं निम्न आवृति स्वरों वाले पात्रों को आवश्यकतानुसार माइक पास अथवा दूर रख कर संवादोच्चारण करवाता है। यहां पर

---

1 नागरी पत्रिका मार्च अप्रैल 68 पृष्ठ 79 रंगमंच व रेडियो नाटक श्री विनोद रस्तोगी

2 वही पृष्ठ 82

प्रत्येक कलाकार को 'फेड इन' 'फेड आउट' का ज्ञान आवश्यक है। फेड इन फेड आउट संवाद बोल कर नहीं, बोलते हुए होना चाहिये।[1] प्रसारण के पूर्व ध्वनि प्रभावों तथा संगीत के साथ रेडियो नाटक का भी ड्रेस रिहर्सल होता है। बहुधा निर्देशक ड्रेस रिहर्सल की रिकार्डिंग करा लेता है। रेडियो अभिनेता वाचिक अभिनय प्रधान माना जाता है। पर गात्रिक अभिनय भी भावाभिव्यक्ति के सौन्दर्य हेतु आवश्यक है। माइक्रोफोन रेडियो कलाकार का मित्र है न घातक शत्रु प्रत्युत उसका भेदिया है। मित्र इसलिये नहीं कि उसके सामने अभिनेता खुल कर कुछ बोल नहीं सकता और शत्रु इस लये नहीं है कि वह स्वयं इस पर वार नहीं करता, बल्कि अन्य सामाजिकों के सामने उस अभिनेता की इज्जत खराब करा देता है। जो वचन उसके मुंह से निकलते हैं उसे प्रसारित कर देता है।

रेडियो अभिनय में सांस पर नियन्त्रण अनिवार्यावश्यक है। रेडियो नाटक में प्रयुक्त होने वाले माइक्रोफोन में चार पक्ष पाते हैं दो सक्रिय पक्ष तथा दो निष्क्रिय पक्ष। कलाकार अपने संवाद सक्रिय पक्ष के सामने खड़े होकर बोलते हैं। किन्तु अतमन अतरात्मा प्रेत आदि के संवाद निष्क्रिय पक्ष की ओर से बुलवाये जाते हैं। ताकि स्वर में अस्वाभाविकता आ जाए और श्रोता को अप्राकृतिक पात्रों का आभास मिल सके।[2]

प्रसारण अभिनय

इसके कलाकार स्टूडियो में होते हैं तथा निदेशक प्रस्तुतिकक्ष (बूथ) में। दोनों के बीच पारदर्शी शीशे की दीवार होती है ताकि निर्देशक सांकेतिक भाषा से उन्हें कुछ समझा सके। यह भी एक प्रकार का ग्राउंड रिहर्सल कहा जा सकता है किन्तु इस ग्राउंड रिहर्सल में रेडियो नाटक, निदेशक अथवा प्रस्तोता (प्रोड्यूसर) कलाकारों को कई बार टोकता है, रोकता है, कट शब्द का बार-बार प्रयोग करता है। बूथ में खड़े होकर कराया गया रिहर्सल प्रारम्भिक अथवा माइक वाले रिहर्सल से थोड़ा अच्छा होता है। निर्देशक का रोकना टोकना यहाँ भी जारी रहता है। मंच के ग्राउंड रिहर्सल में निदेशक मंच पर टोका टोकी नहीं करता। वहाँ अभिनेता स्वतन्त्र रहते हैं। कभी कभी बूथ में प्रस्तोता स्वयं टेप भी करता है। इस प्रकार

---

(1) नागरी पत्रिका मार्च अप्रैल 68 रंगमंच व रेडियो नाटक-श्री विनोद रस्तोगी पृष्ठ 84 86

(2) वही पृ 88

घण्टों तक 'कट' 'मगन' होते होते यह नाटक रिकार्ड किया जाता है। आकाशवाणी लखनऊ के श्री जयदेव शर्मा 'कमल' और इलाहाबाद के श्री विनोद रस्तोगी सुयोग्य प्रस्तोता हैं। रेडियो अभिनेताओं में लखनऊ के श्री एवं श्रीमती माया गोविन्द, श्री सक्सेना, इलाहाबाद के श्री विजय बोस और हीरा चड्डा तथा राजस्थान जयपुर के श्री नन्द लाल शर्मा आदि प्रमुख हैं। श्री मुख्तार अहमद का नाम भी श्रेष्ठ प्रस्तोताओं में है। रेडियो लेखकों में सर्व श्री विनोद रस्तोगी, जयदेव शर्मा 'कमल', और राजस्थान जयपुर से श्री गिरीश के सुमन के नाम उल्लेखनीय है। श्री गिरीश के सुमन 1963 से पूर्व आकाशवाणी के सम्पर्क में हैं अतः उनके बहुत से नाटक प्रसारित हो चुके हैं, जिसमें वीर पुत्र, हलिया पर हाथ, अंतिम कन्यादान, इमली के पत्ते, बदलते चहरे, गाँव की सुबह, टूटे फूस का छप्पर, ढलती दीवार भूल भूलैया, इस पार उस पार, कुंवारी बात, गंगा जमुना, गठ जोड़ो, ठाकुर श्याम सिंह का परिवार, हर घर एक बात, सहयोग और बढ़ते कदम आदि मुख्य हैं।

रंग प्रयोग

अभिनय में दृश्यगत प्रयोगों का बड़ा महत्व है। कभी कभी प्रयोग और चमत्कार को एक ही मान लिया जाता है पर मतक का जीवित होना आकाश में उड़ना, विशाल समुद्र का सूख जाना, दीवार का चल पड़ना, पर्वत का उड़ना आदि, चमत्कार हैं प्रयोग नहीं। इसके लिये जो उपकरण प्रयुक्त होते हैं, उन्हें कुछ हद तक प्रयोग कहा जा सकता है प्रयोग जब फलीभूत होता है तब चमत्कार कहलाता है। जो सामग्री चमत्कार प्रदर्शन हेतु काम में लाई जाती है जिससे यथेष्ट सफलता मिलती है और दर्शक पर प्रभाव पड़ता है उस समस्त क्रिया विशेष को हम प्रयोग की संज्ञा से सम्बोधित कर सकते हैं। अद्युना दृश्य के कई प्रयोग द्रष्टिव्य हैं जैसे एक पात्र का दो या अधिक रूपों में प्रस्तुतीकरण, मंगलाचरण अथवा सूत्रधार का नवीनीकरण, नाटक के सौन्दर्यबोध हेतु सेटों एवं पर्दों का नया प्रयोग प्रतीकात्मक मंचन अथवा शब्दहीन नाटकों का प्रस्तुतीकरण आदि प्रयोग की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। प्रो कल्याण मल लोढा ने रूसी नाटककार मेयर होल्ड के रंगमंच विस्तार के प्रयोग की विवेचना की है जिसमें अभिनेता दर्शकों के साथ नि:संकोच मिलते हैं और सम्पूर्ण रंगशाला ही एक प्रकार से रंगमंच बन जाती

है।[1] यह भौगोलिक निकटता निश्चय ही एक प्रयोग है। अभिनेता दर्शकों के बीच उठकर आये और अपना अभिनय प्रस्तुत करे यह भी एक प्रयोग कहा जायगा। मोहन राकेश का कथन है कि गंभीर रंगप्रयोगों से हमारा अभिप्राय एक विशेष दृष्टि और स्तर रख कर चलने वाले प्रयोगों से है। मात्र कुछ बुद्धि जीवियों को संतुष्ट करने वाले प्रयोगों से नहीं। रंगप्रयोग की गंभीरता का अर्थ एक सबाउ फिस्म की लदी हुई गंभीरता नहीं स्तर और दृष्टि की गंभीरता है जिसका निर्वाह एक व्यंग्य या प्रहसन के माध्यम से दर्शक वर्ग को निरंतर गुदगुदाते हुए भी संभव है।[2]

श्री विष्णुकान्त शास्त्री ने नाटय प्रयोगों से दो पक्ष माने हैं-1 उत्पादक दर्शक वर्ग 2 उपभोक्ता वर्ग। पहले के अन्तर्गत नाट्यकार, नाटय प्रयोक्ता अभिनेता तथा अन्य रंगशिल्पी आते हैं और दूसरे के अंतर्गत आते हैं दर्शक[3]

आधुनिक रंगप्रयोग प्राय बुद्धिजीवियों को ही प्रभावित करते हैं

सैद्धान्तिक पक्ष (नाटक रचना के सिद्धान्त)

नाटक रचना के सैद्धान्तिक पक्ष को 'कथा शिल्प' भी कहा गया है। संस्कृत नाट्य कथा शिल्प के संबंध में भरत ने अपने नाटय शास्त्र में विस्तार से विवेचन किया है। कथा शिल्प नाटक के वस्तु विधान से सम्बद्ध है। कथावस्तु नाटक का एक अनिवार्य पक्ष है। नाटक के कार्य व्यापार (रंगचर्या) को वस्तु (कथावस्तु) की संज्ञा दी जाती है। संस्कृत नाटयशास्त्र में नेता व रस के साथ वस्तु को भी नाटक का मूलभूत तत्व माना गया है। कथा वस्तु दो प्रकार की होती है (1) आधिकारिक कथावस्तु और (2) प्रासंगिक कथा वस्तु।[4] इसके कई पक्ष हैं।

---

1 दर्शक और आज का हिन्दी रंगमंच, अनामिका कला संगम द्वारा आयोजित नाट्य परिसंवाद मई 1968 पृष्ठ 71

2 वही पृष्ठ 28

3 'दर्शक और आज का हिन्दी रंगमंच' पृष्ठ 9

4 अभिनव नाटय शास्त्र, आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी प्रथम खण्ड पृष्ठ 122 123

1 अर्थ प्रकृतियां—कथा वस्तु को प्रधान फल की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कार युक्त अंशो को अर्थप्रकृति कहते हैं। अर्थ प्रकृतियां पांच मानी गई है– 1) बीज, 2) बिन्दु 3) पताका 4) प्रकरी 5) कार्य।

बीज — उस परिस्थिति को कहते हैं जिससे कार्य व्यापार का आरंभ होता है। 'रत्नावली' में प्रधान अमात्य का कार्य बीज का ही है। वह मूलकारण स्वरूप है।

बिन्दु — किसी गौण घटना का जब अनायास विकास हो जाता है उसे हम बिन्दु की संज्ञा देते हैं। इससे घटना का संकेत मिलता है।

पताका और पताकास्थानक महान घटना की प्रतीक स्वरूप होती हैं। जब कथावस्तु निरंतर गतिमान हो तब वह पताका कहलाती है। प्रासंगिक वस्तु में चमत्कार पूर्ण धारावाहिकता पताकास्थानक है। आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी (अभिनव भरत) ने पताकास्थानक के विषय में लिखा है कि जहां करना कुछ हो परन्तु अकस्मात किसी कारण के आ जाने से और ही कुछ करना पड़े उस कार्य को पताकास्थानक कहते हैं। साहित्य दर्पणकार के अनुसार यह चार प्रकार का होता है —

1 जहाँ किसी प्रेमयुक्त व्यवहार से सहसा कोई बड़ी इष्ट सिद्धि हो जाये वह पहले प्रकार का पताका स्थानक होता है।

2 जहा अनेक चतुर वचनों से गुंफित और अतिशय शिष्ट दुहरे अर्थ वाले वाक्य हो वहा दूसरे प्रकार का पताका स्थानक होता है।

3 जो किसी दूसरे अर्थ को सूचित करने वाला अप्रत्यक्ष अर्थ वाला तथा विशेष निश्चययुक्त वचन हो और जिसमे उत्तर भी श्लेषयुक्त हो वह तीसरा पताका स्थानक है।

4 जहाँ सुन्दर श्लेषयुक्त या दो अर्थ वाले वचनों का प्रयोग हो और जिसमे प्रधान फल की सूचना होती हो वहाँ चौथा पताका स्थानक होता है।

ये चारों पताकास्थानक किसी में मंगलार्थक और किसी मे अमंगलार्थक होते हैं किन्तु होते सब सन्धियों में हैं। प्रथम पताकास्थानक मे अवस्था का विप

बंध दिखाया जाता है परन्तु शेष तीनों में वचनों का श्लेष ही भावी मर्यों को ध्वनित करता है।

प्रकरी — अल्पकालिक चलने वाली घटना को प्रकरी कहते हैं। यह गौण होती है। इसमें प्रमुख पात्रों का हाथ नहीं रहता। पताका और प्रकरी प्रासंगिक कथावस्तु के दो भेद हैं।

कार्य — यह नाटक की चरम परिणति है। यही नाटक के लक्ष्य की प्राप्ति है।

कथावस्तु की पांच कार्यावस्थाएं

नाटक की कथावस्तु आधिकारिक एवं प्रासंगिक रूप से विभाजित होती है। प्रधान पुरुष तथा फल भोक्ता को नायक कहते हैं जिसके मुख्य लक्ष्य की पांच अवस्थाएं मानी जाती हैं—

(1) आरंभ 2) यत्न 3) प्राप्त्याशा 4) नियताप्ति और 5) फलागम।

(1) आरंभ — इसमें फलप्राप्ति के लिये उत्सुकता प्रतीत होती है।

(2) यत्न — इसमें फल प्राप्ति के लिए उद्योग 'यत्न' कहलाता है।

(3) प्राप्त्याशा — इसमें सफलता की संभावना परिलक्षित होती है। यह वह स्थिति है जब फलप्राप्ति की संभावना उपाय और आशंका के बीच में रहती है।

(4) नियताप्ति — इसमें सफलता निश्चित हो जाती है।

(5) फलागम — फल अथवा सफलता की प्राप्ति फलागम कहलाती है।

पंच सन्धियां

पंच कार्यावस्थाओं और पंच अर्थप्रकृतियों के समानान्तर संयोग से क्रमशः पंच संधियों की घटित होती हैं। नाटक की घटनाओं की शृंखला को संधियों की संज्ञा दी गई है। ये पांच प्रकार की मानी गई हैं।

(1) मुख — इसमें घटनाओं की भूमिका मात्र होती है। इसके द्वारा आरंभ में ही भावी घटनाक्रम का संकेत मिल जाता है।

(2) प्रतिमुख — इसमें गौण घटना होती है । इसके द्वारा किसी बाधा या घटनाक्रम के विकास का पता चलता है ।

(3) गर्भ — इसमें ऊपर से देखने पर असफलता दृष्टिगत होती है परन्तु वास्तव में यह प्राप्ति की सूचक है ।

(4) विमर्श — इसमें कथा ऐसा मोड लेती है जिससे आशाओं पर तुषारापात हो जाता है और अप्रत्याशित घटनाएं घटती हैं ।

(5) उपसंहृति या निर्वहण — यहाँ नाटक की समाप्ति होती है । उपर्युक्त वर्गों के भी कई उप विभाग होते हैं । आचार्यों ने इनके चौसठ विभाग बतलाये हैं । इनमें 12 मुखांग 13 प्रतिमुखांग 12 गर्भांग 13 विमर्शांग 14 निर्वाहणांग होते हैं । यथा मुख संधि में 12 उपांग हैं— उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान विधान परिभव या परिभावना, उद्भेद, करण भेद अर्थात प्रोत्साहन हैं । *प्रतिमुख के उपांग कुल 13 हैं-विलास* परिसर्प विधूत शम नर्म द्युति प्रगमन निरोध पर्युपासन पुष्प, उपन्यास वज्र वर्णसंहार । गर्भ संधि के कुल 12 गर्भांग हैं—अभूताहरण मार्ग, रूप उदाहृति, संग्रह, अनुमान अधिबल, तोटक, उद्वेग, संभ्रम, अंतराक्षेप । अवमर्श या विमर्श संधि के भी 13 विमर्शांग होते हैं-अपवाद सम्फेट विद्रव, द्रव शक्ति, द्युति, प्रसंग, छलित, व्यवसाय, निरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान । निर्वहण संधि में 14 निर्वाहणांग हैं-संधि विबोध ग्रथन, निर्णय, प्रसाद आनंद समय, वृत्ति, भाषण, पूर्णभाव उपगूहन, काव्य, संभार और प्रशांति ।

इक्कीस अंत संधियां या संध्यंतर—

शास्त्रकारों के अनुसार संध्यंतर संधियों के अंदर कई उपसंधियां हैं जो निम्नलिखित हैं— साम दान दण्ड भेद प्रत्युत्पन्नमति, वध गोत्रस्खलित ओज धी, क्रोध, साहस, माया, संवृति भीति, दौत्य, हेत्ववधारण स्वप्न लेख, मद चित्र ।

6 निमित्त— 5 संधियों के 64 अंग और 31 संध्यंतरों का प्रयोग इन 6 निमित्तों से होता है-इष्टार्थ गोप्य, गोपन, प्रकाशन राग, आश्चर्य, प्रयोग और वृतान्त का अनुपक्ष ।

सवाद

प्राचीन नाट्याचार्यों ने तीन प्रकार के सवाद बतलाए हैं।

1) सवश्राव्य 2) नियत श्राव्य और 3) अश्राव्य

सर्वश्राव्य

जो सवाद अथवा कथोपकथन दर्शकों के और मंच पर उपस्थित सब पात्रों को सुनाने के लिए हों उन्हें सवश्राव्य कहते हैं।

नियतश्राव्य

य दो प्रकार के होते हैं – 1) जनान्तिक 2) अपवारित। कर मुद्रा से मच पर उपस्थित अन्य लोगों की ओट करके दो व्यक्ति जो परस्पर बात करते हैं उसे जनान्तिक कहते हैं और जब उपस्थित व्यक्ति की ओर से घूमकर उसका कोई रहस्य कहा जाता है तो उसे अपवारित कहते हैं।

अश्राव्य

बिना दूसरे पात्र के यदि कोई पात्र आकाश की ओर देखकर इस प्रकार प्रश्न और उत्तर करता है मानो वह किसी से बातचीत कर रहा हो तो इसे आकाश भाषित कहा जाता है। इसको स्वगत भाषण भी कहा गया है क्यों कि यह सब के लिए अश्राव्य होता है

कथावस्तु

कथावस्तु के उस भाग को, जो सामाजिक नीति के विरुद्ध या शास्त्र निषिद्ध हो अथवा मुख्य काय का अनुरूप कारक हो रंगमच पर प्रदर्शित न करने का विधान है परन्तु पूर्वापर सबंध से अवगत कराने हेतु पूर्वोक्त प्रकार के जिस कथा भाग से प्रेक्षक वग का परिचय होना अनिवार्य हो वह अ श कतिपय अमुख्य पात्रों के सवाद द्वारा उपस्थित किया जाता है। ऐसे सवाद को अर्थोपक्षेपक कहते हैं।[1] कथा वि यास की दृष्टि से कथावस्तु म दो प्रकार की सामग्री रहती है दृश्य और सूच्य। वह कथा जो मच पर दर्शकों के नेत्रों के सम्मुख प्रस्तुत की जाये दृश्य होती है और व घटनायें जो यद्यपि मुख्य कथा से सबद्ध होकर उसे फल प्राप्ति की ओर अग्रसर करती हैं तथा पात्रों के चरित्र चित्रण में भी सहायक होती हैं तथापि मच पर घटित

---

(1) हिन्दी विश्वकोष (खण्ड 6) स रामप्रसाद त्रिपाठी पृष्ठ 19–20

हुई न दिखलाई जाये वरन् पात्रों के कथोपकथनों द्वारा अवगत करा दी जाय उन्हें सूच्य कहते हैं। सूच्य वस्तु का गठन अर्थोपेक्षक द्वारा किया जाता है जिसके पांच प्रकार हैं।

विष्कम्भक

अंक के पूर्व नाटकारंभ में अथवा दो अंकों के मध्य इसकी स्थिति होती है। इसके द्वारा विगत या आगे आने वाली घटना की सूचना दी जाती है। यह सूचना केवल दो पात्रों के संवादों द्वारा ही दी जाती है। श्रीकृष्णदास के अनुसार संस्कृत नाटकों के आरंभ में एक विष्कम्भक होता है जिसमें दर्शकों को लेखक, उसकी कृति, पात्रों तथा नाटक में आयी अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय कराया जाता है। विष्कम्भक में अधिक से अधिक दो पात्र होते हैं। एक तो व्यवस्थापक दूसरा उसके दल का अन्य व्यक्ति। विष्कम्भक के प्रथम भाग को पूर्वरंग की संज्ञा दी जाती है। धार्मिक प्रदर्शनों में जब किसी देवता की प्रार्थना की जाती है तो उसको नान्दी कहते हैं।[1] कभी कभी जब कोई बाधा उपस्थित हो जाती है उस समय विष्कम्भक और प्रवेशक जो वहीं मौजूद रहते हैं, श्रोताओं को सारी बातें बताते हैं। आरंभ में विष्कम्भक सामने आ सकता है और अंकों के बीच में प्रवेशक आ सकता है। प्रवेशक दृश्य परिवर्तन की घोषणा किया करता है। विष्कम्भक केवल कहानी की खाई ही नहीं पाटता बल्कि श्रोताओं का मनोरंजन भी करता है।[2] यह भी ज्ञातव्य है कि अंग्रेजी नाटकों के आरंभ या बीच के समय को अन्तराल अथवा विष्कम्भक नाम से अभिहित किया जाता है।

(2) प्रवेशक– यह दो अंकों के मध्य आता है। विष्कम्भक के समान इसको भी घटनाओं की सूचना दी जाती है।

(3) चूलिका– इसमें नेपथ्य से कथा संबंधी सूचनाएं दी जाती हैं।

(4) अंकास्य– इसमें एक अंक के अंत में बाहर जाने वाले पात्रों द्वारा आगामी अंक की कथा संबंधी सूचना दी जाती है।

---

(1) हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास पृष्ठ 81

(2) रंगमंच (शेल्डन चेनी) अनु श्रीकृष्णदास पृष्ठ 213

(5) अकावतार– पहले अक के पात्र दूसरे अक में आते हैं और उस पूव अक के अथ को विछिन्न बनाए रखते हैं तो उसे अकावतार कहा जाता है। अर्थात जहाँ बिना पात्रों के बदले हुए पूव अक की कथा आगे चलाई जाती है वहाँ अकावतार होता है। अकास्य और अकावतार दोनो मे पात्रों के वार्तालाप द्वारा सत्याथ की सूचना द दी जाती है।[1]

(6) अकमुख– साहित्य दपणकार आचाय विश्वनाथ को अकावतार एव अकास्य में भ्रम हो जाने की आशका हुई अत उन्होंने अकास्य के स्थान पर अकमुख नामक एक नए अर्थोपक्षेपक की रचना की। उनके अनुसार जहाँ एक ही अक में सब अको की सूचना दी जाये और जो बीजभूत अथ का सूचक हो उसे अकमुख कहा गया है।

कथावस्तु मे उपलब्ध सक्षित रगमच निदेशों को परिक्रम्य कहते हैं।[2] स्पष्ट है कि कथावस्तु एक शिल्प है जिसका अपना निश्चित विधान है। आधुनिक युग में अधिकतर लेखक इसे अपनाने का यत्न नहीं करते। वे इस कर्त्तव्य से निवृति पाना चाहते हैं। प्रत्येक नाटक में एक लिखित कथावस्तु होती है, चाहे छोटी हो अथवा बड़ी। ससार में किसी नाटक को वस्तु विहीन नहीं कहा जा सकता। इसमें कथ्य को सयोजित करने की जो कला होती है, उसे ही कथ्य शिल्प कहा जाता है। नाटय प्रस्तुतीकरण इस पर बहुत निभर करता है नाटकीय कथावस्तु के 3 प्रकार कहे गये हैं।

(1) प्रख्यात यह कथावस्तु ऐतिहासिक, पौराणिक और लोकप्रचलित होती है।

(2) उत्पाद्य वह कथावस्तु जो पूणत मौलिक और कल्पित हो।

(3) मिश्र इस कथानक में उपयु क्त दोनो पद्धतियों का योग होता है।

---

(1) हिन्दी नाटक सिद्धांत और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ 37-38

(2) भारतीय नाटय साहित्य सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, सस्कृत नाटक तथा अभिनय, डा वी राघवन पृष्ठ 10

कथानक के पर्याप्त रूप मे अ ग्रेजी का 'प्लाट' शब्द भी प्रचलित है। यह कथा का स क्षिप्त और सुगठित रूप होता है। कथानक म काय व्यापार की योजना मुख्य होती है। इसमे घटनाओं का कालानुक्रमिक वरण न न होकर काय कारण योजना मुख्य होती है। इसमे आकस्मिकता प्रधान तत्व है। इससे सम्बन्धित और कई शब्द हैं थीम, कथासूत्र, वस्तु आदि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि र गम च का भारतीय और पाश्चात्य विधान बडा विशद है। इसका स द्धान्तिक, व्यावहारिक और यान्त्रिक पक्ष न केवल अध्ययन का ही विषय है बल्कि अनुभव से भी सम्बद्ध है। वस्तुत र गम च के विश्लेषण का यही मूलाधार है।

पूर्व वैदिक एवं वेद कालीन रंगमंच

संस्कृत कालीन रंगमंचीय परम्परा के सैद्धांतिक पक्ष का वर्णन भारतीय नाट्य साहित्य में बहुपलब्ध है। वेदों के अनुसार नाटक के मुख्य 4 तत्व माने गये हैं संवाद, गीत, अभिनय और रस।[1] किन्तु भारतीय नाट्य परम्परा पूर्व वैदिक काल से चली आ रही है। इसका पूर्वतम रूप हमें वैदिक संवाद सूक्तों से मिलता है। ऋग्वेद में इस प्रकार से प्रायः पन्द्रह संवाद सूक्त मिलते हैं। यम यमी, पुरूरवा-उर्वशी अगस्त्य लोपामुद्रा, विश्वामित्र-नदी, इन्द्र-वामदेव, सोमविक्रय प्रसंग आदि के संवाद हैं। निर्विवाद रूप से इन संवाद सूक्तों में नाटकीय कथोपकथन के गुण विद्यमान हैं।[2] डा० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी के मतानुसार वेद के आध्यात्मिक और दार्शनिक तथ्यों को अभिनय के द्वारा जन साधारण के लिए भी ग्राह्य बनाने का प्रयत्न ऋग्वेदकाल से ही चला आता प्रतीत होता है। ये संवाद सूक्त इन्हीं अध्यात्म नाटकों के कथोपकथन माने जा सकते हैं।[3]

डा० हर्टल के मतानुसार वैदिक सूक्त गाये जाते थे। विंडिश पिशल और ओल्डन बर्ग आदि विद्वानों[4] के मतानुसार संवाद सूक्त भारोपीय काल से चले आने वाली एक प्राचीन गद्य पद्यमयी महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत आते हैं जिनमें से पद्य भाग सुव्यवस्थित और अधिक रसात्मक होने के कारण अवशिष्ट रह गया और गद्य

---

1 संस्कृत और उसका साहित्य डा० शान्तिकुमार, नानूराम व्यास पृष्ठ 96

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा (प्रथम खण्ड) डा० चन्द्रप्रकाश सिंह पृष्ठ 2 तथा भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृथ्वीनाथ द्विवेदी पृष्ठ 4

3 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० चन्द्रप्रकाशसिंह पृष्ठ 3

4 वही पृष्ठ 2

कथानक के पर्याप्त रूप में अंग्रेजी का 'प्लाट' शब्द भी प्रचलित है। यह कथा का संक्षिप्त और सुगठित रूप होता है। कथानक में कार्य व्यापार की योजना मुख्य होती है। इसमें घटनाओं का कालानुक्रमिक वर्णन न होकर कार्य कारण योजना मुख्य होती है। इसमें आकस्मिकता प्रधान तत्त्व है। इससे सम्बन्धित और कई शब्द हैं थीम, कथासूत्र, वस्तु आदि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रंगमंच का भारतीय और पाश्चात्य विधान बड़ा विशद है। इसका सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और यांत्रिक पक्ष न केवल अध्ययन का ही विषय है बल्कि अनुभव से भी सम्बद्ध है। वस्तुतः रंगमंच के विश्लेषण का यही मूलाधार है।

अध्याय २

पूर्व वैदिक एवं वेद कालीन रंगमंच

संस्कृत कालीन रंगमंचीय परम्परा के सैद्धांतिक पक्ष का वर्णन भारतीय नाट्य साहित्य में बहुपलब्ध है । वेदों के अनुसार नाटक के मुख्य 4 तत्त्व माने गये हैं संवाद गीत अभिनय और रस ।[1] किन्तु भारतीय नाट्य परम्परा पूर्व वैदिक काल से चली आ रही है । इसका पूर्वतम रूप हमें वैदिक संवाद सूक्तों से मिलता है । ऋग्वेद में इस प्रकार से प्रायः पन्द्रह संवाद सूक्त मिलते हैं । यम यमी पुरुरवा-उर्वशी, अगस्त्य लोपामुद्रा विश्वामित्र-नदी इन्द्र वामदेव सोमविक्रय प्रमुख आदि के संवाद हैं । निर्विवाद रूप से इन संवाद सूक्तों में नाटकीय कथोपकथन के गुण विद्यमान हैं ।[2] डा कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंहजी के मतानुसार वेद के आध्यात्मिक और दार्शनिक तथ्यों को अभिनय के द्वारा जन साधारण के लिए भी ग्राह्य बनाने का प्रयत्न ऋग्वेदकाल से ही चला आता प्रतीत होता है । ये संवाद सूक्त इन्हीं अध्यात्म नाटकों के कथोपकथन माने जा सकते हैं ।[3]

डा हर्टल के मतानुसार वैदिक सूक्त गाये जाते थे । विंडिश पिशल और ओल्डन बर्ग आदि विद्वानों[4] के मतानुसार 'संवाद सूक्त भारोपीय काल से चले आने वाली एक प्राचीन गद्य पद्यमयी महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत आते हैं जिसमें से पद्य भाग सुव्यवस्थित और अधिक रसात्मक होने के कारण अवशिष्ट रह गया और गद्य

---

1 संस्कृत और उसका साहित्य डा शान्तिकुमार, नानूराम व्यास पृष्ठ 96

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा (प्रथम खण्ड) डा चन्द्र-प्रकाश सिंह पृष्ठ 2 तथा भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक डा हजारी प्रसाद द्विवेदी पृथ्वीनाथ द्विवेदी पृष्ठ 4

3 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा चन्द्रप्रकाशसिंह पृष्ठ 3

4 वही पृष्ठ 2

भाग सु प्रवम्पित और अस्थिर होने के कारण पद्यात्मक संहिताओं में स्थान न पा सका। वह केवल अनुभित द्वारा चलता हुआ ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रवक रूप से सुरक्षित हो गया।[1]

पुराणों में नाट्य रूप

भारतीय पुराख्यानों म रंगमंच और नाटक के कई सूत्र संकेत दृष्टिगत होते हैं। भागवत पुराण म (स्कन्द 1, अध्याय 11, श्लोक 21) मे नाट्य कलाकारों की चर्चा आती है।[2] इसी प्रकार हरिवंश पुराण, मार्कण्डेय पुराण म नाटक मंचन के कतिपय प्रमाण मिलते हैं। मार्कण्डेय पुराण (बीसवें अध्याय) म भगवान महावीर के समक्ष सूर्याभिदेव के द्वारा एक नाटक का अभिनीत होना लिखा है।

भागवत पुराण मे विजयी कृष्ण के स्वागतार्थ द्वारका म विशिष्ट आयोजन किया गया था जिसम नट, नर्तक म धर्व ब दी आदि ने उत्तम श्लोक गाये थे।[3]

छालिक्य अपनी विद्या का एक अभिनय भेद है जिसमे संगीत, ताल, वाद्य का प्रयोग होता है। इस अभिनय मे सभी साधनों का एक साथ सामंजस्य दर्शित होता है। इसकी उत्पत्ति और परम्परा के सम्बन्ध मे छा दोग्य उपनिषद म सामवेद स सम्बद्ध एक कथा है उसम कहा गया है कि महर्षि अंगिरस ने देवकी पुत्र श्री कृष्ण को वेदा त विद्या का उपदेश देते समय सामवेद की गायन विधियों की भी दीक्षा दी थी। उस विधि को छालिक्य नाम स कहा गया। श्रीकृष्ण छालिक्य नृत्य के अधिष्ठाता थे। वेणुवादन म सामगान के साथ श्रीकृष्ण ने इस नृत्य का प्रयोग गोपियों के साथ किया था।

हरिवंश पुराण (2/89 /83 84) म स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उसका सर्वप्रथम प्रचलन देव, ग धर्व और ऋषियों ने किया। देवलोक म इस अभिनय के प्रति अधिक अभिरुचि को देख कर श्री कृष्ण और प्रद्युम्न ने लोक-मंगल एवं लोक मनोरंजन के लिए उसको भूलोक म प्रचलित किया। भूलोक म यह अभिनय द्वारा

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा चन्द्रप्रकाशसिंह व०१ पृष्ठ 4

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 65

3 हि दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृष्ठ 16

लोकप्रिय सिद्ध हुआ कि बाल युवा और वृद्ध सभी उनकी ओर सामान्य रूप से आकर्षित हुए। [1]

वैदिक (याज्ञिक) कार्यक्रमों में नाटकीय तत्व

वैदिक कर्मकाण्ड से युक्त नाटकीय तत्वों का स्वरूप हम दीर्घ अवधि तक प्रचलित यज्ञों में प्राप्त होता है। यह संभव है कि जो उकताने वाले लम्बे लम्बे यज्ञों के बीच ऋत्विजों और यजमानों के मनोरंजन के लिए प्रबोध कथाओं के साथ साथ कुछ नाटकीय प्रदर्शन भी होते रहे। [2] सोमक्रयण[3] आदि प्रसंगों को इसी प्रकार का प्रदर्शन माना जा सकता है। सोमयज्ञारम्भ में एक शूद्र सोम बेचता है उसका सोम खरीद कर मूल्य दे दिया जाता है किन्तु बाद में वह मूल्य उससे छीन कर उस पर यरों से मार मार कर भगा दिया जाता है। श्री कृष्ण के अनुसार सोम विक्रेता से स्वर्ण छीन कर उस पर कोड़े से प्रहार किया जाता है और वह भाग जाता है। [4] इसमें संवाद, अभिनय वस्तु रस आदि सभी विद्यमान हैं।

कालान्तर में जब इस प्रकार के तत्व वैदिक यज्ञों में हिंसा और भोगैश्वर्य लिप्सा का प्राधान्य हो गया तब नाटक को शताब्दियों तक इसी प्रकार चलते रहने के बाद अन्य (जैन बौद्ध आदि) विरोधों के कारण से नाटक को कर्मकाण्ड से छुटकारा मिला और वह स्वतन्त्र रूप से पल्लवित पुष्पित होने लगा। [5]

यज्ञों में जो नाटकीय तत्व प्राप्त होते हैं उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तब नाट्य कला अपनी शैशवावस्था में थी। उसका प्रदर्शन मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से होता था। इसका वही उपयोग था जैसे इंग्लैण्ड में एकांकी का प्रारंभिक स्वरूप था। वहां लम्बी अवधि वाले नाटकों के मध्यान्तरों के बीच दर्शकों को बिठाये रखने के उद्देश्य से एकांकी को प्रदर्शित किया जाता था। संभवत सोमक्रयण और

---

1 भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण वाचस्पति गैरोला पृष्ठ 140
2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, (प्रथम खण्ड) डा कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह पृष्ठ 6
3 ऋग्वेद 1/24 से 1/30
4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 58
5 वही पृष्ठ 8 9

महाव्रत के लिए यनस्थल को ही मच प्रयोग मे लाया जाता था। यन मे सम्मिलित प्रतियिगण यजमान आदि उसके दशक होते थ। इ्न्ही पूवजा द्वारा प्रदत्त पूव निश्चित एव पूव अभ्यस्त अभिनय प्रक्रिया म आज रगमच रूप मे प्राप्त है। यह भी सभव है कि उस समय इन अभिनय भांकियों को यों ही निराभास बिना श्रृगार (अनुवाय) के प्रस्तुत कर दिया जाता रहा हो। अत यह स्पष्ट है कि वदिक यनो म नाटक का जो स्वरूप हम मिलता है उसम रगलेपन साजसज्जा यत्र आदि का प्रचलन नही था।

डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह ने यह प्रतिपादित किया है कि नाटयशास्त्र मे वर्णित रगशाला के स्वरूप का निर्धारण वदिक यनमडपा के अनुकरण पर ही हुआ।[1] डा हजारी प्रसाद द्विवदी एव श्री पथ्वीनाथ द्विवदी ने नाटय शास्त्र के निम्नलिखित श्लोक

> रसाभावाह्यभिनया धर्मीवृति प्रकृत्तय ।
> सिद्धि स्वरास्तथातोप गान रग च सग्रह ॥

के अनुसार रस, भाव, अभिनय धर्मी वत्ति प्रवत्ति सिद्धि, स्वर आतोद्य गान और रग की व्याख्या करते हुए इन तत्वा को आनुवश्य (अर्थात् वश परम्परा स प्राप्त) कहा है। स्पष्ट ही नाटय शास्त्र अपने पूववर्ती नाटय साहित्य के अस्तित्व की सूचना देता है।[2] इससे विदित है कि भारत म समृद्ध नाटय परम्परा विद्यमान थी और यना म उसके एक पक्ष (हास्य अथवा मनोरजन परक सवादो) को प्रस्तुत किया जाता था।

समय निर्धारण की समस्य

डा मदन मोहन घोष डा एस एन दास गुप्ता, ए बी कीथ आदि विद्वान ने नाटय शास्त्र को 200 इ की रचना माना हैं।[3] प्रसिद्ध जमन विद्वान डा टा -लाख ने सीतावगा और जोगीमारा गुफाओ के आधार पर समृद्ध भारतीय रगमच

---

1 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा पष्ठ 8
2 भारतीय नाटय शास्त्र की परम्परा और दस रूपक, डा हजारीप्रसाद द्विवेदी पथ्वीनाथ द्विवदो पष्ठ 22-23
3 सस्कृत नाटय शास्त्र, एक पुनविचार, जयकुमार जलज प 10

की परम्परा को ईसा के 300 वर्ष पहले तक पहुँचा दिया है।[1] यद्यपि चेनी के अनुसार 19 वी शताब्दि पूर्व भारतवर्ष में नाट्य शालाएं नहीं थी।[2] फिर भी यह मत प्रमाण सिद्ध हो जाता है कि ईसा से तीन या चार सौ वर्ष पहले भारत में रंगमंच का निर्माण भलिभांति हो चुका था। रंगशालाओं में नट पौराणिक नायकों का अभिनय किया करते थे। ये नट गद्य में भी बोला करते थे। यदि हम यह बात स्वीकार करलें तो यह भी स्वीकार कर लेंगे कि पाणिनी के शिलालिन और कृशाश्व के नट सूत्रों की चर्चा करके यह प्रमाणित कर दिया है कि उस समय सूत्र थे इस लिए नटों को शिक्षा देने वाले प्रौफिक अवश्य होते होंगे जो इन कलाकारों को अभिनय कला में दक्ष बनाते रहे होंगे। इसी प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि ईसा से पांच छः सौ वर्ष पहले ही हमारे देश में किसी न किसी रूप में नाटक रचे और खेले जाते थे।[3] श्री सिंह ने नाट्य शास्त्र की सीता बैंगा जोगीमारा गुफाओं से पहले का माना है।[4]

डा कीथ संस्कृत नाटकों पर रामायण के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। रामायण की रचना ईसा से 500 वर्षों से पहले हो चुकी थी यह तो सभी मानते हैं। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिनके अनुसार रामायण की रचना ईसा से हजारों वर्षों पूर्व हुई थी।[5]

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय नाट्य कला का प्रारंभिक स्वरूप हमें वेदों और पुराणों में, रामायण काल में भरत के नाट्य शास्त्र में सम्बद्ध ग्रन्थों में मिलता है। रामायण काल में नाटक एवं नाटककार और नाटकघरों के बहुत प्रमाण मिलते हैं। वाल्मीकी रामायण (बालकाण्ड पाँचवे सर्ग) में अयोध्या में महिलाओं और अभिनेताओं के अपने अपने संघ और नाटकघर थे।[6] राम के राज्याभिषेक के समय तक स्थल पर नाट्य संघ का संकेत है—

1 हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास पृ 13, 122
2 रंगमंच (शेल्डान चेनी) अनुवादक श्री कृष्णदास, पृष्ठ 142
3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 40
4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, प्रथम खण्ड पृष्ठ 10
5 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 64
6 " " " " पृष्ठ 62

नट नतक सघानी गायकानो चा गायताम् ।
यत कर्णं सुखावच सुश्राव जनता तत ।।

इस श्लोक से सिद्ध होता है कि उस समय नाटको का जब तब आयो-जन होता था और उसम नतकी नट आदि अभिनय करते, नाचते, गाते थे। इन कायक्रमो को जनता देखती थी और आनन्दित होती थी।[1]

महाभारत विराट पव म एक विशाल रगमच का वणन मिलता है। जब पाण्डव गुप्त रूप से विराट के दरबार म अज्ञातवास कर रहे थे उस समय अजु न ने वहृण्णला बनकर राजकुमारी उत्तरा को गीत, नत्य वाद्य आदि की शिक्षा दी थी। अजु न को इन कलाओ की शिक्षा इन्द्र के निर्देशानुसार ग धवराज चित्रसेन ने दी थी जब उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह हुआ तो नटो वतालिको सूत्रो और मागधों ने उत्सव में एकत्र अतिथियो का मनोरजन किया था। -

वन पव में युधिष्ठिर से धम द्वारा प्रश्न किय जाने पर कहा कि वह सुयश के लिये कलाकारो, अभिनेताओ और नतको की आर्थिक सहायता किया करते हैं। प्रद्यु म्न क विवाह के अवसर पर गगावतरण की कथा के अभिनय का प्रमाण भी प्राप्य है। इसके बाद जो दूसरा नाटक अभिनीत हुआ उसका नाम कुबेर रम्भाभिसार बताया जाता है। इसमे शूर ने रावण का पाट किया था साम्ब ने विदूषक का और मनोवती ने रम्भा का। दत्यो ने इस अभिनय से प्रसन्न होकर धन की वर्षा की थी और उनकी स्त्रियो ने अपने आभूषण उतार कर कुशल नटो और नतको को दे दिये थ।[3]

रामायण मे एक अभिनेता (शलूप) अपनी पत्नी को प्रस्तुत करता हुआ दिखाई देता है।[4] भास के प्रतिमा नाटक को महाराजा रामचन्द्र के राजभवन म स्थित एक पथ्यशाला या नाट्य शाला मे मचित होने का उल्लेख भी श्री वाचस्पति गैरोल न किया है।[5]

---

1 2 हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास पष्ठ 63 64
3 वही पष्ठ 64 65
4 वही पष्ठ 157
5 भारतीय नाटय परम्परा और अभिनय दपण, श्री वाचस्पति गैरोल पष्ठ 181

रामगढ की पहाडिया-सीता बेंगा और जोगीमारा की नाट्य शालाए —

रामायण काल म रामगढ को 'झारखण्ड' तथा दसवीं सदी मे 'डाडोर' कहा जाता था। यह स्थान मध्यप्रदेश के सरगुजा राज्य मे उदयपुर ग्राम के निकट स्थित है। राम के सरगुजा मे रहने के कारण ही यह स्थान रामगढ या रामगिरि कहलाता है। रामगिरि को चित्रकूट भी कहा गया है। वाल्मीकी रामायण म चित्रकूट का जो वर्णन है वह इसी स्थान का है। वहा पर सीताबोंगरा, जोगीमारा, लक्ष्मण बोंगरा वशिष्ठ आदि गुफाए हैं। इसके अतिरिक्त एक बडी सुरग भी जिसे हाथी पोल कहा जाता है। इसका विवरण रामायण में उपलब्ध है। चूकि सीता, राम और लक्ष्मण यहीं रहते थे अत इस सुरग मे बहुत से जलाशयों में से एक का नाम सीताकुण्ड भी है। सीताबोंगरा सबसे बडी गुफा है जो नाटयशाला के काम में लाई जाती थी। इसके मुख्य द्वार के सम्मुख शिलानिर्मित चन्द्राकार सोपान सदश सयोजित पीठे हैं जो कि बाहर की ओर हैं। इन पर बठकर दशकगण नाटकीय दश्या एव सास्कृतिक कायक्रमों का आनन्द लिया करते थे। इन पीठों पर लगभग 60 व्यक्तियों के बठने की व्यवस्था थी।[1]

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार सस्कृत नाटक इसी नाटयशाला में प्रदर्शित हुए हैं क्योंकि नाटयकला के विद्वानो की राय म भवभूति का उत्तर रामचरित नाटक यहीं यशोवमन के काल में खेला गया था। पाली भाषा म उत्कीण लेखो के अनुसार काशी क कलाकार देवदीन ने इस नाटक में भाग लिया था और उसके साथ सुतनुका देवदासी ने भी अभिनय म भाग लिया था।[2] श्री जयशकर प्रसाद ने सरगुजा म स्थित गुफाओं को दो हजार वप पुरानी माना है और राजा भोज के द्वारा इसी प्रकार की रगशाला (जिसम सम्पूर्ण शकुन्तला नाटक पत्थरो मे उत्कीण था) बनाने का उल्लेख किया है।[3] डा थियोडोर ब्लाख की रिपोट के आधार पर डा गिरजासिंह ने लिखा है कि कालीदास के बहुत पहले महाभिक्षा,

1 रामगढ की पहाडियां, धमयुग (23 माच 1969)

2 श्री कुन्तल गोयल पष्ठ 18

3 काव्य और कला तथा अय निबध प्रसाद, पृष्ठ 96

अश्वघोष का सारिपुत्र प्रकरण जोगीमारा और सीतावेंगा की गुफाओं की नाट्य शाला में अभिनीत हुआ।[1]

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि सीतावोगरा के प्रवेश द्वार के उत्तरी हिस्से पर गुफा की छत के ठीक नीचे मागधी भाषा में दो पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं–

आदिपयति हृदयं । सभावगरु कवयो ये रायतॉं
दुले वसंतिया । हासानुभूते । कुदस्पीतं एवं अलगेति ।

इनका आशय है हृदय को आलोकित करते हैं स्वभाव से महान ऐसे कविगण रात्रि में वास तो दूर है हास्य और संगीत से प्रेरित चमेली पुष्पों की मोटी माला को ही आलिंगन करता है।' इससे यह स्पष्ट है कि यह सांस्कृतिक एवं कलात्मक आयोजनों का स्थान था जहाँ कविता का सस्वर पाठ होता था प्रेम गीत गाए जाते थे और नाटकों का अभिनय किया जाता था।[2]

इन पंक्तियों को पढ़ कर कवि की प्रणय लीला का अनुमान तो लगाया जा सकता है किन्तु नाटकों का अभिनीत होना इन पंक्तियों से प्रमाणित नहीं होता। कालीदास के ही अनुसार इन गुफाओं में प्रेमी प्रेमिकाएँ एवं अन्य मनोरंजनार्थी लोग रहा करते थे और प्रेम क्रीड़ा किया करते थे। रामगढ़ की सीतावंगा गुफा के प्रेक्षागृह के निर्माण में भरत नाट्यशास्त्र के निम्नांकित दो वाक्यों का सहारा लिया गया है।

स्तम्भाना वाह्यश्चापि सोपानाकृति पीठकम् ।
इष्टका दारुभिः कार्यं प्रेक्षकाना निवेशनम् ।।

इस श्लोक में प्रेक्षागृह के निर्माण के लिए जो आदेश दिया गया है रामगढ़ वाली गुफा में ठीक इसका पालन किया गया। इस तरह सीतावेंगा गुफा के प्रेक्षागृह होने के संबंध में किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है।[3]

---

1 हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि डा गिरजासिंह पृष्ठ 5
2 रामगढ़ की पहाड़ियां धर्मयुग 30 मार्च 1969, श्री कुंतल गोयल पृष्ठ 18
3 हमारी नाट्य परम्परा, पृष्ठ 137 138

जोगीमारा गुफा

सीताबेंगा (सीताबोंगरा) के पास ही जोगीमारा गुफा बतलायी गयी है। इसे वरुण का मंदिर भी कहते हैं। यहाँ सुतनुका देवदासी रहती थी जो वरुण देव को समर्पित थी। कहा जाता है कि सुतनुका ने सीता बोंगरा नृत्यशाला में नृत्य करने वाली नत्यांगनाओं के विश्राम के लिये इसे बनवाया था। गुफा की उत्तरी भित्ति पर ये पांच पंक्तियां उत्कीर्ण हैं —

सुतनुक नाम
देवदाश यिय
सुतनुक नम देवदाशक्यि
त कमयिथ बलन शेये
देवदिने नम लुपदखे।[1]

उपयुक्त पंक्तियां देवदीन और सुतनुका देवदासी की प्रणय गाथा की प्रतीक हैं।

जोगीमारा वाले लेख में श्री कुंतल गोयल की निम्नलिखित पंक्तियां बहुत महत्वपूर्ण हैं कि 'भारत में शिलाखण्डों को काट कर चत्य बिहार तथा मन्दिर बनवाने की प्रथा थी और उनकी भित्तियों पर पलस्तर लगाकर चूने जैसे पदार्थों से चिकना कर जो चित्र बनाये जाते थे उन्हीं के अनुरूप यह जोगीमारा गुफा थी।"

यह संभव है कि सुतनुका ने अपने प्रेमी देवदीन (जो रंगीन चित्रकारी में पटु था) की सहायता से जोगीमारा गुफा बनवाकर उसमें रंग बिरंगे चित्र बनवाये थे।

देवदीन चित्रकार या अभिनेता नहीं। सुतनुका चित्रकार के प्रेम में फसने वाली देवदासी हो सकती है नायिका नहीं। उन्हें प्रेमियों की जगह किसी नाटक के नायक नायिका कहना उचित नहीं है।

1—रामगढ़ की पहाड़ियाँ, धर्मयुग (30 मार्च 1969) श्री कुंतल गोयल पृ 18

श्री कुंतल ने अपने लेख में सीताबेंगा को नाटयशाला कहा है दूसरे में नृत्य शाला। यदि इन पंक्तियों को कि 'प्राचीन काल में भारतवर्ष में गुफाओं का उपयोग नृत्यशाला के लिये होता था' मानलें तो निःसन्देह सीताबेंगा नृत्यशाला थी नाटयशाला नहीं।

सीताबेंगा गुफा शब्द इसके लिये उपयुक्त शब्द है। इसे नाटयशाला या नृत्यशाला कहना उचित एवं तर्क संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि इसका प्रवेश द्वार गोलाकार है जो 6 फीट ऊंचा है और भीतर की ओर इसकी ऊंचाई 4 फीट रह जाती है जहाँ दर्शकों का प्रवेश कर सकना दुष्कर है। अभिनय कर पाना तो असम्भव ही है। सम्भव है कि वे झुकते हुए आते रहे हों और मंच पर बैठ कर अभिनय करते रहे हों। 4 फीट ऊंचे मंच पर नृत्य भी संभव नहीं है। इस प्रकार इन गुफाओं को नाटयशाला कहना सर्वसंगत नहीं है।

इन्हें यदि रंगमंच द्रष्टों की परामर्श-स्थली माना जाय तो सम्भवतः अधिक उचित हो। इस संदर्भ में यह प्रश्न भी विचारणीय है कि यशोवर्मन के समय में क्या रंगस्थलियाँ नहीं थीं जो उत्तर रामचरित' नाटक यहाँ अभिनीत किया गया? काशी निवासी देवदीन ने भी इस नाटक में भाग लिया था। क्या यह ऐतिहासिक सत्य है कि देवदीन काशी का अभिनेता था अथवा भित्ति चित्रकार था जो यशोवर्मन के समय में काशी से रामगढ़ (उदयपुर ग्राम के निकट स्थित) सरगुजा राज्य में आकर अभिनय आदि किया करता था? विद्वानों ने जोगीमारा गुफा की चित्रकारी ई० पू० तीसरी शताब्दी मानी है जबकि सीताबेंगा रामायणकाल की है। यह कालान्तर विचारणीय है। सम्भवतः रामगढ़ में सीताबेंगा नामक गुफा राम का चित्रकूट स्थित निवास स्थान बना होगा और इसे गुफानुमा बनवाया गया होगा ताकि रावण के अनुचर उन्हें देख न सकें।

राम के प्रस्थान के पश्चात् वहाँ के आदिवासियों ने उनकी स्मृति में जगह जगह रामायण के प्रमुख पात्रों के नामों के आधार पर उन स्थानों के नाम वशिष्ठ गुफा, रावण द्वार, रावण दरबार, लक्ष्मण बोंगरा आदि रख दिये होंगे। जोगीमारा गुफा के आसपास भरत गणेश, हनुमान, रावण, कुंभकर्ण, नर्तकियों, सीता, राम, लक्ष्मण शिव, विष्णु आदि की मूर्तियाँ हैं।

श्री बसंतकुमार हलधर ने इसका प्रत्यक्ष अवलोकन करने के पश्चात यह

माना है कि यह गुफा एक प्रकार से रहने की जगह थी।[1] श्रीकृष्णदास एवं डॉ चन्द्रप्रकाशसिंह ने सीताबेंगा को तीसरी शताब्दी ई पू का माना है।[2] श्रीकृष्ण दास इन गुफाओं को अशोक कालीन अथवा कुछ बाद की बताते हैं।[3] पं सीता राम चतुर्वेदी अभिनव भरत का कथन है कि कुछ विद्वानों ने विंध्य की पर्वतमाला में अवस्थित सीताबेंगा और जोगीमारा गुफाओं में जिन शिलावेश्मों को भारतीय नाट्यशाला का अवशेष माना है उनके साथ मेरी सहमति किसी भी प्रकार नहीं है क्योंकि मेरा यह मत स्पष्ट मत है कि भारतीय नाट्यशालाएं स्थायी रूप से बनायी ही नहीं जाती थीं। वे विशेष अवसरों पर निर्मित कर ली जाती थी और नाट्य प्रयोग हो चुकने पर वे उजाड़ दी जाती थी। हाँ, राज प्रासादों और सरस्वती मंदिर मे जो नाट्य प्रयोग होते थे उनके लिए स्थायी रूप से नाट्यवेश्म का विधान कर लिया जाता था।[4]

अतः सीताबेंगरा और जोगीमारा गुफाओं को नाट्यशाला अथवा नृत्यशाला नहीं माना जा सकता। प्राचीन साहित्य मे ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनमें रावण के राज भवन मे नाट्यशाला और संगीत शाला का होना उल्लिखित है। रामायण के कतिपय स्थलो पर रंगमंच एवं नाट्यशाला का उल्लेख हुआ है। महाभारत के वन पर्व मे भी रंगमंच पर 'रामायण', और 'कौबेर रम्भाभिसार' नामक दो नाटकों के अभिनीत होने का उल्लेख है।[5]

" वाल्मीकि रामायण में अयोध्या काण्ड के अन्तर्गत हम देखते हैं कि रामवन गमन और दशरथ मरण के प्रसंग में अपने मातुल - गृह मे निवास करने वाले तथा

1–हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास, पृष्ठ 134

2– „ „ „ 122 व हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा कु चन्द्र प्रकाशसिंह, पृ 10

3–हमारी नाट्य परम्परा श्रीकृष्णदास, पृष्ठ 144

4–श्री नटरंग पत्रिका 1969 - 70 पृष्ठ 17, हिन्दी रंगमंच संबंधी प्रयोग पं सीताराम चतुर्वेदी अभिनव भरत

5–भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण वाचस्पति गैरोला पृष्ठ, 67

अयोध्या की परिस्थिति से अनभिज्ञ किन्तु अपशकुनों तथा दु स्वप्नों आदि के कारण अत्यन्त उद्विग्न भरत के मनोविनोद क लिए उनक मित्रो ने जो आयोजन किये हैं उनमे एक नाटक भी है।

> वादयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे।
> नाटकान्यपरे स्माहुर्हास्यानि विविधानि च।।

भरत के अयोध्या लौट आने पर भी मार्कण्डेय आदि ऋषियों ने अराजकता के दुष्परिणाम सूचित करते हुए नाटकों का उल्लेख किया है --

> नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तका।
> उत्सवाश्च समाजाश्च वर्द्धन्ते राष्ट्रवर्द्धना॥

इसके अतिरिक्त बाल काण्ड के अतगत अयोध्यापुरी का वणन पढ़ने से मालूम होता है कि नगर मे स्त्रियों के लिए पथक अनेक रगशालाए थीं।

वधु नाटक सघेश्च सयुक्ता सर्व्वत पुरीम्

महाभारत में विराट पव मे एक विशाल रगमच का उल्लेख मिलता है। इसी पव के अतगत अभिम यु उत्तरा विवाह के प्रसग में नटो, वैतालिकों', सूतों और मागधों के साथ साथ नटो का भी नाम आया है जि होने सम्मानित अतिथियो का अनेक प्रकार से मनोरजन किया। वनपव में धम के प्रश्नों का उत्तर देते हुए युधिष्ठर ने बतलाया कि कीर्ति के लिए हमने समय समय पर नट–नतकों को द्रव्य प्रदान किया है।[1]

नाट्य शास्त्र मे वर्णित रगमच —

कुछ विद्वानों के मतानुसार नाट्य-शास्त्र की रचना आज स लगभग दो

1–हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्र प्रकाश सिह पृष्ठ 10 – 14

हजार वर्ष पूर्व हुई थी।[1] डा गोविन्द त्रिगुणायत ने नाट्य-शास्त्र का समय ई० पू० पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी ई० पू० निश्चित किया है।[2]

भरत की नाट्य कला बड़ी प्राचीन है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि भरत ने सौ शिष्यों और अप्सराओं को नाट्यकला की व्यावहारिक शिक्षा दी तथा उनकी सहायता से सब प्रथम अभिनय किया जिसमे भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती ने भी योग दिया। किन्तु इस दैवी उत्पत्ति की प्रामाणिकता निश्चित नहीं है।[3]

पांचवें वेद की रचना के लिए भी अनेक मतान्तर हैं। कुछ विद्वान इसे ब्रह्मा द्वारा तथा कुछ भरत द्वारा विरचित बतलाते हैं। डॉ० सूर्यकान्त के मतानुसार — भरत ने उसके घटकों को चारों वेदों से संग्रह करने की बात कही है —

जग्राह पाठ्य ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

अर्थात् भरत ने नाट्य का पाठ्यांश (अर्थात भाषा) ऋग्वेद से लिया, गीत सामवेद से लिए, अभिनय यजुर्वेद से लिया और रस अथर्ववेद [के भैषज्य] से लिया। इस प्रकार पांचवें वेद की रचना की। किन्तु यह बात युक्ति विपरीत है क्योंकि नाटक के चारों ही घटक मूल रूप से जनता म पहले से ही वर्तमान थे और वहीं से इनका सन्निवेश वेदों में भी हुआ था तथापि नाटक को आदर देने की दृष्टि से भरत ने

1—'रंगमंच' बलवंत गार्गी, पृष्ठ, 19
2—सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ 20
3—वही, पृष्ठ 204

उक्त प्रकार से नाट्य संग्रह की बात कही है। [1] 'श्री कृष्णदास ने भी कहा है कि ब्रह्मा ने इस वेद की रचना की। इसके प्रयोग का काम भरतमुनि को सौंप दिया गया। [2]

डॉ० वी० राघवन ने नाट्य-शास्त्र के समय का निर्धारण ई० पू० द्वितीय शताब्दी एवं द्वितीय शताब्दी के समर निश्चित किया है।[3] डा कु चन्द्र प्रकाश सिंह का आशय भरतमुनि को सितावेंगा जोगीमारा गुफाओं से पूववर्ती मानने का है क्योंकि भरत के नाट्य शास्त्र में कहीं भी इन गुफाओं की चर्चा नहीं है। इसी प्रकार की नाट्य शालाओं का वर्णन है। [4] तथा श्री कृष्णदास के अनुसार भी सीतावेंगा गुफा के प्रेक्षागृह के निर्माण में भरत के नाट्य शास्त्र से सहारा लेने[5] का संकेत दिया जाना भरत को सीतावेंगा जोगीमारा गुफाओं से पूववर्ती सिद्ध करता है। इन मत मतान्तरों के आधार पर आचार्य भरत की प्राचीनता सुनिश्चित की जा सकती है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र के द्वितीय अध्याय में तीन प्रकार के प्रेक्षागृहों का विधान किया है – (1) विकृष्ट (लम्बा आयताकार) (2) चतुरस्त्र (वर्गाकार) और (3) त्र्यस्त्र (तिकोना)। ये तीनों परिणाम के अनुसार तीन प्रकार के होते हैं– (1) ज्येष्ठ (2) मध्यम और (3) अवर (कनीयस) या कनिष्ठ)[6]।

नाट्य शास्त्र में मंच के सभी उपयुक्त शब्द रंगशीर्ष, रंगमंडप नेपथ्य रंगपीठ पात्र, वाद्य यन्त्रों के नाम आदि समाहित हैं। रंगमंच से सम्बन्धित जितने नियमों का नाट्य शास्त्र में वर्णन किया गया है उनसे तो यह प्रतीत होता है कि भरत एक महान् अभिनेता तथा निर्देशक एवं नाट्य कला संस्थापक थे और उन्हें रंगमंच की प्रत्येक विधा का ज्ञान था।

1–सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 231

2–हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पष्ठ 33

3–सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 2

4 *हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कु चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 10*

5 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, प 137

6 हिन्दी विश्वकोश]खंड 6, पृ 291

प्राचीन नाट्य कथा के दर्शक भी दो प्रकार के बताए गए हैं, एक तो वे जिन्हें नाटककर्ता स्वय बुलाते थे, व 'प्रार्थित' कहे जाते थे। दूसरे व थे जो स्वय नाटक देखने आते थे। वे 'प्रापक दर्शक होते थे।[1] जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव इतर) के आधार पर दर्शकों को प्रेक्षा गृह म बैठने को स्थान मिलता था। यदि दर्शक अधिक हो जाते थे तो दूसरी मजिल भी बना दी जाती थी।[2] समवत इस श्लोक के आधार पर ही यह बात कही गयी है—

काय शैल गुहाकारो द्विभूमिनाट्यमडप

भारतकालीन समाज म वर्ण व्यवस्था बहुत कठोर थी। रगपीठ में समस्त बठने वाले दर्शकों के लिए वर्णानुकूल स्थान नियत थे। वहा निर्देशकों, ब्राह्मणों के लिए शुक्ल रग का, क्षत्रियो के लिए लाल रग का, वैश्यो के लिए पीले रग का तथा शूद्रों के लिए नीले रग का स्तम्भ गाडा जाता था। इसी प्रकार राजपुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के बैठने के पृथक पृथक स्थान निर्दिष्ट थे। प्रेक्षा-गृह के पूव भाग मे राजा का आसन था। उसके बायीं और मत्री, कवि, ज्योतिषी, व्यापारी वग तथा दाहिनी ओर स्त्रियां बैठती थीं। राजपुरुष तथा बच्चों के स्थान उत्तर मे और राजदूत, भाट आलोचक एव रक्षकों का स्थान किनारे पर नियत था।[3] प्रार्थित अथवा आमत्रित और प्रार्थक अथवा अनामत्रित दर्शक परम्परा आज भी पूववत् है। इसमें कोई परिवतन नहीं हुआ है।

भरत के अनुसार नेपथ्य से रगशीष वाले कक्ष में आने के दो मार्ग होते थे। कक्ष और रगशीष के बीच प्रत्येक दिशा की ओर तीन-तीन स्तम्भ रहा करत थे। ये आजकल की विंग्ज का काम देत थे। कक्ष से शीष पर आने क लिए एक द्वार रहता था।[4] रगशीष के दुमजिले बनाने से अभिनय सहज हो जाते थे। यहा से आता हुआ पात्र उडने का अभिनय भी कर सकता था।[5]

1—हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 105
2—हमारी नाटय परम्परा, श्री कृष्णदास, पृ 105
3—संस्कृत नाटककार श्री कांति किशोर भरतिया, पृ 21
4—हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 108
5—संस्कृत नाटककार श्री कान्ति किशोर भरतिया, पृ 20-21

उक्त मचों पर पर्दों का प्रयोग भी हुआ करता था। नेपथ्य का उपयोग वेष भूषा आदि अन्य कार्यों मे हुआ करता था तथा सगीतज्ञों के बैठने का स्थान ग्रीव के कक्ष द्वारों के निकट होता था।[1]

भरत के नाट्य शास्त्र के 15वें अध्याय के अनुसार नाटक के कार्यकर्ताओं का विभाजन इस प्रकार किया जाता था —

1-भरत, नाट्य सस्था का आधारभूत सचालक।
2-सूत्रधार, आधुनिक निर्देशक।
3-नट, रिहर्सल अधिपति।
4-तौरिय, सगीत का अधिपति।
5-वेषकर, वर्तमान ड्रेसर।
6-मुकुटकृत, शीर्षाभूषण तयार करने वाला।
7-आभरणकृत, नाटकोपयोगी आभरण बनाने वाला।
8-माल्यकृत, माला पहिनाने वाला।
9-चित्रज्ञ, पर्दा रगने वाला।
10-रजक, धोबी और रगरेज दोनों का काम करने वाला।[2]

प्रकाश की व्यवस्था के सम्बन्ध में नाट्य शास्त्र मे पर्याप्त सामग्री नहीं मिलती। केवल मच पर दीपकों से प्रकाश किये जाने का उल्लेख मिलता है।[3]

इस प्रकार नाट्य शास्त्र मे रगमच के अनेक उपकरणो का वर्णन मिलता है। हां तत्कालीन रग सस्थाए और उनकी ऐतिहासिकता का वर्णन विवरण नहीं मिलता।

नाट्य-शास्त्र मे अभिनय रूप

नाटक में अभिनय के दो मुख्य विधान थे (1) लोकधर्मी (2) नाट्यधर्मी। भरत के एव समय मे स्वाभाविकता पर यथेष्ट ध्यान दिया जाने लगा था। रगमच के

1-हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 108 109
2-हमारी नाट्य परम्परा : श्री कृष्णदास, पृष्ठ 109
3-हिन्दी विश्वकोश (खण्ड 6) स पादक श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, पृष्ठ 295

वास्तविक अभिनय को लोकधर्मी कहते थे। लोकधर्मी अभिनय के अंतर्गत रंगमंच पर कृत्रिम उपकरणों का उपयोग बहुत कम होता था।

स्वभावो लोकधर्मी तु नाट्यधर्मी विकारत

स्वाभाविकता का अधिकाधिक ध्यान केवल उपकरणों में ही नहीं किंतु आंगिक अभिनय में भी अभीष्ट था। उसमें बहुत अंग-लीला (ओवर ऐक्टिंग) वर्जित थी। अतिरंजित क्रियाएं असाधारण कर्म, अतियाचित लोक प्रसिद्ध दृश्यों का उपयोग अर्थात शैल यान और विमान आदि का प्रदर्शन और ललित अंगहार जिसमें प्रयुक्त होते थे रंगमंच के ऐसे नाटकों को नाट्यधर्मी कहते थे। स्वगत आकाश-भाषित इत्यादि अस्वाभाविक ही माने जाते थे। उनका प्रयोग मात्र नाट्यधर्मी अभिनय में किया जाता था।

आसन्नोक्त च यद् वाक्यम् न शृण्वन्ति परस्परम्।
अनुक्त श्रूयेत वाक्यम् नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥[1]

नाट्य-शास्त्र में वर्णित रंगसज्जा

प्राचीन भारतीय रंग शाला में भरत के अनुसार पुस्त के प्रयोग का स्पष्ट विधान था। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार ये तीन प्रकार के होते थे—सधिम, व्याजिम और वेष्टिम। भाज पात्र, बांस, आदि के पत्ते तथा चम से जो सामग्री बनाई जाती थी उसे सधिम, यंत्र के द्वारा संचालित की जा सकने वाली व्याजिम और लपेटक बनाई जाने वाली सामग्री को वेष्टिम कहा जाता था। इन तीनों प्रकार के पुस्तों से शयूया, मान, विमान, चम, वम, ध्वज और पवत आदि बनाए जाते थे क्योंकि उनके अनुसार लोह सारमय सामग्री का प्रयोग भारी और कष्टकर होने के कारण निषिद्ध था। इसलिए लकड़ी, चमड़ा वस्त्र लाख, बांस और पत्तों से ही दृश्य पीठ बनाकर रंगीन कपड़ों से यथा स्वरूप सजा लिया जाता था वस्त्र के अभाव में ताड़ या भोज पत्र का प्रयोग होता था। इन्हीं सब वस्तुओं से अस्त्र शस्त्र तथा शरीर के अंग बनाए जा सकते थे। भाड वस्त्र, मोम, लाख, धाम के पत्तों, तीसी, सन और मूंज

1—काव्य और कला तथा अन्य निबंध प्रसाद पृ 101-102

से पवत, नाग, पुल, फल मणियाँ तथा अनेक प्रकार के मुकुट बनाए जाते थे क्योंकि स्वण आदि स बने हुए मुकुट और आभूषण युद्ध, नत्य आदि के अभिनय मे बाधक तथा घातक हो सकते थे। अत ताबे या अबरक के पत्तरों और मोम से ही आवरण बना लिए जाते थे क्योंकि भरत के अनुसार मच पर शस्त्रों से प्रहार न करके केवल उनका भाव दिखा देना चाहिये।

आज कल कागज की पप्नी, कैनवस (मोटा कपडा) तथा प्लाई वुड आदि से यथा रूप काट कर दृश्य पीठ बनाए जाते हैं। अस्त्र शस्त्र यथा सम्भव वास्तविक ही काम मे लाए जाते है किंतु यह प्रयोग अवांछनीय और घातक है।[1]

ना० शा० मे रगलेपन के प्रयोग —

नाटयोपयोगी दृश्यों के निर्माण, वस्त्र तथा आयुधो के साथ कृत्रिम केश मुकुटो और दाढी इत्यादि का भी उल्लख नाटयशास्त्र में मिलता है। केश मुकुट भिन्न भिन्न पात्रो के लिए कई तरह के बनते थे।

रक्षो दानवदत्याना पिंकेशकृतानि तु
हरिश्मश्रूणि च तथा मुख शीर्षाणि कारयेत्।

(ना शा 22 143)

कोयल के पखों स दैत्य दानवों की दाढी और मूछ भी बनाई जाती थी। मुकुट अभिनय के लिए भारी न हों, इसलिए अभ्रक और ताम्र के पतले पत्रो से हल्के बनाये जाते थे।[2]

नाट्य शास्त्र मे रगदीपन (प्रकाश-व्यवस्था)—

भरत के अनुसार मच पर अनेक दीपक रहते थे। नाटक आरम्भ होने पर

1-हिन्दी विश्वकोश खण्ड 6 पृ 294 295
2-काव्य और कला तथ अन्य निबंध जयशकर प्रसाद, पृ 101

कोई व्यक्ति एक जलता हुआ दीपक लेकर उसे प्रज्वलित कर देता था।[1] यह कोई व्यक्ति स्वयं नाट्याचार्य ही होता था। जैसा कि इस श्लोक से पता चलता है—

भिन्ने कुम्भे ततश्चैव नाटयाचार्यं प्रयत्नतः
प्रगृह्य दीपिकां दीप्तां सर्वरंगं प्रदीपयेत ॥

भरत नाट्य शास्त्र 3/91

अर्थात घट के फूट जाने के बाद नाटयाचार्य को प्रयत्नपूर्वक जलती हुई दीपिका को लेकर सम्पूर्ण रंग को प्रकाशित करना चाहिए। समूचे रंगमंडप पर गर्जन करते हुए ताल ठोकते हुए कूदते हुए और वेग से दौड़ लगाने के साथ उस दीपिका (मशाल) की प्रभा को प्रकाशित करे।[2]

संस्कृत के नाट्य प्रयोगों में वनस्पति से निःसृत प्रकाश की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। कालिदास के शब्दों में—

वनेचराणां वनिता सखानां दरी गृहोत्संगनिषक्तभासः
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥*

(यहाँ की गुफाओं में रात को चमकने वाली जड़ी बूटियाँ भी बहुत होती हैं। इसलिए यहाँ के किरात लोग जब अपनी प्रियतमाओं के साथ इन गुफाओं में विहार करने आते हैं तब ये चमकीली जड़ी बूटियाँ ही उनकी काम क्रीड़ा के समय बिना तेल के दीपक बन जाती हैं।[3]

"तैल" और 'प्रदीपा' शब्दों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कालिदास के काल में नाट्य प्रयोगों में प्रकाश व्यवस्था के लिए दीपक जलाए जाते थे।

1—हिन्दी विश्वकोश खण्ड 6, पृ 295।
2—भरत का नाट्य शास्त्र भाग 1 (अध्याय 1-7) डा रघुवंश पृ 61
*कुमार सम्भव कालिदास 1/10
3—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 136

बौद्ध काल तथा जातक कथाओं (जो दूसरी तीसरी ई पू की मानी जाती हैं) में प्राप्त नाट्याभिनय में प्रकाश के प्रमाण मिलते हैं।

कुछ विद्वानों ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि संस्कृत नाट्य कृतियाँ, न्यूनाधिक मात्रा में महाकाव्यों द्वारा अनुशासित तथा उन्हीं पर आधृत थीं। रूप एवं विकास में कथनात्मक (Narrative) थीं। इनके रचयिता पहले नीतिवादी (Moralist) व और बाद में कलाकार।[1]

संस्कृत नाटकों की अभिनेयता की टीका करते हुए श्री वाचस्पति गैरोल ने लिखा है कि संस्कृत के नाटककारों ने नाट्य शालाओं में प्रदर्शित करने के एक मात्र उद्देश्य से उनको नहीं लिखा।'[2] किंतु साथ साथ यह भी मान्यता रही है कि संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना से विदित होता है कि उनको अभिनेय की दृष्टि से लिखा गया था। प्रत्येक नाटक के प्रारम्भिक भाग में सूत्रधार या नट-नटी द्वारा नाटककार ने यह अतिशा कराई है कि उसका अस्तित्व अभिनेय है और उसे दर्शकों के मनोरंजन के लिए लिखा गया है।[3]

संस्कृत नाटकों की प्रस्तावनाओं के आधार पर ही श्री गैरोल ने संस्कृत नाटकों के अभिनय काल का निर्धारण किया है। उनके कथनानुसार कालिदास के नाटक विक्रमोर्वशीय, और अभिज्ञान शकुन्तलम् महाराज विक्रमादित्य की सभा में अभिनीत किए गये थे। अभिज्ञान शकुन्तलम् का ग्रीष्म ऋतु और मालविकाग्निमित्र का वसन्तोत्सव पर अभिनय हुआ था। मृच्छकटिक जैसे नाटकों के लिए शास्त्रीय विधि से नाट्य शालाएं बनाई गई थीं। मृच्छकटिक, नाटक उज्जयिनी में अभिनीत हुआ था। भवभूति का उत्तर रामचरित भगवान कालप्रियनाथ महादेव की यात्रा के अवसर पर श्रेष्ठ सामाजिकों के समक्ष अभिनीत हुआ था। 'मुद्राराक्षस' और सम्राट हर्ष के प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानंद नाटकों का प्रदर्शन विशेष क

1–भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण वाचस्पति गैरोल, पृ 180
2–वही पृ 180
3–वही पृ 183 से 187

प्रतिष्ठित व्यक्तियों की परिषद् के समक्ष हुआ था। राजशेखर के 'कर्पूर मंजरी' का अभिनय स्वयं राजशेखर की पत्नी अवंति सुन्दरी ने किया था। भट्ट नारायण (8वीं, 9वीं श०ई०) कृत 'वेणीसंहार' का नाट्य प्रदर्शन शरद ऋतु में हुआ था।[1]

पतंजली (जिसे द्वितीय शताब्दी के मध्यकाल का कवि कहा गया है) के 'महाभाष्य' में भी दो नाटकों की चर्चा मिलती है। कंस वध और 'बालिवध'।[2] इन नाटकों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि उस समय रंगमंच का पूर्ण प्रचलन था। डा० बैरेडील कीथ ने इसी के आधार पर कहा है कि "इससे यह सम्भावना प्रतीत होती है कि यदि और पहले से नहीं तो कम से कम ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य से तो संस्कृत नाटकों का आरम्भ मानना ही होगा। "जा स्टन के अनुसार—यह बौद्ध कवि ई० पू० प्रथम शताब्दी में विद्यमान था। इनके नाटकों के उपखण्ड जो मध्य एशिया की खुदाइयों में प्राप्त हुए हैं और उनमें दृष्टिगत होने वाली विकास एवं पूर्णता की स्थिति संस्कृत नाटकों के विकास के दीर्घ समय को, जो ई०पू० कतिपय शताब्दियों तक प्रसारित प्रमाणित करती है।[3] इन नाटकों को प्रेरणा महाकाव्यों के गायन और श्री कृष्ण के जीवन से सम्बंधित उन घटनाओं से मिली, जिनमें बाल कृष्ण ने शत्रुओं को पराजित किया।[4]

पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में दो प्रकार के अभिनयों का उल्लेख किया है—एक ग्रंथिकों का जो किसी ग्रंथ पर आधृत रहता था। ग्रंथिका का अर्थ नगेश के अनुसार है—पूरी कथा का वर्णन। —भाष्य के अनुसार कंसवध में ग्रंथिका वर्णन के साथ-साथ काले और लाल रंग के रंगे लोग, कंस और कृष्ण के दल के रूप में मंच पर अभिनय करते थे। इससे ग्रंथिका वर्णन की रोचकता बढ़ जाती थी और उसमें सजीवता आ जाती थी।[5] इसका अभिप्राय यही है कि पतंजलि के काल में रंगलेपन केवल प्रतीक रूप में काम में लाया जाता था ताकि उन्हें देखकर दर्शकगण अभिनेताओं को

1—महाकवि कालिदास श्री रमाशंकर तिवारी, पृ० 310
2—हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास पृ० 71
3—सेठ गोविंद दास अभिनंदन ग्रंथ डॉ० वी० राघवन पृ० 2
4—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ० 71
5—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ० 38

पहचान सकें। दूसरा इसमें शोभनिकों का उल्लेख है जो क्रिया पर आधारित रहता था। प्रथम अभिनय एक प्रकार का मौलिक पाठ था जैसे कि महाकाव्य के प्राचीन निपाठ अथवा उत्तरवर्ती कथकों के प्रदर्शन होते थे। द्वितीय प्रकार का अभिनय शब्द सहयोग के बिना ही कथावस्तु को प्रस्तुत करता था। संगीत के सम्बन्ध में भरत ने बताया है कि किस प्रकार असुरों का सहयोग प्राप्त किया गया और किस प्रकार उन्होंने नाटक को यान्त्रिक संगीत की संज्ञा प्रदान की। यह इन विविध प्रकारों अथवा तत्वों के एकीभाव का ही परिणाम है कि शनैः शनैः पुरुष तथा नारी कलाकारों, कथोपकथनों, संगीत प्रणालियों तथा नृत्य कलाओं से युक्त होकर नाटक ने पूर्ण विकसित रूप प्राप्त कर लिया।[1]

पात्र योजना

पतन्जलि के समय स्त्रियों की भूमिकाएँ पुरुष ही करते थे जैसा कि महाभाष्य' में भ्रूकुंस शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है जिसका अर्थ है स्त्री की भूमिका में आया हुआ पुरुष।[2]

संस्कृत नाटकों के पात्रों का चयन प्राप्त भूमिका के अनुसार शारीरिक गठन भंगिमा और अभिनय आदि के गुणों को देखकर किया जाता था।—पात्रों को उनके वेश, वेशभूषा, और रूप के अनुसार ही मंच पर प्रस्तुत किया जाता था।[3]

पतन्जलि के समय अभिनेताओं का समाज में कोई विशेष सम्मान नहीं था। इसका एक महत्वपूर्ण कारण था। महाभाष्य में कहा गया है कि उन अभिनेताओं की पत्नियाँ, जो स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे कुलाचारहीन होती थीं। नटियों को नैतिक दृष्टि से भ्रष्ट बताया गया है और नटों को अपनी पत्नियों की लाज बेच कर जीवन निर्वाह करने के लिए दोषी ठहराया गया है।[4]

1–सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ डा० वी० राघवन, पृ० 4
2–पातंजल महाभाष्य 2, पृ० 196
3–हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ० 145 146
4–वही, पृ० 158

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार अश्वघोष कृत 'सारिपुत प्रकरण' अत्यन्त लोकप्रिय था और मध्य एशिया में भी खेला जाता था। स्वय अश्वघोष अच्छे सगीतज्ञ और अभिनेता थे। वे अपनी रचनाओं का पाठ और अभिनय अपनी मण्डली के साथ घूम-घूमकर किया करते थे।

पतजलि और अश्वघोष सभवत समकालीन थे। दोनों का समय प्रथम शताब्दी ईपू बतलाया जाता है। उस काल मे बौद्ध धर्म चतुर्दिक फैला हुआ था और अश्वजित और पुनवसु नामक दो भिक्षुओं को कीटगिरी की रगशाला में अभिनय देखने और नर्तकी से बात करने के दोष में विहार से बाहर निकाल दिया गया था।[1]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक स्थान पर स्पष्ट उल्लेख है कि "कलाकारों की मण्डलियों को अभिनय प्रस्तुत करने पर राजकर भी नियमित रूप से देना पडता था। बाहर से आने वाली मण्डली को राजा को प्रति खेल पांच पण देना पडता था। यह सब विदित है कि उस समय नटों की शिक्षा का प्रबन्ध था और सभी ललित कलाओं को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिलता था।"[2]

उस समय नाटय प्रस्तुतीकरण सरस्वती भवन मन्दिर देवालयों और अन्य महत्वपूर्ण स्थानों आदि में होते थे, ऐसी विद्वानों की मान्यता है। जो अभिनय प्रस्तुत किया जाता था उसे देखने दर्शक एकत्रित होते थे तथा जो अभिनय होता था उस उत्सव को 'समाज' बोलते थे। अर्थात दर्शकों और प्रस्तुतीकरण का नाम "समाज" था। सम्भवत जो मनुष्य समूह एक स्थान पर अभिनय देखने के लिये एकत्र होता था उस उत्सव का नाम समाज था।

इसी सन्दर्भ मे भास की नाट्यकला विवेच्य है। डा वी राघवन ने कालिदास के पूर्व भास, सौमिल्ल एव कविपुत्र का होना लिखा है जिनकी कृतियां प्राय नष्ट हो गई है।[3]

1—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 69
2—वही प 70
3—से गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रथ डॉ वी राघवन प 13

विद्वानों ने अश्वघोष एवं भास को संस्कृत के आदि नाटककार और समकालीन माना है। भास के नाटकों की कथावस्तु श्री राम और श्री कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित है।[1]

'स्वप्न वासवदत्तम्' पाद्य्न्त 'दूत घटोत्कच्छ' आदि भास के प्रसिद्ध नाटक हैं वैसे इनके कुल 13 नाटक प्राप्त हुए हैं। अश्वघोष के नाटकों की कथावस्तु बौद्ध धर्म पर आधारित है। चारुदत्त' इनका अपूर्ण नाटक है।

कालिदास और उनकी समकालीन नाट्य प्रवृत्तियां

कालिदास का नाम, स्थान और जीवन काल बड़ा विवादास्पद है। ई पू पहली शताब्दी से लेकर ईसा के बाद तीसरा चौथी शताब्दी तक कालिदास के समय के सबध में अनुमान लगाये जाते हैं।[2] डा० सूयकांत ने तो इनका काल ईसा के बाद पाचवीं शताब्दी माना है।[3] श्री रमाशंकर तिवारी ने टी एस नारायण शास्त्री के द्वारा उल्लिखित 9 कालिदासों का उल्लेख करते हुए कालिदास का जीवन काल ईसा की चौथी शता०दी के उत्तरार्द्ध और पाचवीं शता०दी के पूर्वार्द्ध के बीच का माना है।[4]

कालिदास के नाटकों मे प्राप्त प्रस्तावनाओं में इन कृतियों के मचन का स्पष्ट उल्लेख है। उनके तीन नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम्' 'विक्रमोवशीय' तथा माल विकाग्निमित्र रंगमचीय कृतियां हैं।

शूद्रक (300 वर्ष ई पू) का 'मृच्छकटिक विशाखदत्त (चौथी शता०दी ई पू) का मुद्राराक्षस और देवीचन्द्र गुप्तम् (अप्राप्य नाटक), बाण भट्ट के दरबारी नाटककार हर्ष (590 ई से 647 ई) का नागानन्द' (नाटक) और

1–हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्ण दास, पृ 7।
2–वही, पृ 73
3–सेठ गोविन्द दास अभिनंदन ग्रंथ डा सूयकान्त पृ 237
4–महाकवि कालिदास श्री रमा शंकर तिवारी पृ 14

'रत्नावली' तथा 'प्रिय दर्शिका' (नाटिकाएं), भवभूति (विक्रमी 7 वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) का उत्तर 'रामचरित' 'महावीर चरित और 'मालती माधव , भट्टनारायण (7 वीं शताब्दी ईसवी) का 'वेणी संहार तथा इनके बाद विकणीय आठवीं और नवीं शताब्दी के वत्सराज का त्रिपुरदाह' 'रुक्मिणी हरण हास्य चूडामणि मुरारी का 'अनघ राघव राजशेखर का 'कपूर मंजरी' बाल रामायण', बाल भारत', आचार्य क्षेमीश्वर का चंड कौशिक, नैषधानंद, कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि संस्कृत की प्रसिद्ध रंगमंचीय रचनाएं हैं।

जयदेव का 'प्रसन्न राघव', रूप गोस्वामी का विदग्ध माधव', ललित माधव विशालदेव विग्रहराज का हरिकेलिनाटक, जयसिंह सूरि का 'हम्मीर मदमर्दन', विल्हण का 'काम सुन्दरी नाटिका , वचन पंडित का धनञ्जय विजय , सुभट का दूतांगद (छाया नाट्य), 'मधुसूदन का महानाटक' आदि नाटकों द्वारा संस्कृत रंगमंच की परम्परा सुचारू रूप से चलती रही है। संभवतः पारिजात मंजरी नाटक (1211 या 1213 ई०) और 'हनुमन्नाटक' तक भी संस्कृत रंगमंच की परम्परा बनी रही किन्तु अनन्तर बारहवीं तेरहवीं सदी से जब अपभ्रंश में रास नाटकों की रचना होने लगी और संस्कृत के अनूदित नाटकों में रुचि जागृत होने लगी तो रंगमंच को भारी आघात लगा।[1] स्वयं कालिदास नाटक को चाक्षुष यज्ञ मानते हैं[2] और अपने नाटक 'मालविकाग्नि' में प कौशिकी से प्रयोग प्रधानंहि नाट्य शास्त्रम् कहलाते है।[3] अतः संस्कृत नाट्य प्रस्तुतीकरण और रंगमंच का व्यावहारिक पक्ष भी उल्लेखनीय है। संस्कृत रंगमंच मे भोजन, शयन मृत्यु यात्रा युद्ध, वस्त्र धारण तथा चुम्बन जैसे अप्रिय तथा अभद्र व्यवहार निषिद्ध हैं।[4] मंच पर मृत्यु दिखाना भी निषिद्ध था पर 'अभिषेक' नाटक के 6 अंकों में बालीवध से लेकर रामाभिषेक तक की कथा का अभिनय है। पर बाली वध दिखा कर भास ने भारतीय परिपाटी का उल्लंघन किया है।[5] पात्र की अंतरंग भावात्मक अभिव्यक्ति को अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करना संस्कृत नाटककारों की एक प्रमुख विशेषता थी। भास के स्वप्न

1-हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्ण दास पृ 74-80

2 महाकवि कालिदास रमाशंकर तिवारी पृ 310

3 वही पृ 312

4 सेठ गोविंददास अभिनन्दन ग्रंथ डा वी राघवन, पृष्ठ 9

5 सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रंथ डा सूर्यराम पृष्ठ 234

वासवदत्ता में सजीव वर्णन द्वारा वासवदत्ता को प्रज्वलन की सूचना देकर रानी पर उसके मनःप्रभाव की अभिव्यक्ति की जाती है। इनमें अन्य प्रतीक साधनों का प्रयोग पाया जाता है।[1] डॉ० वी राघवन का यह कथन उपयुक्त ही है कि संस्कृत नाटक में दृश्यात्मक विधान उतना नहीं हुआ करता था, रंगमंचीय तत्वों का योग कम से कम था। परिस्थिति को भावना तथा कथोपकथन के निर्देशों द्वारा और गीतों द्वारा ग्रहण किया जाता था। कथावस्तु में निर्दिष्ट परिभ्रमणों (कथावस्तु के संक्षिप्त मंच निर्देश) को अभिनेतागण अपने आंगिक अभिनय के द्वारा प्रस्तुत कर दिया करते थे। ये दो पात्रों के द्वारा अथवा लेखक के वर्णनानुच्छेद द्वारा निर्दिष्ट होता है। कभी कभी अभिनेता आंगिक अभिनय द्वारा भी इसे प्रस्तुत कर देते थे। अश्व रथ आदि मंच पर नहीं लाये जाते थे किंतु उनके लिए आंगिक अभिनय तथा चित्राभिनय द्वारा उपयुक्त कलात्मक क्रियाएं प्रस्तुत की जाती थीं जो उचित रूप में सम्पादित होने पर आश्चर्यजनक रीति से सफल प्रभाव उत्पन्न करती थीं।[2]

शकुंतला में नाटयेन प्रवतारदति शीर्षक संक्षिप्त रंगमंच निर्देश के अनुसार दुष्यंत रथ से उतरने का नाट्य करता है। इसी प्रकार शकुंतला पात्रों से (अनुपस्थित) पौधों को जल देती है और उसकी सखियां अनुपस्थित पौधों तथा वृक्षों से पुष्प तोड़ती हैं। उपयुक्त हस्ताभिनय किस रीति से सम्पादित होता है इसे आज भी 'कथाकली' में देखा जा सकता है। नाटक में भावाभिनय के ये श्रेष्ठ उदाहरण हैं। आजकल इनका प्रचलन समाप्त प्राय है। विदेशी फिल्मी अभिनेता चार्ली चपलिन ने इसी प्रकार का अभिनय करके संसार में प्रसिद्धि पायी थी।

संस्कृत नाट्य प्रस्तुतीकरण की पृष्ठभूमि में संगीत का यथेष्ट समावेश भी था। मंच पर एक वादन दल पृष्ठ स्थित रहता था और वाद्यों द्वारा भावों एवम् अनुभावों को प्रवर्धित करता रहता था। पात्रों की विभिन्न शैलियां तथा गतियां उनकी प्रकृति आयु तथा भावात्मक अवस्था के अनुसार निर्धारित की जाती थीं। विशेष परिस्थितियों में मदंग अथवा वीणा पर संकेतात्मक ध्वनियां उत्पन्न की जाती थीं।

गीतों की प्रतीकात्मक पद्धति के प्रयोग का प्रभाव विदेशी लेखकों पर भी

---

1 महाकवि कालिदास श्री रमाशंकर तिवारी पृष्ठ 310
2 सेठ गोविन्ददास अभिनंदन ग्रंथ डॉ० वी राघवन पृष्ठ 10

बहुत पड़ा है। T S Eliot ने अपने 'मडर इन कथिड्रल' नामक नाटक में भी प्राग तुक परिस्थितियों का संकेत देने के लिए पृष्ठभूमि में गीतों की योजना की है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भी गीतों का प्रयोग एवं प्रभाव द्रष्टव्य है।

संस्कृत नाटक प्रस्तुतीकरण के समय गीतों का भी प्रयोग होता था जिसे 'ध्रुव' कहते थे। डा वी राघवन के अनुसार ध्वन्यंग संगीत की दृष्टि से 'ध्रुव' नामक गीत थे जिन्हें रंगमंच के संगीतज्ञों द्वारा नाटक के उपयुक्त बना लिया जाता था। इस प्रकार के पांच ध्रुव थे। प्रवेश तथा प्रस्थान के ध्रुव जो दर्शकों को प्रवेश अथवा प्रस्थान करने वाले पात्र, स्थिति विस्तार और पात्र के प्रवेश अथवा प्रस्थान की अवस्थाओं की सूचना देते थे और तीन अन्य ध्रुव जिनका प्रयोग पात्र के अंक स्थित होने पर होता था। एक तो संदर्भ में परिवर्तन की सूचना देता था, एक स्थिति को और भी अधिक भासमान बनाता था और पांचवां तब गाया जाता था जब नाटकाभिनय में पर्याप्त विलम्ब अथवा अन्तर होता था। जो गीत प्राकृत उपभाषाओं में प्रतीकात्मक पद्धति में होते थे वे रंगमंच के संगीतज्ञों द्वारा नाटक के पद्यों तथा स्थितियों के आधार पर निर्मित कर लिए जाते थे। इनका सामान्य परिचय कालिदास के 'विक्रमोवर्शीय' के प्रतीकात्मक चतुर्थ अंक में रंगमंचीय रूपान्तर से हो सकता है जो पाण्डुलिपियों में सुरक्षित है। किसी विशिष्ट मूर्च्छनायुक्त प्रभाव की आवश्यकता होती थी तब ऐसे गीत गाए जाते थे जिनमें केवल संगीतात्मकता मुख्य होती थी अथवा वंशी जैसे वाद्यों का उपयोग किया जाता था। भरत ने स्वप्न स्वरों तथा रसों में प्राप्त हो सकने वाले सहज सम्बन्ध को तथा जातियां अथवा संगीत प्रणालियों को जो नाटक की विशिष्ट भावात्मक स्थितियों के लिए सन्नद्ध की जा सकती थी—प्रस्तुत किया है। संगीत नाट्य मुख्यतः गायन एवं वादन के साहाय्य से संचालित रंगमंचीय कला के लिए प्रयुक्त होता था।[1]

संस्कृत रंगमंच में चमत्कार प्रदर्शन का महत्वपूर्ण स्थान था। भवभूति के मालती माधव' के द्वितीय अंक में जलते हुए पैशाचिक श्मशानघाट का उल्लेख मिलता है।[2] तथा विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' नाटक में भी अनेक रोमांचक तत्त्व विद्यमान हैं। इसी प्रकार महेन्द्र विक्रम द्वारा रचित 'भगवदज्जुकीय' नामक

1 सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रंथ डा वी राघवन, पृ 11-12
2 वही पृ 14

प्रहसन में एक चमत्कार का उल्लेख मिलता है जिसमें एक दूत की भूल के कारण एक महात्मा वश्या के शरीर में प्रविष्ट होकर दार्शनिक सी बातें करने लगता है तथा वश्या महात्मा के शरीर में प्रवेश कर हाव भाव का प्रयोग करने लगती है।[1] आकाशभाषित स्वगत भाषणों का भी शूद्रक, वररुचि, ईश्वर दत्त आदि नाटककारों ने उपयोग किया है।

पुरूरवा के द्वारा लता को छूने ही उर्वशी का प्रकट हो जाना तथा बाद में उर्वशी का अप्सरा बन कर स्वर्ग में चला जाना अचौध चमत्कार ही है।[2] इसी प्रकार हर्ष के नागानंद में मरे सांपों को पुन जीवित करने का चमत्कार भी लिखा है।[3] संस्कृत नाटकों का प्रदर्शन सोद्देश्य होता था, उनमें जन हित समाहित था। इसी दृष्टिकोण को लेकर वे जनता के समक्ष अभिनीत किए जाते थे।[4]

संस्कृत नाटकों में वध और युद्ध का वर्णन भी मिलता है। 'अभिषेक नाटक के छ अंकों में बालिवध से लेकर रामाभिषेक तक की कथा का अभिनय है। पर बाला वध दिखा कर भास ने भारतीय परिपाटी का उलंघन किया है। इसी प्रकार उरुभंग' के एक अंक में भीम और दुर्योधन का युद्ध वर्णित है। मंच पर दुर्योधन की मृत्यु दिखा कर भास ने परिपाटी का उलंघन किया है। बाल चरित नाटक में भास ने कृष्ण और अरिष्ट का पारस्परिक युद्ध और अरिष्ट का निधन भी दिखाया है।[5]

भरत मुनि के अनुसार मंच पर वध दिखलाना निषिद्ध है। संस्कृत नाटक वेणी संहार में दुर्योधन वध की सूचना कंचुकी द्वारा दी जाती है इसमें तो सूच्य कथावस्तु का पालन कर लिया गया है किंतु उरुभंग' में जो मृत्यु मंच पर बतलायी गया है वह भी श्रीकांत किशोर मरतिया के अनुसार भरतमुनि के नियम के प्रतिकूल नहीं है। उनके मतानुसार दुर्योधन जैसे दुष्ट की मृत्यु में दुख नहीं सुख की उत्पत्ति होती है। अत जहा नाटक में दुष्टात्मा अथवा खलनायक की मृत्यु बतलायी जाती है वहाँ भरत का नियम भंग नहीं होता। इसी प्रकार प मथुरा प्रसाद दीक्षित कृत संस्कृत नाटक 'भारत विजय' में कई स्थलों पर भारतीय सैनिकों द्वारा अंग्रेज

1 सेठ गोविन्ददास अभिनंदन ग्रन्थ डा बी राघवन प 14 15
2 3 से गो अ ग्र डा सूर्यकान्त, प 238 243
4 सेठ गोविन्ददास अभिनंदन ग्रंथ डा बी राघवन पृष्ठ 15
5 सेठ गोविन्ददास अभिनंदन ग्रंथ डा सूर्यकान्त, पृष्ठ 234

विदेशियों का वध मंच पर प्रदर्शित किया गया है। यह भी भारतियों के लिए प्रसन्नता का सूचक है। अतः जो वध घटना प्रसन्नता की सूचक हो उससे यह कृति नियम विरुद्ध नहीं ठहरायी जा सकती।[1]

संस्कृत नाटकों में ऐसे अनेक तत्व मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि तत्कालीन नाटककार अच्छे अभिनेता भी थे। डा. राम विलास शर्मा के लेख से भी भरत का निर्देशक होने की पुष्टि होती है। उन्होंने लिखा है "स्वयं वाल्मीकि नाटक लिखते हैं जो 'उत्तर रामचरित' के अंतिम अंक में खेला जाता है जिनके दर्शकों में श्री राम, सीताजी लव, कुश, लक्ष्मण जनक, कौशल्या आदि हैं, उसके निर्देशक हैं भरत मुनि।[2]

भारत की रंगमंच कला बड़ी प्राचीन है। भरत के द्वारा अपने सौ शिष्यों को नाट्य शिक्षा देने का वर्णन विद्वानों ने किया है। उत्तर रामचरित में भरत को तौर्यत्रिक सूत्रधार कहा गया है। उक्त नाट्याचार्यों में सूत्रधार सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अभिनेताओं को निर्देशित करता है, संवादों का क्रम निश्चित करता है, अभिनय निर्देशित करता है और नाटक के सम्पन्नतापूर्वक मंचे जाने के लिए उत्तरदायी होता है।[3] भवभूति काल में निर्देशक को तौर्यत्रिक अथवा सूत्रधार कहते थे। निर्देशक के नीचे भी कुछ दक्ष व्यक्ति रहते थे, जिनका काम था अभिनेताओं को शिक्षित करना।[4]

भरत के बाद इस प्रकार का वैशिष्ट्य दिखाई नहीं देता। परवर्तीकाल में कालिदास मात्र एक नाटककार के रूप में अवतरित होते हैं।

नाट्य प्रस्तुतीकरण के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। सुभट का दूतांगद (छाया नाटक) अहनिलवाड़ में महाराज त्रिभुवनपालदेव के दरबार में सन् 1242 ई० के लगभग अभिनीत किया गया था।[5] नाटक "दर्पदलनदनाशन' देव शिल्प विश्व कर्मा द्वारा निर्मित नाट्य शाला में अभिनीत हुआ। भरत ने अपने सौ शिष्यों के साथ

---

1 संस्कृत नाटककार श्री कांति किशोर भरतिया पृष्ठ 4
2 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (10 नवम्बर 1970) 'भवभूति चले युग चला' पृ० 41
3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 148
4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 149
5 संस्कृत नाटककार श्री कांति किशोर भरतिया, पृष्ठ 207

अभिनय तथा निदेशन किया।[1] अनुमानतः 'दस्यदानवनाशन' के प्रस्तुतीकरण हेतु नाट्यशाला कैलाश पर्वत पर बनायी गयी थी।"

डा. राम विलास शर्मा के कथनानुसार, *मालती-माधव में सूत्रधार कहता* है कि अभिनेताओं से सहज मैत्री होने के कारण भवभूति ने अपना नाटक उसे दिया है। भवभूति रंगमंच और नटों से भली भांति परिचित जान पड़ते हैं उनसे मैत्री अवश्य रही होगी।"[2] इस कथन के आधार पर यही प्रतीत होता है कि संस्कृत नाट्य काल में नाटककार, निदेशक और अभिनेताओं के अलग अलग रूप हो गए थे। भरत की तरह संस्कृत काल के नाटककार स्वयं अभिनेता और निर्देशक नहीं रहे। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में नायक के विरुद्ध खलनायक प्रायः हुआ करते थे। संस्कृत नाटकों मे विट की बहुत महत्ता थी।

कालिदास एवं भवभूति और विशाखदत्त के नाटको मे दर्शको को अनुभवी और आलोचनात्मक दृष्टि वाला बताया है।[4] उन्हें सावधान और चारों प्रकार के वाद्य यन्त्रो को बजाने में सिद्ध तथा वेशभूषा उपमाषाओं भंगिमाओं और छन्दों का ज्ञाता, शास्त्रों और कलाओं मे विज्ञ और धार्मिक स्वभाव वाला कहा गया है। 'अभिनय दर्पण' में दर्शकों को ऐसा कल्पवृक्ष माना है वेद जिसकी शाखाएं, शास्त्र इसके फूल और विद्वान इसकी मधु मक्खियां हैं।[5]

नाट्य प्रदर्शनों में सभापति के द्वारा अभिनेताओं के मध्य पुरस्कार वितरण की बात भी कही गयी है। इसके निर्णायकों को प्राश्निक कहते थे।[6]

भरत के नाट्य काल मे अभिनेताओं को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। उनको शूद्र चारों' को निराहृत (सभ्य) लोग नीची दृष्टि से देखते थे और उनसे घृणा करते थे। जब ये मर जाते थे तो इनकी मृत्यु अशोक कही जाती थी।

---

1 नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण वाचस्पति गरोल पृष्ठ 181

2 वही पृष्ठ 65

3 'भवभूति चले युग चला' साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1 नवम्बर 1970 डा राम विलास शर्मा पृष्ठ 41

4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 153

5 वही पृष्ठ 155

6 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 156

मनु ने अभिनेताओं की स्त्रियों की नाजायज सम्बन्ध होने पर दण्ड की व्यवस्था की है क्योंकि वे स्वयं अपनी स्त्रियों को पसे के लोभ से दूसरों को देने के लिए तैयार रहते थे। विष्णु के विधि शास्त्र मे अभिनेताओं को अयोगत बताया गया है जिनकी उत्पत्ति शूद्रों और वैश्य कन्याओं से है। अपनी स्त्रियों का सतित्व बेच देने के कारण उन्हें जयाजीव तथा रंगाजीवा कहा गया। विष्णु स्मृति (16/8) में उन्हें अयोगत कहा गया है। अयोगत अर्थात शूद्र और वैश्या से उत्पन्न वर्ण शंकर संतान।[1] महाभाष्य म कहा गया है कि उन अभिनेताओं की पत्नियां जो स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे, भ्रष्ट होती थीं और वे अन्य पुरुषों से इस प्रकार मिलती जुलती थीं जिस प्रकार स्वर से व्यंजन।[2]

इसके विपरीत ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि अभिनेताओं को नाटककारों और राजाओं की मित्रता प्राप्त थी। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कला का उद्गम नीचे स्तरों से होते हुए भी उच्चत्तम काव्य की श्रेणी में पहुँच गया और सम्मानित हुआ था। हर्ष चरित में बाण ने अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को अपना मित्र बनाया है। भर्तृहरि ने राजा से इनकी मित्रता का उल्लेख किया है।[3]

संस्कृत कालीन नाट्य प्रदर्शन प्राय वसन्तोत्सव के समय हुआ करते थे जिसमें देश देशांतर से दर्शक आमन्त्रित होते थे। सिद्ध है कि संस्कृत नाट्य काल में कला अपने उत्कर्ष पर थी।

संस्कृत रंगमंच हेतु दृश्य परिवर्तन की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती थी क्योंकि संस्कृत नाट्य प्रदर्शनों मे सूच्य कथा वस्तु का बहुत प्रयोग होता था।

दृश्य परिवर्तन मे समय भी नहीं लगता था। वर्णनात्मक छन्दों के उच्चारण द्वारा नाटकार दर्शकों को नए स्थल पर ले जाता था। अभिनेता रंगमंच पर दो पग चलता अन्य स्थान पर पहुँच जाता था। एक अंक में एक दिन से अधिक की घटनाएं नहीं दिखलाई जाती थी। अंकों के बीच एक वर्ष से अधिक समय का अन्तर नहीं होता था। जो कोई घटनाएं इस समय के बीच घटती, उन्हें कोई अधम या

---

1 भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण वाचस्पति गरोल पृष्ठ 109
2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 157 158
3 वही पृष्ठ 159

मध्यम पात्र अपने अंश के आरंभ में दर्शकों को बता देता था।[1]

अंग संचालन के द्वारा भावाभिनय का प्रयोग संस्कृत नाट्य प्रदर्शनों में प्रायः हुआ करता था। अभिनेता नदी पार करते हैं, हाथी सवारी करते हैं, आकाश में उड़ते हैं। सब केवल हस्त मुद्राओं के भाव सवलित अभिनय द्वारा। यदि अंधकार दिखाना अभीष्ट हो तो मंच का प्रकाश धुंधला नहीं किया जाता, बल्कि तेज रोशनी में अभिनेता हाथों से राह टटोलता हुआ, इस प्रकार चलता है कि घोर अंधकार का आभास होता है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक में रथ पर सवार दुष्यन्त जंगल में हिरन का पीछा करता है तो वास्तविक रथ और हिरन मंच पर प्रदर्शित नहीं किए जाते। शकुन्तला फूल तोड़ती है और बेलों को जल से सींचती है किन्तु न फूल होते हैं न पानी और न बेलें। सभी कुछ अभिनय का चमत्कार है।[2] उस समय अभिनय प्रतिकात्मक होता था। इसलिए स्थान स्थान पर नाटकों में 'रथावतरणं नाटयति' अथवा 'घट सेचनम् नाटयति' दिया हुआ है। उस समय न रथ होता था न घट वरन् उसका नाट्य मात्र होता था।[3] संस्कृत नाट्य काल रंगमंचीय यांत्रिक विधियों का शैशवकाल था कमी केवल ध्वनि एवं प्रकाश के उपकरणों की ही थी। यह सर्वविदित है कि संस्कृत नाटककार एवं प्रस्तोता बड़े विवेकी पुरुष थे। यहां दर्शकों की सिद्ध दृष्टि का वर्णन भी मिलता है।

पूर्व रंग

संस्कृत नाट्य प्रस्तुतीकरणों के प्रारम्भिक सूत्र 'पूर्व रंग' भारतीय धार्मिक संस्कारों की देन है। इसीलिए इसकी संस्कृत ग्रंथों में अवधारणा की गयी है। भरत के ना० शा० में इसका वर्णन मिलता है।

डा. भागीरथ मिश्र के अनुसार, पूर्वरंग वास्तविक अभिनय के पहले आता है। इसमें गायकों का प्रवेश, गीतारंभ, नांदी पाठ, वन्दन आदि का विधान है। सबसे पहले रंगपीठ के मध्य में स्थित ब्रह्मा का अभिवादन किया जाता है और तब सूत्रधार वन्दना करने वालों के साथ प्रवेश करता है। सर्व प्रथम प्राची दिशा की वन्दना होती है जिसके स्वामी इन्द्र हैं फिर दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं की वन्दना होती है। पुनः शंकर, ब्रह्मा और विष्णु की वन्दना की जाती है। तब

1 रंगमंच बलवंत गार्गी पृष्ठ 43
2 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृष्ठ 21
3 हिन्दी विश्वकोश (खण्ड छ) पृष्ठ 262

सूत्रधार का कथोपकथन होता है। तदुपरांत रंग सिद्धि के लिए काव्य वस्तु का निरूपण किया जाता है। काव्य की प्रस्थापना के कवि के नाम का भी अनुकीर्तन होता है। इस प्रकार पूर्व रंग का विधिवत् पालन करने से अमंगल या अनिष्ट नहीं होता।[1] ऐसा भारतीय रंग कर्मियों का विश्वास रहा है।

संस्कृत नाटकों के विधान का सूत्रधार के हाथों से सम्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। सूत्रधार श्वेत पुष्प विखेरता हुआ रंगमंच के देवता को प्रणाम करके स्वर्णिम पात्र में से पानी की अंजुली भरता और उसे चारों ओर छिड़क कर स्थल को पवित्र करता था। फिर वह देवराज इन्द्र का जर्जर उठाकर उसे पुष्प अर्पित करता और पृथ्वी का शीश नवाकर मंच को प्रणाम करता था। मंच के प्रधान देवता (इन्द्रसेन) के प्रति यह अर्चना इसलिए की जाती थी कि सूत्रधार, अभिनेता और अन्य सम्बंधित लोगों को शुभ फल प्राप्त हो। अर्चना की यह पद्धति आज तक भी भारत के लोक नाटकों और नाटकियों की मंडलियों में प्रचलित है। यही रीति पवित्र तथा गम्भीर वातावरण बना देती है और कलाकारों की मानसिक वृत्तियों को एकाग्र कर देती है।[2]

श्री जय कुमार जलज ने डा. मदन मोहन घोष के कथन को स्वीकार करते हुए पूर्व रंग के दो भेद बतलाए हैं। चतुरस्त्र और त्र्यस्त।[3] डा. गिरिजासिंह ने पूर्व रंग में (1) नांदी (2) प्ररोचना, (3) प्रस्तावना (जिसके 5 भेद हैं कथोद्घात, प्रयोगातिशय प्रवृत्तक उद्घातक्य, अवलगित) माने हैं।[4]

संस्कृत कालीन मंच व्यवस्था के लिए विद्वानों का मत है कि उस समय कोई विशिष्ट पार्श्व भूमि निर्मित नहीं होती थी, केवल एक पर्दा होता था जिसके पीछे नेपथ्य होता था जहां से कोलाहल, स्वर आदि आते थे। हां इमारत आनन्द-दायक होती थी और उसकी सजावट भी राज प्रासादों जैसी होती थी। परन्तु लगता है कि रंगमंच सदैव सादा और खुला होता था शायद वह फर्श से ऊंचा भी नहीं होता था। जिन स्थानों पर रंगमंचीय सज्जा साधारणतया की जाती

1 काव्य शास्त्र डा. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 122
2 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृष्ठ 21 23
3 संस्कृत नाट्य शास्त्र एक पुनर्विचार श्री जयकुमार 'जलज' पृष्ठ 29
4 हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि डा. गिरिजासिंह, पृष्ठ 100

है वहां भी सेटिंग' के लिए कोई स्थान न था। 'शकुन्तला' नाटक राजा और उसके सारथी के जंगल में प्रवेश के दृश्य से प्रारम्भ होता है। अतः न वे ही स्थिर रहते हैं, न उनका परिवेश ही। अभिनेता चेहरे नहीं लगाते थे और स्त्रियाँ नारी पात्र की भूमिकाओं में उतरती थीं।[1] किन्तु प्रसाद जी की विचारधारा भिन्न है। उनका कहना है कि 'यदि मृच्छकटिक और शाकुन्तल तथा विक्रमोवर्शी नाटक सबके ही के लिए बने थे, जैसा कि उनकी प्रस्तावनाओं से प्रतीत होता है, तो यह मानना पड़ेगा कि रंगमंच इतना पूर्ण और विस्तृत होता था कि उसमें बैलों से जुते हुए रथ और घोड़ों के रथ तथा हेमकूट पर चढ़ती हुई अप्सराएं दिखलाई जा सकती थीं। इन दृश्यों के दिखलाने में मोम मिट्टी तृण लाख अभ्रक काठ चमड़ा वस्त्र और बाँस के पट्ठों से काम लिया जाता था। प्रसाद जी ने निम्नलिखित उदाहरण भी दिया है—प्रतिपादौ प्रतिशिरः प्रतिहस्तौ प्रतित्वचम्।

> तृणैः ज कीलजर्माण्ड सरूपाणीह कारयेत्
> यथरूपं यद्द्रव्यं स्यात् सारूप्यगुणसम्भवम्
> मृणमा यानि द्रव्याणि तु नाना रूपाणि तु कारयेत्
> भांडवस्त्र मधूच्छिष्टं लाक्षयाभ्रदलेन च
> नागास्तु विविधा कार्याः चर्म वर्मध्वजास्तथा।
>
> (अध्याय–24)

और यह सिद्ध किया है कि सरूप अर्थात् मुखौटों का भी प्रयोग दैत्य दानवों की विचित्रता के लिए होता था। कृत्रिम हाथ और पैर तथा मुखौटे मिट्टी पूस मोम, लाख और अभ्रक के पत्रों से बनाए जाते थे।[2]

भरत काल तक आते आते संस्कृत नाट्य परम्परा अपने स्वर्ण युग तक पहुंच गयी थी। यही कारण है कि नाट्य शास्त्र में नाटक एवं नाट्य प्रदर्शन के सभी व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। कालान्तर में रंगमंच के व्यावहारिक पक्ष का धीरे धीरे ह्रास होने लगा और पुनः नाट्य प्रदर्शन का क्षेत्र सीमित होकर राज दरबार तक ही रह गया अतः सामान्य दर्शकों के लिए मनोरंजन का साधन नहीं रहा। तत्कालीन वातावरण में प्राकृत एवं अन्य भाषाओं का स्वरूप बदलने लगा और लगभग 12 13 वीं शताब्दी तक आते आते

---

1 रंगमंच (शेल्डान चेनी) अनु श्री कृष्णदास पृष्ठ 142 से 144
2 काव्य और कला तथा अन्य निबंध प्रसाद पृष्ठ 97

संस्कृत रंगमंच राज्य प्रासादों से भी समाप्त हो गया और सामान्य रूप से जो तत्व संस्कृत रंगमंच ने लोक मंच से अपनाए थे वे पुन उन्हीं में जा मिले इसीलिए लोकनाट्यों का प्रदर्शन यत्र तत्र पुन रूप लेने लगा। अपभ्रंश में रास नाटकों की परम्परा का सूत्रपात भी इसी अवधि में हुआ। संस्कृत रंगमंच अब अनेक लोक-नाट्यों के रूप में समा गया। कुछ लेखकों की मान्यता है कि 'संस्कृत रंग परम्परा अनजाने रूपों में देश भर के विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के सामुदायिक रंगमंचों में बिखर गयी, मिल गई खो गयी।[1] इस परम्परा के अनुसार न्यूनाधिक रूप में आज भी संस्कृत कालीन नाटक संसार भर में प्रदर्शित होते रहते हैं। श्री जैन के मतानुसार दिल्ली के 'हिन्दुस्तानी थियेटर' ने संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन को अपने परम उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया था। इस संस्था ने मौनिका मिश्रा के निर्देशन में शकुन्तला' हबीब तनवीर के निर्देशन में मिट्टी की गाडी (मृच्छकटिक का हिंदी रूपान्तर) और शमा जैदी तथा सथ्यु के निर्देशन में मुद्राराक्षस का प्रदर्शन किया।[2] हबीब तनवीर ने 'मिट्टी की गाडी' को नौटंकी मानकर उसमें बहुत सी लोक संगीत की धुनें भर दी, एक विशेष प्रकार से रीतिबद्ध गतियों का प्रयोग किया, प्रारम्भ के सूत्रधार को ओवरकोट और पाइप लेकर मंच पर प्रस्तुत किया।[3] संस्कृत नाटकों का इस युग में आधुनिकरण हो गया है। केवल इतिवृत्त ही पुराना है। विदेशों में भी संस्कृत नाटकों की लोक प्रियता बढ़ती जा रही है। मृच्छ कटिक' में सब श्रेणियों के लोगों के लिए आकर्षण है। इसको न्यूयार्क, पेरिस, ओस्लो और योरोप के अन्य नगरों में प्रदर्शित किया गया है। 1957 में श्री बलवंत गार्गी ने इसे मास्को के पुश्किन थियेटर में देखा था जहां इसका नाम 'श्वेत कमल' रखा गया था।[4]

'अभिज्ञान शाकुन्तलम् सारे संसार में प्रदर्शित किया गया है। पिछले दो सौ वर्षों से भारत की प्रान्तीय भाषाओं में अनुदित होकर यह हजारों बार रंगमंच पर खेला गया। यह नाटक उत्तम अभिनय को परखने की कसौटी माना गया है।[5]

---

1 भारतीय रंग दृष्टि की खोज 'धर्मयुग (26 नवम्बर 1967) श्री नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 19
2 रंगदर्शन श्री नेमीचन्द्र जैन पृष्ठ 67
3 वही पृष्ठ 69
4 'रंगमंच बलवन्त गार्गी, पृष्ठ 45
5 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृष्ठ 47

यूरोप और अमरिका ने संस्कृत नाटकों को यथार्थवादी ढंग से मंच पर प्रस्तुत किया है। कुछ वर्ष हुए मनबान में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' स्टेज हुआ तो संचालक ने नाटक की दृश्य सज्जा पर बल दिया। एक सुनहरा रथ मंच पर लाया गया। 1957 में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' यूथ आर्ट थियेटर पेकिंग की ओर से प्रस्तुत किया गया था। इसमें भी रथ, महल और जंगल के दृश्य थे। चीनी नाटक में प्रतीकों और मुद्राओं की परम्परा है, फिर भी उन्होंने इस नाटक को घने वृक्षों से भरे वनों और जगमगाते राजमहल के दृश्यों से सज्जित किया। 1958 में पूर्वी जर्मनी में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का प्रदर्शन हुआ।[1]

भारतीय नाट्य शास्त्र की प्राचीन परम्पराओं एवं सिद्धान्तों को अपना कर भारतीय नाट्य कला की ममता रूक्मिणी देवी ने गत कुछ वर्षों पूर्व मद्रास स्थित 'कला क्षेत्र' में कालिदास के 'कुमार सम्भव' का अभिनय मिट्टी के रंगमंच पर सफलता के साथ प्रस्तुत किया था और यह प्रमाणित कर दिया कि योरोप से उधार लिए गए रंगमंच के अनावश्यक तत्त्वों के बिना भी नाटकीय प्रभाव तथा रसों की सृष्टि सम्भव है।[2]

इस युग में भी ऐसी अनेक संस्थाएं हैं जो केवल संस्कृत नाटक ही प्रस्तुत करती हैं। दिल्ली एवं इलाहाबाद केन्द्र इसके उदाहरण हैं। इलाहाबाद में प्रसिद्ध नाटककार डा० राम कुमार वर्मा के संचालन में एक संस्था कार्य कर रही है जिसका उद्देश्य संस्कृत नाटकों का प्रस्तुतीकरण ही है। इसी प्रकार इलाहाबाद की श्री कृष्णदास द्वारा संचालित कालिदास अकादमी संस्था का उदाहरण भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत रंग परम्परा विस्मृत अवश्य हो गयी है पर समाप्त नहीं हुई।

श्री बलवन्त गार्गी ने लिखा है कि बारहवीं सदी में मुसलमानों के आक्रमण से मृतप्राय संस्कृत नाटक ने दम तोड़ दिया। किन्तु मान्यता यह है कि संसार में कोई कोई चीज समाप्त नहीं होती। चूंकि संस्कृत अभी जीवित व भाषा रूप में मान्य है अतः उसके रंगमंच को भी सुरक्षित स्वीकार करना समीचीन है।

यह रंगमंच हिन्दी रंगमंच की आधारशिला अथवा जननी है। इस पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करना उपयोगी तथा अनिवार्य है।

---

1 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृष्ठ 52

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृष्ठ 657

हिन्दी का लोकमंच

हिन्दी लोकमंच शब्द बड़ा गूढ़ार्थ व्यंजक है। यह उस नाट्य परम्परा का द्योतक है जिसका निर्माता कोई व्यक्ति विशेष न होकर समस्त लोक मानस होता है। लोकमंच लोक जीवन और संस्कृति का दर्पण माना जाता है। यह न केवल लोक प्रचलित कला है, बल्कि लोक जीवन का सर्वस्व भी है। मूलतः लोकमंच अभिजात अथवा शास्त्रबद्ध नाट्य से भिन्न कहा जाता है पर परम्परागत अर्थों में उसका भी एक सर्वसम्मत शास्त्र बन जाता है, अथवा एक विधान निर्मित हो जाता है। लोकमंच वस्तुतः असंस्कृत समाज का अकृत्रिम स्वरूप है। हिन्दी की विभिन्न विभाषाओं में अनेक लोकनाट्य प्राप्य हैं जो रंगमंच के इतिहास में अपना स्थायी महत्त्व रखते हैं। इनका इतिहास यद्यपि अनुपलब्ध है फिर भी इतना प्रकट है कि इनकी परम्परा बड़ी पुरानी है।

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार संस्कृत के शास्त्रीय रंगमंच के विघटन के बाद हिन्दी का लोकमंच उदित हुआ। संस्कृत लोकमंच भरत काल के पूर्व भी माना जाता है। नाट्यशास्त्र के 26 वें अध्याय के अन्त में नाट्यशास्त्र और नाट्य के तीन रूप कहे गए हैं—लोक, वेद तथा अध्यात्म। इनमें लोक प्रमाण का प्राधान्य प्रतिपादित किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि भरत के नाट्यशास्त्र की सामग्री और भारतीय नाट्य कला लोक के वास्तविक अनुभव पर आधृत है। भरत ने अन्त में 'तस्माल्लोकप्रमाणं हि ज्ञेयं नाट्यम्' ही कहा है।[1] वस्तुतः लौकिक परम्पराओं से ही शास्त्रीय परम्पराओं का जन्म होता है। प्रत्येक परम्परा अपने काल में कुछ ऐसी रूढ़ियाँ स्थापित कर जाती हैं जिनसे आगामी युग परिपोषित होता है। रंगरुचियों का भूखा लोक मानस पुनः उन लौकिक रंग परम्पराओं की ओर आकृष्ट होता है। फलतः लौकिक परम्पराओं का पुनरुद्धार होता है। रंगमंच की इस लोक शास्त्र बद्ध

1 भरत मुनिकृत नाट्य शास्त्र प्रो भोलानाथ शर्मा, पृष्ठ 15 16

भाव निधि का हिन्दी लोकनाटयों[1] ने सवथा अगीकार किया है । इस लोक कला को सरक्षित और सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से आज उस शास्त्रबद्ध या नागर भावयुक्त कर लिया गया है । जो इस सदभ में विचारणीय है ।

रास नाटक और उसका रगमच

रास रहस, रासक रासो, रासायण आदि शब्द हिन्दी साहित्य के इतिहास मे बहुचर्चित रहे हैं । व्युत्पत्तिजनित मत भेद के होने पर भी इतना निश्चित है कि यह मूलत' रसाश्रित विधा है । लोक नाटय रूप में 'रास का यही प्रयोजन है । वस्तुत रस की अवधारणा मूलत नाटक के आधार पर ही स्थापित हुई थी जो इस शब्द से सबिद्ध किया जा सकता है । हिन्दी का रास (लोक) नाटक मध्ययुगीन रासलीला के अनुवर्ती है और स्वय में अध्ययन अनुसधान का अत्यत रोचक तथा विचारोत्तेजक विषय है । शाम्बपुर में 12वीं शताब्दी में वेद पारगतों के द्वारा कहीं कहीं पर वेदों के पठन पाठन एव कहीं कहीं अभिनेताओं के द्वारा रासक के मचीकरण के उल्लेख मिलते हैं । सदेश रासक में उल्लेख है[2] कि— At places where the Vedas are expounded by experts, some where the Rasak is Staged by actors' इसी प्रकार निम्नांकित पक्तियाँ भी विचारणीय है ।

कुत्रापि चतुर्वेदिभि वेद प्रकाश्यते ।
कुत्रापि बहुरूपमिनिबद्धो रासकोभाण्यते ।।

उपयुक्त 'रासक' शब्द के आधार पर कुछ विद्वानो ने सदेश रासक (13वीं शताब्दी) को दृश्यकाव्य भी माना है । उनका कथन है कि 'यह रासक पूणतया विकसित नाटकों के प्रारम्भिक काल का वह रूप है जिसम श्रव्य काव्य अभिनय कला की सहायता से दृश्य काव्य मे परिणत हो रहे हैं । बहुरूपियों से प्रदशन होने

---

1 हिन्दी अनुशीलन (अक 1 2 1969) श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पृष्ठ 5
–काव्य और कला तथा अन्य निबध प्रसाद, पृष्ठ 103
–हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्र प्रकाशसिंह, पृष्ठ 24
–रगमच दशन श्री नमिचन्द्र जैन, पृष्ठ 80
–लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार, पृष्ठ 4
2 सदेश रासक श्री जिनमुनि विजय, पृष्ठ 80

का उल्लेख इस बात का प्रमाण है।[1] श्री अगरचन्द नाहटा ने 'गयसुकुमार रास' नामक एक ग्रंथ की खोज जसलमेर में किया है। इस रास का रचना काल संवत 1300 विक्रमी के सन्निकट माना जाता है। स्पष्ट है कि राजस्थानी की यह रास परम्परा बड़ी प्राचीन है। अभी शेखावाटी प्रांत में इनका अभिनय भी होता है। 'लकुट रास' तो प्रतिवर्ष अभिनीत होता ही है।[2] डा सिंह के अनुसार 'सदेश रासक' पूर्ण अभिनय नहीं है। फिर भी यह अपभ्रंश-कृत दृश्यकाव्य के निकट है।[3] रास नाटकों का काल 13 वीं से 16 वीं शताब्दी तक माना गया है। इस परम्परा में अम्बदेव कवि (1371 वि) का सघपति समरा रास', ब्रह्म जिनदास का 'सम्यक्त्व रास', नन्ददास कृत 'स्याम सगाई' (रचना काल 1660 वि से 1700 वि) वृन्दावन दास (18 वीं शताब्दी विक्रमी) का गोनेबारी लीला, "श्री वियोगी हरि (स 1630 से स 1678 वि तक) का छद्मयोगिनी लीला' आदि रास कृष्ण लीला की शैली पर आधारित हैं क्योंकि यह समय कृष्ण भक्ति परम्परा का स्वर्णयुग था। इसमें 'सम्यक्त्व रास एक ऐसा प्रमाण है जिसमे इस युग में भी राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न को पात्र बनाया गया था।[4] यों उनमें कृष्ण की लीलाओं का ही अधिकतर है।

रासनाटकों की विशेषता का वर्णन करते हुए डा दशरथ ओझा ने लिखा है।[5] कि

(1) ये नाटक छन्दोबद्ध एवं गेय होते हैं।

(2) नाटक के सभी पात्र अथ से इति तक मंच पर ही विद्यमान रहते हैं।

(3) सम्पूर्ण नाटक नृत्य एवं गीत पर अवलम्बित होता है।

(4) इन नाटकों का मंगलाचरण तथा प्रशस्ति पाठ स्वांग नाटकों के सदृश है।

---

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा, पृष्ठ 83
—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 167

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 167
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृष्ठ 83 84

3 हिन्दी नाटक और रंगमंच की मीमांसा डा चन्द्र प्रकाश सिंह पृष्ठ 176

4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 169

5 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा ओझा, पृष्ठ 118

भाव निधि को हिन्दी लोकनाट्यों[1] ने सर्वथा अंगीकार किया है। इस लोक कला को संरक्षित और सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से आज उसे शास्त्रबद्ध या नागर भावयुक्त कर लिया गया है। जो इस संदर्भ में विचारणीय है।

रास नाटक और उसका रंगमंच

रास, रहस, रासक, रासो, रासायण आदि शब्द हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुचर्चित रहे हैं। व्युत्पत्तिजनित अर्थ भेद के होने पर भी इतना निश्चित है कि यह मूलतः रसाश्रित विधा है। लोक नाट्य रूप में 'रास' का यही प्रयोजन है। वस्तुतः रस की अवधारणा मूलतः नाटक के आधार पर ही स्थापित हुई थी जो इस शब्द से संसिद्ध किया जा सकता है। हिन्दी का रास (लोक) नाटक मध्ययुगीन रासलीला के अनुवर्ती है और स्वयं में अध्ययन अनुसंधान का अत्यंत रोचक तथा विचारोत्तेजक विषय है। शाम्बपुर में 12वीं शताब्दी में वेद पारगतों के द्वारा कहीं कहीं पर वेदों के पठन-पाठन एवं कहीं कहीं अभिनेताओं के द्वारा रासक के मंचीकरण के उल्लेख मिलते हैं। संदेश रासक में उल्लेख है[2] कि— 'At places where the Vedas are expounded by experts, some where the Rasak is Staged by actors' इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियाँ भी विचारणीय हैं।

कुत्रापि चतुर्वेदिभि वेदः प्रकाश्यते ।
कुत्रापि बहुरूपमिनिबद्धो रासकोभाण्यते ॥

उपर्युक्त 'रासक' शब्द के आधार पर कुछ विद्वानों ने संदेश रासक (13वीं शताब्दी) को दृश्यकाव्य भी माना है। उनका कथन है कि 'यह रासक पूर्णतया विकसित नाटकों के आरम्भिक काल का वह रूप है जिसमें श्रव्य काव्य अभिनय कला की सहायता से दृश्य काव्य में परिणत हो रहे हैं। बहुरूपियों से प्रदर्शन होने

1 हिंदी अनुशीलन (अंक 1 2 1969) श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पृष्ठ 5
–काव्य और कला तथा अन्य निबंध प्रसाद, पृष्ठ 103
–हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुं चन्द्र प्रकाशसिंह, पृष्ठ 24
–रंगमंच दर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन, पृष्ठ 80
–*लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार, पृष्ठ 4*
2 संदेश रासक श्री जिनमुनि विजय, पृष्ठ 80

का उल्लेख इस बात का प्रमाण है ।[1] श्री अगरचन्द नाहटा ने 'गयसुकुमार रास' नामक एक ग्रंथ की शोध जैसलमेर में किया है। इस रास का रचना काल संवत 1300 विक्रमी के संनिकट माना जाता है। स्पष्ट है कि राजस्थानी की यह रास परम्परा बड़ी प्राचीन है। अभी शेखावाटी प्रांत में इनका अभिनय भी होता है। 'लकुट रास' तो प्रतिवर्ष अभिनीत होता ही है।[2] डा सिंह के अनुसार 'संदेश रासक' पूर्ण अभिनय नहीं है। फिर भी यह अपेक्षाकृत दृश्यकाव्य के निकट है।[3] रास नाटकों का काल 13 वीं से 16 वीं शताब्दी तक माना गया है। इस परम्परा में अम्बदेव कवि (1371 वि) का सघपति समरा रास', ब्रह्म जिनदास का 'सम्यक्त्व रास', नन्ददास कृत 'स्याम सगाई' (रचना काल 1660 वि से 1700 वि) वृन्दावन दास (18 वीं शताब्दी विक्रमी) का गौचारी लीला "श्री वियोगी हरि (सं 1630 से सं 1678 वि तक) का छद्मयोगिनी लीला' आदि रास कृष्ण लीला की शैली पर आधारित हैं क्योंकि यह समय कृष्ण भक्ति परम्परा का स्वर्णयुग था। इसमें 'सम्यक्त्व रास' एक ऐसा प्रमाण है जिसमें कृष्ण युग में भी राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न को पात्र बनाया गया था।[4] यों उनमें कृष्ण की लीलाओं का ही आधिक्य है।

रासनाटकों की विशेषता का वर्णन करते हुए डा दशरथ ओझा ने लिखा है।[5] कि

(1) ये नाटक छंदोबद्ध एवं गेय होते हैं।

(2) नाटक के सभी पात्र अथ से इति तक मंच पर ही विद्यमान रहते हैं।

(3) सम्पूर्ण नाटक नृत्य एवं गीत पर अवलम्बित होता है।

(4) इन नाटकों का मंगलाचरण तथा प्रशस्ति-पाठ स्वांग नाटकों के सदृश है।

---

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा, पृष्ठ 83
—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 167

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 167
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृष्ठ 83 84

3 हिन्दी नाटक और रंगमंच की मीमांसा डा चन्द्र प्रकाश सिंह पृष्ठ 176

4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 169

5 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा ओझा, पृष्ठ 118

(5) रास के अन्त म नाटककार नाटक लिखने का प्रयोजन बताता है और उसके पठन श्रवण गायन मचन आदि स पुण्य फल की प्राप्ति का उल्लेख करता है।

(6) रास नाटक में स्वाग के सदृश्य आद्योपान्त सभी दृश्य पट परिवतन रहित होते हैं। इनमे सस्कृत नाटकों के समान अक, प्रवेशक विष्कम्भक तथा अकावतार आदि नहीं होते। नाटक के मध्य में जब घटनास्थल परिवर्तित हो जाता है तो उसकी सूचना कवि किसी पात्र विशेष के द्वारा दिला देता है। अत दृश्य अपरिवतन होते हैं। डा ओझा ने रास नाटकों को 'सस्कृत नाट्य परम्परा से बिल्कुल भिन्न' माना है।[1]

उक्त नाटय ग्रन्थों द्वारा रास नाटकों के बार म पाठ्य सामग्री तो मिल जाती है, किन्तु उनके प्रदशन (मचन) की सम्यक जानकारी प्राप्त नहीं होती। कवल यही ज्ञात होता है कि रास नाटकों का अभिनय बहुरूपिये करते थे। इसमे रगमच सम्बन्धी कई प्रश्न सामने आते हैं जिनका उत्तर रास नाटकों से विकसित हिन्दी नाटक एव रगमच के परिप्रेक्ष्य म मिल सकता है। इन ग्रन्थों के आधार पर प्रकट होता है कि—

(1) इनके कथानक सक्षिप्त, सरल एव शृगारिक होते थे।

(2) इन नाटकों का प्रदर्शन अवश्य होता था पर समवत गाया में ही। डा ओझा ने लिखा है कि अधिक सख्या मे एसे रास नाटक मौखिक ही हुआ करते थे। वे नाटककर्ताओं को कठस्थ होते थे। उनको प्राय लयबद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती थी और वे गुरू स परम्परागत शिष्य को प्राप्त होते रहते थे। अधिकाश जन नाटकों की यही स्थिति है। वे लेखबद्ध न होकर प्राय मौखिक रूप म ही मिलत हैं और समयानुसार परिवतन क साथ अभिनीत होते रहते हैं।[2] इस कथन से एक बात और स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि पाश्र्ववाचक (Prompter) का उस समय प्रचलन नहीं हुआ था और न ही उसकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी क्योंकि सभी अभिनेताओं को अपने अपने सवाद कठस्थ होत थ।

(3) रास नाटक युग में तत्कालीन प्रस्तुतकर्ताओं क पास साधनों की कमी थी, जिससे वे प्रकाश अधकार दिन रात आधी, तूफान क दृश्य उपस्थित नहीं कर पाते थे और इसीलिए उन्हे यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि प्रेक्षकों को उनकी

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृष्ठ 119

2 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृष्ठ 65

सूचना संवादों के माध्यम से दे दी जाय, अतः 'सूर्यास्तहो इन में रहा है', निशागमन' आदि शब्दों का संकेत किया जाता था।[1]

(4) प्रेक्षक भी ऐसे संकेतों के अनुसार उक्त दृश्यों की कल्पना कर लिया करते थे।

(5) इनसे एक तथ्य प्राप्त होता है, वह यह कि ये लोक नाटक (राम लीला रास लीला) (कृष्ण लीलाएं भी) रूढ़िगत हैं। ये भरतमुनि के पूर्व विद्यमान रहे हैं। तभी भरत के नाट्य शास्त्र में 'रासक' को एक उपरूपक माना गया है और जिसके 3 भेद बतलाए गए हैं—ताल रासक, दण्ड रासक और मण्डल रासक[2]। आज भी रास नाटक अपनी उसी स्थिति में विद्यमान है। व भरतमुनि, हर्ष, बाणभट्ट कालिदास, अश्वघोष, विशाखदत्त आदि के काल से गुजरते हुए यहाँ पहुँचे हैं।

राजस्थान में रास के कई रूप देखे जाते हैं। नाथद्वारा कांकरोली में वल्लभाचार्य के प्रभाव से जो कृष्ण लीला का प्रचलन हुआ उससे रासधारी लोकनाट्य का जन्म हुआ। रासधारी गीत प्रधान लोक नाट्य है। कलाकार इन्हें कण्ठस्थ कर लेते हैं और इनका अभिनय करते हैं। इसका कोई निश्चित मंच नहीं होता। मारवाड़ की रासधारियां पर्याप्त नृत्य संगीत और साज सज्जापूर्ण होती है। रासधारियों में राम कृष्ण के साथ-साथ राजा महाराजाओं का भी वृतान्त होता है। इसके कलाकार मुख्यतः रावल, मिरासी, ढोली, भाट और अन्य पेशेवर लोग होते हैं। पुरुषों का चटकीली, ढीली लम्बी पोशाकें, भाले और तलवारें धारण करनी होती हैं और स्त्रियां लहंगे तथा घूंघटदार साड़ियां पहननी हैं। उन्हें विशेषतः नृत्य करना होता है। इनका कोई मंच नहीं होता। रासधारियों में कहरवा, दादरा, त्रिताल से युक्त गोरी चन्द, हरिश्चन्द्र आदि पौराणिक आख्यान बहुत प्रचलित हुए हैं। यह लोक नाट्य आज भी यत्र तत्र द्रष्टव्य है। फुलेरा की रास लीला अपना विशेष महत्व रखती है। संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि रास की परम्परा अत्यन्त सुदीर्घ है और समृद्ध भी।

---

1 दे संदेश रासक का अनूदित भाग हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा, पृष्ठ 82

2 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार, पृष्ठ 3

वस्तुत रास नाटक जितने प्राचीन हैं उतने चिर प्रचलित भी। सम्प्रति ब्रज क्षेत्र म ग्रामिक जनता के बीच इनका मचन देखा जा सकता है। हाँ, इनका मूल रूप अवश्य अरक्षित हो गया है। नागर भावों के कारण लोककला तो अव्याहत नहीं रह सकती, पर उसका अस्तित्व अवश्य सुरक्षणीय है।

लीला नाटक और रंगमंच

वैष्णव भक्त और आचाय रासलीला को रस स्वरूप परात्पर ब्रह्म से जीव का मिलन कराने वाली साधना मानते हैं। उनके अनुसार लीला श-द म 'ली' का अथ है मिलन और 'ला' का अथ है प्राप्त करना। इस प्रकार रस स्वरूप ब्रह्म से जो जीव का मिलन करावे उसी का नाम है रासलीला।[1] लीला नाटकों म श्री कृष्ण लीला श्री राम लीला तथा नृसिंह लीला उपलब्ध है। इनकी परम्परा रामायण और महाभारत काल से समय समय पर प्राप्त होती रही है।

मध्ययुग मे कुछ शताब्दियां ऐसी बीतीं, जब कि प्रत्येक क्षेत्र एक दूसरे के सम्पक से वचित हो गया। फलस्वरूप मनोरजन के साधनो का सवमान्य रूप विश्रृंखलित हो गया और कुछ लौकिक कलाए उदित हुई। लोक जीवन के ससपश से ये लीलाए परम्परात्मक नाटय शली म परीणत हो गई। राम भक्ति शाखा की प्रेरणा से राम के जीवन का अभिनय (राम लीला) प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार रास लीला की लोकधर्मी नाटय परम्परा विकसित हुई। हिन्दी नाटको के विकास म इस मध्यकालीन कला का महत्वपूण योग है। ईसा की 7वीं शताब्दी म कृष्णरास की शली पर एक और नाटय प्रणाली प्रचलित थी जिसका उल्लेख चीनी यात्री ईत्सिंग ने अपने लेखों मे किया है। इसमे बोधिसत्व को नायक बना कर अभिनय किया जाता था।[2] बारहवीं शता-दी मे श्री बोपदव रचित श्रीमद्भागवत दशमस्कध की श्रीकृष्ण लीला के रास का उल्लख पाया जाता है।[3] 15 16वीं शता दी मे ब्रजभूमि में यही परम्परा नय उत्साह के साथ प्रकट हुई।[4]

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमांसा डा कु च द्र प्रकाशसिंह, पष्ठ 67

2 हि दी नाटक उद्भव और विकास, डा दशरथ ओझा, पष्ठ 78

3 वही पष्ठ 89

4 लोकधर्मी नाटय परम्परा, डा श्याम परमार, पष्ठ 19

13वीं शताब्दी में बहुरूपिये अर्थात अभिनेता इन रासकों का प्रदर्शन करते थे। 16वीं शताब्दी में भक्तराज हितहरिवंश ने महात्मा घमण्डीलाल तथा बाबा हरिदास को नाट्य सम्बन्धी निर्देश किया। इस युग में रासलीला में राधा कृष्ण की छवि के अनुरूप प्रसाधन भी प्रारम्भ हुआ। गोपियों का प्रसाधन स्वयं हितहरिवंशजी ने किया था। उन्हीं के नतृत्व में 'रासमंडल' की तैयारी हुई।[1] महात्मा घमण्डी लाल के विशेष उद्योग से ग्राम निवासी बालकों को अभिनय की पूरी शिक्षा मिली। नृत्याचार्य वल्लभ ने नृत्य की सम्यक शिक्षा दी और रासमंडल का अभिनय अबाधगति से होने लगा। इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि लोग वृन्दावन का दर्शन करना तब तक अपूर्ण समझने लगे जब तक वे रास लीला न देख लें।[2]

13वीं शताब्दी में उपलब्ध अपभ्रंश, राजस्थानी मिश्रित रास नाटकों की परम्परा (जो आज तक चली आ रही है) का प्रभाव, 16वीं शताब्दी में ब्रज भाषा के नाटकों पर भी पड़ा। डा. दशरथ ओझा ने लिखा है—इस प्रकार अपभ्रंश से उद्भूत रास परम्परा ने हमारे नाट्य साहित्य को इतना प्रभावित किया कि ब्रज भाषा में भी 16वीं शताब्दी में रास की नई परम्परा चल पड़ी। इस परम्परा में नन्ददास, ध्रुवदास, ब्रजवासीदास आदि महात्माओं ने उत्कृष्ट रचना की।[3]

वृन्दावनदास के बाद ब्रजवासीदास का उदय काल माना जाता है। इसी काल (16 वीं शताब्दी) में कृष्णलीला की शैली पर नरसिंह लीला, भगीरथ लीला, प्रह्लाद लीला आदि की रचनाएं भी होने लगीं। ब्रजवासीदास कृत 'ब्रज विलास' में श्रीकृष्ण की 74 लीलाओं का वर्णन मिलता है। ये लीलाएं नाटकीयता प्रधान हैं। इनमें कृष्ण और ग्वाल ग्वालिनों के संवाद भी हैं। उन्हें दृश्य, अध्याय, कांड, परिच्छेद इत्यादि में न बांट कर लीलाओं में बांटा गया है। इस समय काव्य के स्थान पर गद्य संवाद तथा हास्य का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था, जैसा कि नन्ददास, वृन्दावनदास की लीलाओं में मिलता है। इसकी वर्तमान स्थिति का विवरण डा. ओझा ने दिया है—इस वर्ष हमने वृन्दावन में दधीचोरी लीला कई स्थानों पर देखी। विभिन्न मण्डलियों द्वारा इसका अभिनय हुआ। हमने यह देखा कि किसी

---

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा. दशरथ ओझा पृष्ठ 84
2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 170
3 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा. दशरथ ओझा, पृष्ठ 84

मे कृष्ण की मुरली को गोपियो तक पहुँचाने का काम पुरोहित जी करते हैं और किसी म गोप । गोपियों का पुरोहित तथा गोप के साथ हास बड़ा असम्भ्रत पूर्ण था । वे बार बार बूढे पुरोहित की पीठ पर या गोप की पीठ पर धब-धब मारती थी और स्वत हसती थी । यह ढग स्वाग जसा प्रतीत होने लगता है । एक तो सवाद मे गद्य परिमार्जित न होने से यों ही आध्यात्मिकता का पुट नहीं रहता, दूसर बार बार मजाक करने से तो वह बिल्कुल ही नष्ट हो जाता है ।[1]

रासलीला के मच का वर्णन करते हुए श्री कृष्णदास लिखते हैं—रासलीलाओं का अभिनय प्रतिदिन व दावन मे किसी न किसी देव मंदिर कुंज अथवा कालिंदी पुलिन पर होता रहता है । जात्रा नाटकों की तरह रास लीला मे परदों अथवा नाटक सम्बंधी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती । रास लीला का रगमच अत्यन्त साधारण और सरल होता है । ऊंचे तख्त या चबूतरे पर चादर बिछा दी जाती है । उसी पर अभिनेता आ जाते हैं । जनता चारों ओर बठ जाती है-एक ओर स्त्री और दूसरी ओर पुरुष । राधाकृष्ण और सखियो के पदार्पण करते ही जनता उठकर उनका अभिन दन करती है । लोग चरण स्पश करने को दौड पडते है । राधाकृष्ण काठ की बनी गद्देदार कुर्सी पर विराजमान होते हैं और नांदी पाठ आरम्भ होता है जिसमे जयदेव के गीत गोविंद, वल्लभाचार्य और हित हरिवंश आदि के स्तोत्रों से वन्दना होती है । इसके बाद एक सखी कृष्ण से कहती है— 'रास को समय ह्व गयो अब आप पधारें ।'[2] इसके बाद कृष्ण राधिका के बीच सवाद चलते हैं । भाव विभोर दशकगण बीच बीच मे श्री कृष्ण की जय घोष करते हैं । फिर कृष्ण राधा गोपियो का नृत्य होता है तत्पश्चात् व दावन का महिमा वर्णन और अंत म आरती होती है । इसमे राधा और कृष्ण की स्तुति पायी जाती है । इस समय सभी प्रेक्षक खडे हो जाते हैं ।

रास लीला के रगमच का डा ओझा और श्री कृष्णदास ने जो वर्णन किया है वह आधुनिक युगीन प्रतीत होता है । इसके पूर्व इस रगमच का क्या स्वरूप था, इसका चित्रण कहीं नहीं मिलता । डा चंद्र प्रकाशसिंह ने विक्रम की 16 17

---

1 हिंदी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृष्ठ 112

2 हिंदी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा, पृष्ठ 89, 90, 91
हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्ण दास पृष्ठ 162

वीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन के साथ साथ इसकी अवस्थिति सिद्ध की है।[1] यही समय जात्रा, कीर्तनिया, अंकिया, गम्भीरा, रामनाट्टम्, कथकली, ललित ('हरि-कथा' दशावतार'), राम लीला रास लीला आदि की धार्मिक नाट्य परम्परा का विकास माना जाता है। इसके साथ साथ लौकिक शाखा (तमाशा, भवाइ माच, स्वांग, भगति आदि अथवा लोकधर्मी नामों से प्रचलित नौटंकी) का भी विस्तार हुआ। हिन्दी रंगमंच ने रासलीला रामलीला के प्रदर्शन तत्व में से अपने लिए बहुत कुछ सामग्री ली है और इसके दार्शनिक पक्ष को छोड़ दिया है। अतः लीला रंगमंच का अध्ययन हमारे लिए अत्यंत उपादेय है। यहां रासलीला के वर्तमान रंगमंच का विवरण प्रस्तुत्य है—

'रासलीला का रंगमंच जटिलता से रहित और सदा होता है और बहुत थोड़े पात्रों से सब काम निकाल लिया जाता है। रास के उद्‌भव और विकास का क्षेत्र व्रज भूमि विशेषतया वृन्दावन माना जाता है वहां रास देव मंदिरों में होता है,—वैसे यह अन्य सार्वजनिक स्थानों और भावुक जनों के घरों में भी होता है। मन्दिर के प्रांगण में अथवा रास के लिए निर्धारित स्थान में प्रायः बीस-बाइस फीट लम्बी और अठ रह बीस फीट चौड़ी जगह रास के लिए छोड़ दी जाती है जिसके तीनों ओर दर्शकों के बैठने के लिए स्थान रहता है। इसे रासमण्डल कहते हैं। उसी के एक सिरे पर बीच में एक चौकी रख उस पर सिंहासन स्थापित किया जाता है। सिंहासन के आगे एक नीले हरे अथवा अन्य किसी रंग का परदा डाल दिया जाता है जो छल्लों के सहारे एक रस्सी से बंधा रहता है जिससे वह यथाव-सर सरकाया जा सके। कभी कभी ऐसा नहीं भी होता और उसके स्थान पर दो व्यक्ति एक चादर तानकर खड़े हो जाते हैं। सिंहासन के ठीक सामने रास मण्डल के दूसरे छोर पर समाजी बैठते हैं। सबसे पहले समाजी मंगलाचरण प्रारम्भ करते हैं। मंगलाचरण में सूर का 'चरणकमल बन्दौं हरि राई' और इसी प्रकार के संतों के पद अथवा श्रीमद्‌भागवत् आदि के श्लोकों का गायन होता है—जिस प्रकार आज कुछ नाटकों में उसके पूर्व रंग का लोप हो गया है, उसी प्रकार रास लीला में भी इस विधि का पूर्ण रूप से पालन प्रायः कहीं नहीं दिखाई देता। इधर मंगलाचरण चलता है और उधर परदे के पीछे सखी स्वरूप गोप वधुएं—आकर सिंहासन के नीचे चौकी पर अपना स्थान ग्रहण कर लेती हैं। तत् पश्चात राधा

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, पृष्ठ 27

श्रौर कृष्ण पधारते हैं श्रौर सिंहासन पर समासीन होते हैं। सखी स्वरूप राधा श्रौर कृष्ण के पधारने की सूचना 'जय हो' 'बलिहारी' आदि घोषों से देते हैं। परदा हटा दिया जाता है श्रौर बंसी बजाते हुए कृष्ण तथा राधा की संयुक्त छवि का एक मनोहर झांकी दर्शकों को दिखता है। फिर आरती होती है। सखियों में से एक आरती करती है श्रौर अन्य 'आरती कुंजबिहारी' की आदि पद गाती हुई नृत्य करती है। आरती के बाद परदा फिर डाल दिया जाता है। सखियां परदे के पीछे कृष्ण के पास जाती हैं श्रौर ताम्बूल आदि से सत्कृत होकर लौट आती हैं। परदा फिर हटा लिया जाता है श्रौर पुनः एकासन समासीन राधाकृष्ण की झांकी दिखाई देती है। अब सब सखियाँ उन्हें नृत्य एवं गीत के अनेक प्रकार के उपक्रमों द्वारा प्रसन्न करने का प्रयास करती हैं। अपना नृत्य गीत समाप्त करके वे यथा स्थान रास मंडल में बैठ जाती हैं। अब उनमें से एक उठकर—कुंजों की शोभा का प्रभाव शाली वर्णन करती हुई एक संस्कृत के श्लोक में उनसे रासोत्सव में पधारने की प्रार्थना करती हैं। जिसे अन्य सब सखी स्वरूप भी एक स्वर से दोहराते हैं। 'प्रार्थिनी सखी' इसका आशय ब्रज भाषा गद्य में भी निवेदन करती है। यह प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण राधा से रासोत्सव में पधारने का सविनय अनुरोध करते हैं। राधा की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर युगल स्वरूप रास मंडल में उतरते हैं। श्री कृष्ण वंशी के कुछ स्वर छेड़कर रास के आरम्भ का संकेत करते हैं। यह संकेत पाकर समाजी' आली एरी नाचत मदन गोपाल—श्रौर नाचत लाल बिहारी नचावत सब नर नारी' आदि पद गाते हुए, साथ में नृत्य के कुछ बोल निकालना आरम्भ करते हैं। रास मंडल में एक श्रोर अकेले श्री कृष्ण खड़े होते हैं श्रौर दूसरी श्रोर श्री राधा को बीच में करके 'सखियाँ'। श्री कृष्ण वंशीवादन करते हुए नृत्य की चारियाँ बाँधते श्रौर कुछ गतियां लेते हैं श्रौर दूसरी सखियां भी नृत्य आरम्भ करती हैं। नृत्य करते हुए सब मिलकर मण्डल का निर्माण करते हैं श्रौर फिर मंडल प्रयोग के अनेक प्रकार प्रदर्शित करते हैं। नृत्य करते करते कुछ समय बाद श्रान्त होकर राधा बैठ जाती है श्रौर उनकी सखियां भी यथास्थान खड़ी हो जाती है। इस बीच श्री कृष्ण राधा का (नृत्य के कारण विपर्यस्त) श्रृंगार संवारते हैं। श्रम परिहार हो जाने पर राधा पुनः रास मंडल में प्रवेश करती हैं श्रौर नृत्य प्रारम्भ होता है। यह समस्त व्यापार समाजियों के वादन गायन का अनुगत रहता है। इस नृत्य के बीच कुछ सरल संगीतात्मक उक्ति प्रत्युक्तियाँ भी चलती हैं। यह रास लगभग एक घंटे तक चलता है। इसकी समाप्ति पर स्वरूप' लीला की तयारी के लिए नेपथ्य में चले जाते हैं श्रौर सिंहा

सन के सामने परदा डाल दिया जाता है। यह 'नित्य रास' कहा जाता है। पहले यह रास सम्पन्न हो जाता है, तब अन्य लीलाएं होती हैं। कभी कभी 'महारास' भी होता है। महारास का अनुष्ठान श्री कृष्ण और गोपियों के स्वरूप मिल कर पूर्ण करते हैं। इसका आयोजन कई कई रास मडलिया मिलकर करती है। तभी कृष्ण के अनेक स्वरूपों और बहुसख्यक गोपियों की आवश्यकता की पूर्ति हो पाती है। जिस दिन रास होता है उस दिन अन्य कोई लीला नहीं होती, पर नित्य रास के बाद कोई न कोई लीला अवश्य होती है। लीला मे भगवान कृष्ण के जीवन के किसी एक प्रसग का अभिनय किया जाता है। प्राय विशुद्ध ब्रज लीलाओं का ही अभिनय होता है। लीला कोई हो उसके अभिनय म लगभग तीन घ टे का समय लगता है और अधिक से अधिक छ सात अभिनेताओं से काम निकाल लिया जाता है। प्राय चार 'सखा स्वरूप' रहते हैं। कुछ रास मण्डलियों मे तो तीन ही रूप मिलते हैं। स्वामिनी स्वरूप (राधा) तथा प्रभु स्वरूप (कृष्ण) के लिए दो प्र य अभिनेता अपेक्षित होते हैं। इसी प्रकार एक दो 'सखा स्वरूपों' की भी आवश्यकता पड़ती है। प्राय देखा गया है कि यदि किसी लीला मे अधिक पात्रों की आवश्यकता होती है, तो सखियों का अभिनय करने वाले ही यथावकाश दुहरी-तिहरी भूमिका सम्हाल लते हैं। यदि न द यशोदा जैसे कुछ वयोवृद्ध स्वरूपों की आवश्यकता हुई तो सामाजिकों में स कुछ लोग काम चला लेत हैं।

पात्रों के अलग अलग वेश होते हैं। कृष्ण, कोई रगवाला एक लम्बा वस्त्र पहनते हैं जिसे 'कटि काछनी' कहा जाता है और उस पर पटुका बधा रहता है। पीठ पर लम्बी कृत्रिम चोटी लहराती रहती है, मस्तक पर मयूर पख और ब्रज रत्न कानों म कु डल तथा नाक में बुलाक रहती है। वे हर समय हाथ मे बशी धारण किए रहते हैं और कभी कटि-काछनी के स्थान पर बगल बदी भी पहनते हैं। राधा के वेश मे साडी और उत्तरीय के अतिरिक्त नाक म बुलाक और मस्तक पर चन्द्रिका तथा बदनी रहती है। गोपियों का वेश सामान्यत राधा के समान ही रहता है, केवल उनके मस्तक पर चन्द्रिका और बन्दनी नहीं रहती, उनके स्थान पर भृकुटि रहती है। नन्द एक वृद्ध के वेश मे रहते हैं। उनके श्वेत श्मश्रु विशेषत दर्शनीय हैं। यशोदा एक सतन प्रवगु ठनवती वृद्धा के वेश में दिखाई जाती हैं। यदि यशोदा का काम थोड़ा ही हो तो सामाजिकों म से कोई व्यक्ति सिर से पैर तक एक ओढनी ओढ़ कर मुह छिपा कर बैठ जाता है और उनका अभिनय कर लेता है। बलराम बगलबदी और पीताम्बर पहनते हैं और मस्तक पर मुकुट धारण

करते हैं। 'सखा स्वरूप' (गोप बालक) केवल धोती पहनते हैं। उनके शरीर खुले रहते हैं। गले में गुंजमाला, कंधे पर कम्बल और हाथ में लकुट रहता है। मनसुख रास-लीला का विदूषक है, अतएव कुछ रास मण्डलिया उसकी वेश रचना बहुत विकृत कर देती है। उसके मस्तक पर फटी पुरानी पगडी और किनारी का चीरा रहता है, लम्बी मूंछे और शरीर मे अनेक कृत्रिम भंगिमाएं रहती हैं। संस्कृत नाटकों के विदूषक की तरह वह बडा पेटू होता है। कुछ रास मण्डलिया उसका वेश बल राम जैसा भी रखती हैं। वह प्रायः अपने पेटूपन के प्रदर्शन के द्वारा ही हास्य की सृष्टि करता है। रास लीला के अन्तर्गत हास्य-विधान भी बडी सरल युक्ति से किया जाता है। कृष्ण की नटवर मुद्रा के प्रदर्शन के लिए कुछ लोग उनके पीछे रंगो के कपडे तानकर खडे हो जाते हैं। झरोखे का दृश्य दिखाने के लिए दो आदमी एक वस्त्र तान लेते हैं और गोपियां उनके पीछे से झांकती हैं। कुंज का दृश्य दिखाने के लिये रंगमंच सिंहासन के पीछे एक शाखा लगाकर बहुत से रंग बिरंग वस्त्र तान दिए जाते हैं। यद्यपि इनका कथानक छोटा होता है पर उनमे कार्य की तीन अवस्थाएं प्रारम्भ प्राप्त्याशा और फलागम स्पष्ट रूप से मिलती हैं।

इन लीलाओं के कथानक की सरसता बहुत कुछ उनके कथोपकथनों पर अवलम्बित है। ये गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। इन कथानकों मे श्रीमद्भागवत् के श्लोकों तथा भक्त कवियों के पदों का भी प्रयोग होता है पर पात्र प्रायः उनका आशय ब्रजभाषा मे समझा देते हैं। कभी कभी लीला के उपोद्घात अथवा उपसंहार में किसी रूप से लीला का आध्यात्मिक रहस्य एवं कृष्ण भक्ति का महत्व कोई न कोई पात्र अवश्य समझा देता है। लीला कभी दुखान्त नहीं होती, और न अंत मे कोई जवनिका ही गिरती है। अत्यन्त करुण एवं साध्यन्त वियोग प्रधान उद्धव-लीला (भ्रमर गीत प्रसंग) भी अंत मे संयोगात्मक दिखाई जाती है। अखिल ब्रह्माण्ड मे ब्रज के समान कुछ नहीं, बकुंठ भी उसकी समता नहीं कर सकता भागवती भक्ति की पराकाष्ठा का ही दूसरा नाम ब्रज है इसलिए प्रत्येक ब्रज लीला के अंत मे राधा और कृष्ण की एकासन समासीन झांकी अवश्य दिखाई जाती है। प्रत्येक लीला इस परमोच्च दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अधिष्ठान को दृढ़ता से पकडे रहती है। लोकदृष्टि से इन रास लीलाओं का सबसे बडा प्रकर्ष यह है कि इन्होने ऊंची से ऊंची और सूक्ष्म से सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियो को जीवन का अभिन्न अंग बना दिया है। यह (नौका) लीला भक्तों को बहुत प्रिय है और कभी कभी इसका अभिनय अनेक

नौकाओ द्वारा मच बनाकर यमुना में विशेष समारोह के साथ किया जाता है।

ब्रज के ब्राह्मण बालक जिनके यज्ञोपवीतादि संस्कार हो गए है राधा कृष्ण और गोपियो का स्वरूप धारण करते हैं। प्रत्येक प्रेक्षक से यह आशा की जाती है कि वह लीलानुकरण करने वाले स्वरूपों मे भगवद् बुद्धि रखेगा। स्वरूपों के सामने कोई उच्चासन पर अथवा अविनीत मुद्रा में नही बैठ सकता। लीला के समय रास मण्डल के बीच मे निकलना तक अनुचित माना गया है। सब साधारण के सामने अंतरंग रहस्यमयी निकुंज लीला का अभिनय वर्जित है और रात्रि मे बारह बजे के पश्चात् लीला होना मर्यादा विरूद्ध है। सब तो नही पर कुछ राम मण्डलियां आज तक इन नियमों का निष्ठा से पालन करती चली आई हैं।[1]

डा सिंह ने यह मान्यता प्रस्तुत की है कि स्वामी हरिदास आदि भक्तो के आविर्भाव तक रासलीला की परम्परा सगीत नृत्य प्रधान थी। श्री नारायण भट्ट के द्वारा ब्रज में रासलीला का अभिनय परम्परा की प्रादुर्भाव हुआ है।[2] श्री कृष्ण दास ने लिखा है कि इस रास लीला नाटक की परम्परा नन्ददास से आरम्भ होती है। गोवर्धनलीला की रचना कर उन्होने रासलीला नाटक में एक सर्वथा नयी प्रणाली का सूत्रपात किया।'[3] स्पष्ट है कि प्रवर्तक के सम्बन्ध मे बहुत मतमतान्तर है। इसके लिए ब्रजलोक सस्कृति पृ 147 डा श्याम परमार कृत लोक धर्मी नाट्य परम्परा पृ 19 एडिस्ट्रिक्ट मेमायर आफ मथुरा पृ 89 सन् 1800 तथा डा सिंह कृत हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा पठनीय हैं।

रास लीला की अभिनय परम्परा, महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास से ही प्रवर्तित प्रतीत होती है। इस प्रकार 16 वी शताब्दी मे ब्रज मे रासलीला की अभिनयात्मक परम्परा का प्रादुर्भाव सिद्ध हो जाता है। इस परम्परा ने खेमकरण उदयकरण और विक्रम तक बहुत उन्नति की और बाद में इसमें गजल, रेखता आदि भद्दे गाने गाए जाने लगे इसलिए इसमे विकृतियां आने लगीं[4] और परम्परा का ह्रास होने लगा। उदयकरण के पुत्र विक्रम के लगभग सौ वर्ष बाद

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा डा चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 51-73

2 वही पृ 88-107

3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 173

4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 108

(अर्थात् 18 वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में) श्यामदास बिहारीलाल तथा उनके पुत्र राधा कृष्णजी ने लीला की अभिनय-परम्परा का पुनरुद्धार किया। केशवदेव जी की मण्डली विदेश भी गई। सम्भवतः केशवदेव जी की मण्डली का ही प्रभाव धीरे-धीरे विदेशों में फैला है जिसके परिणाम स्वरूप बीसवीं सदी में उसके स्वरूप प्रकट हो रहे हैं।

विदेशों में प्राप्त रास-लीला का अपना पृथक् स्वरूप है[1] प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि 1965 में श्री प्रभुपाद ए. सी. भक्ति वेदान्त अमरिका गए और 1966 में न्यूयार्क में अन्तर्राष्ट्रीय श्री कृष्ण भावनामृत प्रसार संघ (इन्टर-नेशनल सोसायटी फार कृष्ण कांशसनेस) की स्थापना की। अक्टूबर 1970 में आयोजित बम्बई की चौपाटी पर साधु समाज के समक्ष अधिवेशन में स्वामी प्रभुपाद अपने कृष्ण भक्ति विदेशी जत्थे को साथ लाए। गेरुआ वस्त्र धारण किए वे परदेशी गोरे हिन्दू साधु साध्वियाँ "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" गाते हुए राहगीरों के मन मोह रहे थे। आज अमरिका में "हरे कृष्ण हरे राम" धर्मेत् शब्द बन गये हैं। वहां तथा अन्य यूरोपीय देशों में इनका "हरे कृष्ण आंदोलन" बड़े जोरों पर है। यहाँ तक कि वर्जीनिया में 400 बीघा जमीन में नए वृन्दावन बसाया गया है, जहां पर कृष्ण भक्तों का जमघट लगा है। श्री कृष्ण भावनामृत प्रसार संघ के भक्तगण 'रथयात्रा' तथा 'कृष्ण जन्माष्टमी' आदि समा-रोह धूम-धाम से मनाते हैं। शरीर पर चंदन के बारह चिह्न लगाना, कंठी और जनेऊ पहनना, हाथ में जप माला रखना और सदैव प्रभु का नाम लेते रहना इनकी विशेषता है। कीर्तन के साथ-साथ चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर आधारित घट-नाओं के अभिनय प्रदर्शन (स्ट्रीट प्ले) भी होते हैं। अपने ग्रंथ में वे कृष्ण के स्वरूप की झलक पाते हैं। गुरू का जूठन विदेशी साधु-साध्वियां बड़ी श्रद्धा से खाते हैं। उन्होंने अपने अंग्रेजी नाम बदलकर हंसदूत, हेमवती, गिरिराज, दीनानाथ दास, मालती, सरस्वती, श्याम सुन्दरदास आदि नाम रख लिए हैं। कृष्ण को वे विश्वमानव मानते हैं। उनकी हर शंका का समाधान कृष्ण हैं और हर प्रश्न का उत्तर भी कृष्ण।

इस समय अन्तर्राष्ट्रीय श्री कृष्ण भावनामृत प्रसार संघ के कई केन्द्र और

---

1 अमरिका के ग्वाल बाल बम्बई में, धर्मयुग (22 नवम्बर 1970) श्री सतीश वर्मा पृ. 16

मंदिर हैं। अकेले अमेरिका में 28 केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कोलम्बिया क्यूबक आंटारियो और इंगलैण्ड (लन्दन) में भी केन्द्र स्थापित हो गए हैं—रूस में भी इसकी एक शाखा का प्रयत्न जारी है। प्रभुपाद अपने को महाप्रभु चैतन्य की परम्परा से जोड़ते हैं। इनसे पहले श्री वैष्णव भी विदेशों में इसी कृष्ण लीला की परम्परा को विकसित करने जा चुके हैं। यह सब उनके प्रयत्नों का ही फल है वरना पांच वर्ष में 1965 से 1970 तक) 28 केन्द्रों की स्थापना कर देना और देश विदेश में इसे फैलाने का काम करना एक व्यक्ति के लिए दुष्कर कार्य है। अवश्य ही आज की श्री कृष्णलीला का विदेशी विकास दीर्घकाल की साधना-शक्ति से सम्बद्ध है।

उक्त विवरण द्वारा रास लीला के रंगमंच का पुराना रूप हमें स्पष्ट भान नहीं हो पाता है। श्री बलवंत गार्गी का विवरण भी समकालीन ही है। उनके अनुसार"—मथुरा और वृन्दावन में कृष्ण लीला पूरे एक महीने तक खेली जाती है। इस अवसर पर यात्रियों का भारी जमाव होता है। खेलने वाले कलाकार यात्रियों की भीड़ को नाटक से सम्बंधित सब स्थानों पर लेकर जाते हैं कभी वन में, कभी पुराने मन्दिर में कभी यमुना के तट पर, कभी किसी ध्वस्त ऐतिहासिक महल में यहां वे कृष्ण के जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाएं खेलते हैं। दर्शक यात्रा करते हैं पाठ सुनते हैं और नाटक देखते हैं अल्पवयस्क बालक (जो कृष्ण, राधा और गोपियां बनते हैं) लीला के प्रारम्भ होने के एक माह पूर्व आकर मन्दिर में ठहरते हैं ताकि वे पवित्र हो जायें। यहां के उद्यान सरोवर मन्दिर, गलियां और चौगान एक महान् रंगमंच के भिन्न भिन्न कार्यस्थलों में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कृष्ण और कालिया नाग नाचने और गोपियों के वस्त्र चुराने वाले दृश्य किसी नदी या सरोवर के किनारे पर प्रस्तुत किए जाते हैं। रासलीला जो कृष्ण के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन करती है, समतल भूमि पर दर्शकों के बीच या ऊंचे चबूतरे पर खेली जाती है। पहले यह भी कृष्ण लीला की भांति जलूस और झांकियों के रूप में होती थी। धीरे धीरे यह जुलूस-भाकी की रीति समाप्त हो गयी और आज यह उत्तर प्रदेश में किसी भी अन्य लोकनाट्य की भांति खेली जाती है। इसका प्रारम्भ नृत्त रास से होता है। ढाई घण्टे के पूरे खेल में पौन घण्टा नृत्य में लगता है। कृष्ण राधा गोपियां मंच पर आकर रेशमी आसनों पर बैठ जाते हैं। मण्डली का स्वामी जो मुख्य कथाकार और गायक भी होता है आगे आकर राधा और कृष्ण के चरण छूता है और

स्तुतिगान करता है। साज बजाने वाले एक एक करके कृष्ण की महिमा के गीत गाते हैं। इसके बाद स्वामी उस दिन खेले जाने वाले प्रसंग की संक्षिप्त व्याख्या करता है। गोपियाँ राधा कृष्ण की आरती उतारती है और गीत गाती हैं।

आठ से चौदह वर्ष तक की आयु का एक कोमल बालक कृष्ण बनता है। जब उसकी रेख फूट आती है तब वह कृष्ण बनने योग्य नहीं रहता। बचपन से ही यह बालक कृष्ण लीला की कथाओं में पलता है और उस धार्मिक वातावरण में रखा जाता है। रास आरम्भ होने के कई घण्टे पूर्व बनाव श्रृंगार होने लगता है। उसका मुख फूलों के रस और चन्दन की बिन्दियों से सजाया जाता है। आँखें काजल युक्त चमत्कार और बड़ी बनाई जाती हैं। मालाएं पीताम्बर सिर पर मोर मुकुट और हाथ में बाँसुरी होती है। इस प्रकार वह पूरा कृष्ण बन जाता है। दर्शक आते हैं और उसके चरण स्पर्श कर अपने अपने स्थान पर बैठ जाते है। बातचीत करते हुए गाते हुए नाचते हुए या पीछे हटकर आसन पर बैठते वह बालक अपने आपको कृष्ण का रूप ही समझता है। विश्राम के समय जब वह अपने साथियों सहित दूसरे कमरे में दूधपीने और फल खाने जाता है तो भी वह कृष्ण ही बना रहता है। भोजन के समय भी, भगवान् का रूप समझ कर प्रत्येक वस्तु पहले उसको भेंट की जाती है। उसको भोग लगाकर प्रसाद बाँटा जाता है। लोग प्रसाद को श्रद्धापूर्वक घर ले जाते हैं। नाटक को वास्तविक जानकर बालक कृष्ण का अभिनय बड़ी निष्ठा से करता है। वह कृष्ण की बाल-लीला को लयात्मक सुन्दरता से अभिनीत करता है। गोकुल से मथुरा जाते समय की घटना में वह इतनी करुणा भर देता है कि दर्शकों की आँखों में आँसू आ जाते हैं। मार्मिक दृश्य दिखलाने के लिए या पात्रों के मंच पर प्रवेश और प्रस्थान करने के दृश्यों को प्रभावशाली बनाने के लिए एक छोटा सा रंगीन परदा प्रयोग में लाया जाता है। यह परदा आठ फुट लम्बा और पाँच फुट चौड़ा होता है, साजिन्दों के पास ही पड़ा रहता है। आवश्यकता पड़ने पर दो आदमी तुरन्त इसको तान कर खड़े हो जाते हैं। दर्शक रासलीला की रीतियों, परम्पराओं वृत्तियों और अवस्थाओं से परिचित होते है। उन्हें उनके गीतों संवादों और कार्यों का भी पूरा ज्ञान होता है। कई बार मंच के समीप बैठे दर्शकों में से ही दो व्यक्ति परदा पकड़ कर खड़े हो जाते हैं। परदे को एक ओर झटक दिया जाता है और पीछे से कोई नाट-कीयतापूर्ण सुन्दर दृश्य दीख पड़ता है। सारे पात्र कुछ समय के लिए जड़ हो जाते हैं। ऐसे दृश्यों को जड़ कहते हैं। रासलीला में झाँकियाँ प्रकाश स्तम्भ की भाँति होती है और ये गत और आगत कार्यों पर प्रकाश डालती हैं। दर्शक भक्ति-

भाव म पग, साथ-साथ गाने लगने हैं। दर्शकों का इस प्रकार गाना और खेल में सम्मिलित होना रास लीला का विशेष गुण है। दर्शकों म थाली फेरने का यही समय होता है। लोग जब भगवान् कृष्ण को साक्षात् देखते हैं तो यथा शक्ति थाली मे पसे चढ़ाते हैं। इसी समय खेलने वालों को साँस लेने का अवसर मिल जाता है। व दम लेकर अगला दृश्य प्रस्तुत करते हैं।" [1]

रासलीला के विकास की दृष्टि से श्री कृष्णदास उड़िया नाटक और रंगमंच' [2] नामक अध्याय स्मरणीय है। उसमें उड़िया नाटक रंग सभा के अ तगत एक प्रकरण आया है—वह यह कि कंस ने कृष्ण को मारने की अनेक योजनाएं रची पर सभी निष्फल सिद्ध हुई। उसने एक रंगशाला का निर्माण करवाया और छल से उसमे कृष्ण को भी बुलवाया। कि तु उसकी योजना सफल नही हुई और उसके ही जीवन का अंत हो गया। इस नाटक मे हाथियों घोड़ो और राक्षसों की भयानक आकृतियो को बनावटी चेहरों द्वारा प्रदर्शित किया गया था। नि संदेह इन आकृतियो की सजावट स भयानक वातावरण की सष्टि की गई है।"

उक्त कथन क अनुसार यह मानना पड़ेगा कि मच पर वातावरण उपस्थित करने के लिए उसी प्रकार की मंच सज्जा का आरम्भ कृष्ण के हा युग में हो गया था। उस समय मंच निर्माण विधि का पूर्णरूपेण ज्ञान भी था। कंस, कृष्ण को अपने द्वारा (अनात) नाट्य प्रदर्शन दिखान के बहाने बुलाकर मार डालना चाहता था। इस तथ्य द्वारा तत्कालीन नाट्य प्रस्तुतीकरण का संकेत मिल जाता है। मुखौटो का प्रयोग भी उन दिनो होना प्रतीत होता है। इस नाटक के आधार पर तो यह भी कहा जा सकता है कि श्री कृष्ण कंस क द्वारा निर्मित रंगशाला म एक आमन्त्रित (प्रार्थित) दर्शक के रूप में आए थे। संभव है कृष्ण की स्मृति को ताजा रखने क लिए उन्हें देवता रूप म स्वीकार कर लोक-नत्यों मे यत्र तत्र प्रदर्शन किए जाने की प्रथा का प्रचलन हो गया। धीरे धीरे अभिनय परम्परा का ज्ञान विस्तृत होता रहा। ईसा की प्रथम शताब्दी के भरत कृत नाट्यशास्त्र वात्स्यायन के काम सूत्र (तृतीय शताब्दी अभिनव भारती क रचयिता अभिनव गुप्त (9 वी शताब्दी) चौथी शता॰ी में प्रणीत माने जान वाल हरिवंश पुराण भास के बाल चरित्र, रासक और हल्लीसक (मण्डलाकार नत्य) में नाट्यकला का प्रयोग मिलता है।

---

1 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृष्ठ 108 से 111

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृष्ठ 413

'भाव प्रकाश' में 'नाट्य रासक' शब्द का प्रयोग हुआ[1] और किसी राजा के चरित्र को अपने नृत्य द्वारा प्रदर्शित करने की बात लिखी गई है किन्तु प्रदर्शन तत्वों का उल्लेख यहाँ भी नहीं किया गया है।

अपभ्रंश काल में पुनः प्रदर्शन संवाद अथवा कथोपकथन तत्व के दर्शन होते हैं, किन्तु इतने से ही इस काल के नाटकों को दृश्यत्व की संज्ञा नहीं दी जा सकती। लीला नाटकों की अभिनयात्मक परम्परा के दर्शन 16 वीं शताब्दी की भाषा में होते हैं। इस काल में विद्वानों के मतानुसार प्रदर्शन के बहुत सारे तत्व हमारे सामने आये जैसे सूत्रधार का रूप, मंच निर्माण, मंचसज्जा, रंगनेपथ्य विधि, दशरूपक अभिनय काल, सङ्गीत नृत्य गीत का मिश्रित स्वरूप, खुला मंच, पात्र, यवनिका, अवतरण, मंगलाचरण, दुहरी भूमिका, वेशभूषा, प्रतीकात्मकता, स्त्रियों की भूमिका पुरुषों द्वारा, प्रवेश प्रस्थान, नर्तकियों के लिए परदे का प्रयोग आदि। इन रूपकों में अपने इष्टदेव कृष्ण के प्रति इतनी श्रद्धा दिखाई देती है कि वे अभिनेता कृष्ण के पैर भी छूते हैं। ऐसे अंध विश्वास बहुतर छोड़ा नहीं जा सकता। इस नवीन प्रदर्शन युग में दर्शकों का अभिनेता नायकों के साथ गाना-नाचना, भावी प्रदर्शन और उसमें दर्शकों का योग (परदा परदा पर खड़े हो जाना, अनुशासन में रहना) आदि विचारणीय रूप हैं। मुखौटों, पखवाल्यों, ध्वनि प्रसारण यन्त्रों और प्रकाश प्रभाव आदि का चित्रण इनमें नहीं मिलता। इनका प्रयोग लीला मंचों पर प्राय होता भी नहीं फिर भी इनका प्रस्तुतीकरण अत्यन्त प्रभावी और सहृदय श्लाघ्य कहा जाएगा।

रामलीला

श्री राम के जीवनादर्श को जिन भिन्न भिन्न नाट्य रूपों में प्रदर्शित किया जाता है उसे परम्परागत रूपों में रामलीला कहते हैं। नररूपधारी अवतारी राम ने इस धरा पर आकर जो शील शक्ति एवं सौन्दर्य समन्वित कार्य किए उनके नाट्य रूपों को लीला नाम से सम्बोधित किया जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ईश्वर के अंशावतार हैं जो मनुष्य रूप में इस संसार में अवतरित हुए और जिन्होंने अनेक नर लीलाओं का प्रदर्शन किया

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुंवर चन्द्र प्रकाशसिंह पृष्ठ 114

तथ्य यह है कि जब तक सर्वोच्च सर्वव्यापी ब्रह्म अपने को उस सामान्य मानव रूप में परिवर्तित नहीं कर लेता तब तक कोई भी लीला नहीं हो सकती। [1] प्रत्येक काल के कवियों की यही धारणा रही है कि राम ईश्वर के अवतार हैं। अस्तु उन्होंने जो कुछ भी इस संसार में किया उसी की अनुकृति (अभिनय) आज तक प्रचलित है। यह अभिनय परम्परा कब से चली आ रही है? इसका उत्तर इन पंक्तियों में प्राप्य है—रामलीला राम की ही भक्ति के समान व्यापक तथा प्राचीन है। हिमालय के गर्भ से गंगा के उद्गम का समय बता सकना जितना कठिन है, उतना ही कठिन रामलीला के प्राकट्य का काल बताना है। राम के भक्त तो रामलीला की इस परम्परा को अनादि कहते हैं। उनके अनुसार हिंदू धर्म के अनादि राम की अनादि लीला की यह अभिनयात्मक परम्परा भी अनादि ही है। रामायण की प्रचलित उक्ति है—

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥' [2]

इन भावुक भक्तों के बीच एक किंवदन्ती प्रचलित है कि त्रेतायुग में जब राम पिता की आज्ञा से वन को चले गए, तो अयोध्यावासी परिजन पुरजन और प्रजाजनों ने राम के बाल चरित्र का अनुकरण और अभिनय करते हुए चौदह वर्ष के विषम-वियोग के दिन काटे थे। इन लोगों का ऐसा विश्वास है कि यहीं से रामलीला की अभिनयात्मक परम्परा का आविर्भाव और विकास हुआ है। ऐसी ही कथा श्रीमद्भागवत और रास पंचाध्यायी में है। गोपियों के बीच विहार करते हुए श्री कृष्ण जब अन्तर्धान हो गए तो वे उनके दुःसह वियोग का ताप शमन करने के लिए उनके बाल और कैशोर चरित्रों का परस्पर अनुकरण करने लगीं। [3] हरिवंश पुराण में रामजन्म और 'रम्भाभिसार' नाटकों के अभिनय के उल्लेख हैं। भास के 'प्रतिमा नाटक' भवभूति का 'उत्तर रामचरितम्' मुरारि का 'अनर्घ राघव' राज-

1 रामलीला नगरों की सांस्कृतिक गति की प्रतीक साप्ताहिक हिन्दुस्तान श्यामाराम मुखर्जी 23 4 67 पृ० 8

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० कुंवरचन्द्र प्रकाशसिंह पृष्ठ 136

3 वही पृ 136

शेखर का 'बाल रामायण', जयदेव का प्रसन्न राघव, मधुसूदन मिश्र का हनुमन्नाटक' आदि इसी परम्परा के उदाहरण हैं। 13 वी शती के सुभट कवि ने 'दूतांगद' नामक एक छाया नाटक लिखा जिसका अभिनय 1243 ई मे अणहिलपट्टन के चालुक्य राजा त्रिभुवनपाल की सभा में हुआ था। इसमें रामदूत बन कर अगद के लका जाने की कथा है [1] नेपाल प्रेक्षाग्रहों मे भी 14 वीं शताब्दी में राम सबधी नाटकों का प्रस्तुतीकरण होता था।[2] रामलीला के सूत्र प्राचीन लोक नाटको में भी विद्यमान हैं। बगाल क जात्रा' नाटक (10वी शताब्दी) कर्नाटक के दशावतार' (15वी शताब्दी), आसाम के अकिया नाटक (16 वी शताब्दी) और नेपाल मथिल के कीतनिया नाटक (16 वी शताब्दी) में इस अभिनय के स्रोत ढूढे जा सकते हैं। सोलहवी शताब्दी के भक्ति आदोलन से राम भक्ति के दृश्य या मचन व्यापार को विशेष प्रश्रय मिला है। गोस्वामी जी इसके विशिष्ट प्रयोक्ता रहे हैं। उनका 'रामचरितमानस स्वय ही एक नाटकीय महाकाव्य है। इसकी सवाद योजना और वस्तु परिकल्पना के आधार पर मानस के नाटकीय तत्वो की पर्याप्त पुष्टि की गई है। आज भी अवध की राम लीला में मानस ही आधार मूल कृति रूप म प्रयुक्त होती है। उसकी चौपाईयाँ सवाद रूप मे गाई जाती हैं। बीच बीच में अन्य कवियों की विरचित घनाक्षरिया जोड दी जाती हैं और उन्हें गद्य-वार्तिको द्वारा सन्दर्भ युक्त बना लिया जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि तुलसीदास ने रामकथा के आधार पर 'राम-चरितमानस की रचना कर कृष्ण लीला के समानान्तर काशी में रामलीला का प्रयोग प्रारम्भ किया। लका (अस्सी के निकट) भी रामलीला की सस्थापना स्वय तुलसीदास ने की थी।[3] डा परमार ने तुलसी को रामलीला का सस्थापक माना है।[4] यह भी जनश्रुति है कि अस्सीघाट (काशी) की रामलीला तुलसीदास के शिष्य मेघा भगत ने उनके मरणोपरान्त प्रारम्भ की थी।

---

1 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु च द्र प्रकाशसिंह, पृ 134-135

2 वही पृ 135

3 उत्तरी भारत का जनप्रिय लोक नाटय रामलीला—रगयोग अक्टूबर—दिसम्बर 70 डा प्रनात पृ 18

4 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार पृ 23

कुछ विद्वानों का मत है कि काशी में रामलीला का प्रवर्तन मेघा भगत ने किया था और इनके बाद महा कवि तुलसीदास ने उसे मूर्त रूप देकर प्रतिष्ठित किया था। श्री रुद्र काशिकेय ने लिखा है—'काशी में कोई मेघा भगत थे, जो रामलीला कराते थे और उसे ही आधार बनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामलीला को विशद रूप प्रदान किया और साथ ही कृष्ण लीला की भी व्यवस्था की। तुलसीदासजी के दो सौ वर्षों बाद हिन्दी नाटकों और नाटककारों की परम्परा का अखण्ड सूत्रपात हुआ—बाबू गोपालचन्द्र द्वारा।[1] डा सिंह ने भी 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित 'राम चरित मानस' की भूमिका का सदर्भ देते हुए[2] मेघा भगत को ही काशी में रामलीला का प्रवर्तक स्वीकार किया है और तुलसीदास जी को रामलीला के नवीन स्वरूप का निर्माता। तुलसी के पूर्व लोक मंच पर राम की जीवन लीलाएं भले ही प्रारम्भ हो गई हों, पर इतना स्पष्ट है कि उत्तर भारत में सम्प्रति जो रामलीला का प्रारूप है वह तुलसीकृत अथवा मानस पर आधृत है। अत तुलसीदास जी को रामलीला का प्रवर्तक तथा रामकृष्ण लीला का पुरस्कर्ता मानना अधिक संगत है।

रामलीला का प्रचलन तुलसी के परवर्ती युग में भी दिखाई देता है। कुछ कृतियां उल्लेखनीय हैं—(1) प्राण चन्द्र कृत "रामायण महानाटक" 1610 ई इसकी कथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित है किन्तु नाट्य रचना मानस के संवादों (दोहे चौपाइयों) के क्रम में की गयी है। इसमें बारह मासा का भी प्रयोग है। (2) हृदयराम कृत हनुमन्नाटक यह लोक नाट्य शैली 'स्वांग' या नौटंकी के रूप में लिखा गया है। इसमें पर्याप्त रंग संकेत भी हैं।

इनके अतिरिक्त उपयुक्त 'रामकरुणाकर नाटक (1840 ई)' राम गोपाल विद्यान्तकृत 'रामाभिषेक नाटक (1877 ई)' देवकी नदन त्रिपाठी लिखित सीता हरण' (1974 ई) 'राम-लीला' (1879 ई) दामोदर शास्त्री विरचित 'रामलीला नाटक' (1882 87 ई) तथा महादेव कृत 'सुलोचना सती' (1885 ई) आदि कृतियां भी उल्लेखनीय हैं। इन सबकी अपेक्षा प शीतला प्रसाद त्रिपाठी का

---

1 नटराज नगर के नट नाटक और कलाकार, नागरी पत्रिका, वर्ष 1, अंक 6 7 रुद्र काशिकेय पृष्ठ 89

2 दे हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, पृष्ठ 140

जानकी मगल नाटक (जो 3 अप्रैल 1868 को काशी मे अभिनीत हुआ) रगमचीय दृष्टि से प्रथम 'राम लीला' और प्रथम हिंदी मचित नाटक के रूप में स्वीकार्य है।

रामलीला का रगमच

तुलसी की जिस रामलीला की अभिनय परम्परा का वर्णन किया गया है उसके स्वरूप के विवरण प्राय अप्राप्त हैं। हां उनके परवर्ती काल में रामलीला के जिस स्वरूप का विकास हुआ है उसका यहां विवेचन करणीय है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा जिस रामलीला का प्रवर्तन हुआ, उसके समय एव स्थानगत दो रूप इगित किए गए हैं (1) भिन्न भिन्न स्थानों पर लीला प्रदर्शन (2) निश्चित स्थान पर लीला प्रदर्शन। डा सिंह की धारणा है कि यह प्रदर्शन भिन्न भिन्न स्थानों मे प्रस्तुत किए जाने वाले दृश्य के अनुरूप अधिक से अधिक यथार्थवादी देशकाल और परिवेश के अनुसार किया जाता है। गोस्वामीजी ने काशी म जो रामलीला चलाई थी उसका रूप यही रहा।[1] आज भी इसका स्वरूप वसा ही है। काशी के प्रसिद्ध स्थान रामनगर के एक निश्चित परिवेश मे 5 कोस की दूरी मे अलग अलग स्थान बने हुए हैं, जिनके नाम लीलाओं के आधार पर रखे गए हैं जसे अयोध्या सम्बधी जितनी भी लीलाओं का प्रदर्शन होता है उसे अयोध्या नाम दे दिया गया है। यह रामनगर किले के बिल्कुल निकट ही स्थित है।

इसी प्रकार अन्य स्थानों के नाम हैं 'जनकपुर, चित्रकूट सगरा, कबध मुनि आश्रम, भरद्वाज आश्रम पचवटी जटायु आश्रम शबरी आश्रम, पपासर ऋष्य मूक पर्वत समुद्र, सुवेलगिरी और लका। ऐसी जन श्रुति है कि जो रामलीला आज काशी (रामनगर) में होती है वह बहुत पहले रामनगर के पास बरईपुर गाव म होती थी और 'विट्ठल साहब' नाम के व्यक्ति उसका सयोजन करते थे। यह भी किंवदती है कि तत्कालीन रामनगर गढ की रानी की आज्ञा से ये लीलाए बाद में रामनगर में की जाने लगी इसलिए सबसे पहले उन्होंने अपने किले के पास ही अयोध्या बन वाई। तभी से इस स्थान का नाम अयोध्या पडा जो इस पुस्तक के चित्रों मे 'अयोध्या रगमच' नाम से दिया गया है। बतलाया जाता है कि इसका प्रदर्शन बाल काण्ड से आरम्भ होता है। इससे पहले की कथा रामनगर में रामलीला पक्की

1 हिंदी नाटय साहित्य और रगमच की मीमांसा डा कु चन्द्र प्रकाशसिंह, प 138

नामक स्थान पर कथा के रूप में पढ़ कर समाप्त कर दी जाती है। आश्विन माह में लीला की 'थापना (स्थापना) होती है। अनन्त चतुर्दशी को रावण जन्म होता है और एक ही दिन में उसे बड़ा बतलाकर उसकी उत्पात पूर्ण घटनाओं का भी प्रदर्शन हो जाता है। वितरित सूचना-पत्रों के अनुसार भाद्रशुक्ल 13 14 को सायं 5 बजे से रात्रि 9 बजे तक लीला प्रारम्भ हो जाती है। राम बाग के क्षीर सागर में जो झांकी दिखाई जाती है, उसमें वास्तविक नाव होती है, किन्तु वह पानी पर तैरती हुई दिखलायी नहीं देती, केवल झांकी के रूप में साक्षात दिखाई देती है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि काशीराज को भारत सरकार की ओर से प्रतिवर्ष 80 हजार रूपये मिलते हैं, जिनमें वे रामलीला का संयोजन करते हैं। राम लीला के अभिनय प्रदर्शन हेतु बनारस (वाराणसी) से कुछ अभिनेता बुलाए जाते हैं जिन्हें रामनगर में व्यास जाति के उच्च ब्राह्मण रामलीला का पूर्वाभ्यास करवाते हैं। लगभग 100 अभिनेता यहां प्रति वर्ष आते हैं और महाराज के सामने प्रस्तुत होते हैं। महाराज उनमें से उच्चस्वर अथवा कंठध्वनि (आवाज) और अभिनय के आधार पर पात्र चयन करते हैं क्योंकि यह सारा खेल कंठ पर ही आधारित है। इन प्रदर्शनों में ध्वनि प्रसारण यन्त्रों (माइक) का प्रयोग नहीं होता, लाखों की संख्या में (आस पास के स्थान यथा समस्तीपुर, जनकपुर आदि के) दर्शक एकत्रित होते हैं अतः अभिनेता के लिए सबसे बड़ी चुनाव-शर्त यही होती है कि सबसे पीछे खड़े हुए दर्शक को भी उसकी आवाज सुनाई दे। दूसरी बात यह होती है कि उन्हें अपने पाठ कंठस्थ होने चाहिए।[1] काशी नरेश का यह चुनाव कर्त्तव्य इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाता। वे कभी कभी पूर्वाभ्यास भी देखते हैं। नाटक प्रारम्भ होने से कुछ देर पहले महाराजा, उनका परिवार, मित्र-मण्डल और विशिष्ट अतिथि वर्ग हाथियों पर आते हैं। सजे हुए हाथियों की पंक्ति दर्शकों के पीछे अर्द्ध वृत्ताकार खड़ी हो जाती है। संस्कृत शास्त्रों के विद्वान तथा प्राचीन नृत्य और नाट्य विद्या में निपुण महाराजा इस रामलीला के निर्माता माने जाते हैं। वे हाथी पर बैठे ध्यान पूर्वक सब कुछ देखते हैं। यदि कोई कलाकार मंच पर प्रवेश करने या प्रस्थान के समय किसी प्रकार की त्रुटि करता है संवाद अथवा अभिनय में प्रमाद करता है

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा सिंह पृ 141

तो वे उस कलाकार को दूसरे दिन इस भूल की चेतावनी देते हैं।[1]

'रामलीला के प्रारम्भ में पूर्वरंग की एक निश्चित विधि का पालन किया जाता है, जिसमें स्थान-भेद से प्रकार भेद भी देखा जाता है। कहीं यह लीला भगवान के मुकुटों के पूजन से आरम्भ होती है और कहीं इसी प्रकार के अन्य कर्मकाण्डों से।[2] पूर्वरंग का विस्तृत विवेचन आनन्द रामायण में उपलब्ध है। गढ़वाली रामलीला में भी पूर्वरंग की व्यवस्था बनलायी जाती है। डा० अज्ञात के अनुसार लीला अभिनय करने के पूर्व भगवान राम को प्रसाद चढ़ाया जाता है और हनुमान जी का ध्वज फहराया जाता है जिससे लीला निर्विघ्न रूप से समाप्त हो।[3] इस दृष्टि से राम लीला ने भी भरत द्वारा वर्णित इन्द्रध्वज 'जर्जर' की परम्परा को अपना लिया है। बसवारी (अवधी) राम लीला में भी पूर्वरंग परम्परा के संकेत प्राप्त हैं। वहां नाट्यारम्भ के पूर्व 'सरूपों' की आरती उतारी जाती है और सहृदय सामाजिकों द्वारा राम लक्ष्मण के प्रति पूजा एवं नैवेद्य समर्पित किया जाता है।[4] पूर्वरंग का यह परम्परागत रूप कहीं परदे के अन्दर ही होता है और कहीं परदा खोलकर दर्शकों के समक्ष। पूर्वरंग की यह प्रथा भरत कालीन है, अस्तु इसी से लीला का आरम्भ किया जाता है। पूर्वरंग मांगलिकता का सूचक है और यह शुद्ध भारतीय प्रवृत्ति है, अतः यहां कथाकार के गीत से लीला का आरम्भ मानना[5] उचित प्रतीत नहीं होता, हाँ यह मानना ठीक है कि वह बीच बीच में गाकर आने वाली घटनाएं प्रस्तुत करता है, कार्य को आगे बढ़ाता है, तथा भावनाओं में तीव्रता उत्पन्न करता है। जब कथाकार चौपाइयां गा चुकता है तो कलाकार उनको स्थानीय भाषा के सम्वादों में दोहराते और अभिनय करते हैं।[6] लीलाभिनय

---

1 रंगमंच बलवंत गार्गी पृ० 107

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० सिंह पृ० 141

3 उत्तरी भारत का जनप्रिय लोक नाट्य—रामलीला रंगयोग (जनवरी, मार्च 1971 डा० अज्ञात पृ० 17

4 बसवारी लोक नाट्य और लोकमंच रंगयोग वर्ष 2 अंक 3 डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित

5 रंगमंच बलवंत गार्गी पृ० 108

6 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृ० 107

करने वाले पात्र 'रामचरित मानस' की चौपाइयों को कंठस्थ कर लेते हैं। कथोपकथनों में प्राय उन्हीं का प्रयोग करते हैं। यदि उन्हें चौपाइयां कंठस्थ नहीं होतीं, तो उन्हें सूत्रधार अथवा व्यास पढ़ते हैं और अभिनेतागण उनका भाव अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं।[1] रामायण की कथा कहने वाले 'पाठक' और धारक दो भागों में बट जाते हैं। एक दल रामायण से पाठ करता है और दूसरा उसकी व्याख्या। कभी कभी इस व्यवस्था में अभिनय भी सम्मिलित हो जाता है। इन 'संवादों' में रंगनिर्देश सूत्रधार के संकेत, आगमन और प्रस्थान की सूचनाएं, कथानक की गति आदि का ब्यौरा प्राय नहीं मिलता।[2]

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि संस्कृत-कालीन सूत्रधार के 14 15 वीं शताब्दी में दो रूप दिखाई देने लगे। एक कथाकार, जो कथा को आगे बढ़ाता है आने वाली घटनाओं की सूचना देता है और दूसरा उसका नवीन रूप। सूत्रधार कलाकार के पाठ को बोलते हैं और कभी कभी अभिनय भी करते हैं। मंच पर बैठे मूनिवत् कलाकार[3] अपनी स्थानीय भाषा में उसे दोहराते हैं। यह एक प्रकार का मूकाभिनय (Dumb Show) है।[4] संस्कृत 'नाट्य' का सूत्रधार अभिनेताओं को संवाद कंठस्थ न होने पर कथावाचक कहलाता था। आज वही जब परदे के पीछे (अथवा नेपथ्य से) अभिनेताओं द्वारा संवादों की पंक्तियाँ (कैच वर्ड्स) भूल जाने पर, उन्हें स्मृति दिलाने लगा तो प्रोम्प्टर (पार्श्ववाचक) कहलाने लगा। डा परमार ने उसे 'पाठक' शब्द से विभूषित किया है, क्योंकि वह सब के सामने पाठ करता है। यदि सूत्रकार का विधिवत् अध्ययन किया जाये तो पता लगेगा कि वह विद्वान व्यक्ति हुआ करता था। उसे कथा (अथ से इति तक) का सम्पूर्ण ज्ञान रहता था। ठीक यही स्थिति हमारे आज के हिन्दी नाटकों के पार्श्व वाचक की है। वह सब से अच्छा कलाकार, सम्पूर्ण नाट्याभिनय का ज्ञाता और नाटक का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है, अत जो नाट्यकला में पारंगत होता

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 141-142

2. लोक नाट्य परम्परा डा श्याम परमार पृ 23

3 रंगमंच श्री बलवंत गार्गी पृ 107

4 इण्डियन थियेटर ई पी हारविज पृ 158

है उसे ही पार्श्ववाचक की भूमिका दी जाती है। अतएव वह कथा के कलाकारों से अभिन्न नहीं माना जा सकता।

रामलीला में वेष भूषा और रंग सज्जा के लिए विशेष परिश्रम नहीं किया जाता। काजल चन्दन, सुरमा, गेरू, राख, खड़िया, रोली, मुर्दासिंघी, पाउडर, बने हुए चेहरे मोहरे, पन्नियों के चमकाये हुए मुकुट, लकड़ी के अस्त्र शस्त्र दाढ़ी मूच्छें गेरुआं कपड़े, कमण्डल हनुमानजी और बन्दरों के लिए लचलची पूछे राम लक्ष्मण के लिए जरी के अंगोछे धनुष बाण आदि सामग्री पर्याप्त है।[1] इसी प्रकार नवीनतम् वेष भूषा के लिए श्री बलवन्त गार्गी का कथन उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि खेलने वालों के मुकुट मुखौटे और श्रृंगार सुनहरे और रंगीन होते हैं। उनके मखमल और रेशम के सलमे सितारे वाले वस्त्र झिल मिल झिल मिल करते हैं।[2] इस नवीन युग में भी इन राम लीलाओं की विशेषता यह रही है कि इनकी परम्परागत वेश भूषा और रंग लेपन विधि में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है, आज भी मुर्दा सिंघी पाउडर, काजल आदि का प्रयोग ज्यों का त्यों चल रहा है किन्तु साथ साथ कुछ नवीन प्रयोग भी किए जा रहे हैं। जैसे दाढ़ी मूछे जो पहले सचमुच के बालों से बनाकर लगाई जाती थी वे आज काली सफेद ऊन एवं नारियल के घास से बनाई जाती हैं। प्रस्तुतीकरण के प्रयोगो के अन्तर्गत ध्वनि प्रयोग चमत्कार प्रयोग प्रकाश प्रयोग और दोहरी भूमिका के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। 15-16 वी शताब्दी में लीलाभिनय की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए श्री बलवंत गार्गी ने लिखा है कि कथाकार तुलसी की चौपाइयों को गाकर प्रस्तुत करता था तथा मैं ढोल और बांसुरियों आदि के वाद्य दकार उसकी संगत भी करते थे।[3]

इस युग में बिजली की सहायता से होने वाली बहुस्तरीय दृश्य योजना (जिसे कमल हेमचन्द्र गुप्त ने पेनोसोनिक थियेटर प्रणाली नाम दिया है) भी भारतीय लोक नाटकों के प्रयोग में लाई जा रही है। दिल्ली कलकत्ता में इस प्रकार के अनेक प्रयोग हुए हैं। निःसंदेह इस युग में रामलीला महोत्सव विजयादशमी के दिन जो प्रकाश प्रयोग किए जा रहे हैं, वे सब चमत्कार प्रयोग ही हैं। विजया

---

1 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार पृ 27
2 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी प 105
3 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी प 107

दशमी के उत्सव पर रामलीला के मैदान में रावण, कुंभकरण और मेघनाद के ऊंचे ऊंचे पुतले खड़े होते हैं। ये पुतले मुंह खोलते हैं, सिर हिलाते हैं और बड़ी-बड़ी आँखें घुमाते हैं।[1]

भारत के सभी स्थानों में विजयादशमी पर इस प्रकार के प्रयोग नहीं होते। मेड़ता शहर में मटकों से एक रावण तैयार किया जाता है। उसे मारने के लिए चारभुजा के मन्दिर से रामचन्द्रजी की प्रतिमा रेवाड़ी में बिठाकर गाते बजाते ले जायी जाती है। उनके आगे कुछ बाल अभिनेता लक्ष्मण हनुमान एवं बन्दरों के वेश में मूल आकृति प्रकृति का अभिनय करते चलते हैं। रावण के पास पहुंच कर राम शर सधान करते हैं फिर राजकीय आयुक्त अधिकारी की आज्ञा से रावण पर गोली का प्रहार किया जाता है। गोली से रावण के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। यहां के लोग अपनी इस पुरानी परम्परा को दूषित नहीं करना चाहते, इसीलिए आज भी यत - बत्तियों का प्रयोग होता है। अभिप्राय यह है कि छोटे शहरों और गावों में रामलीला उत्सव का अभी तक वही रूप प्रचलित है, जो पिछली कई शताब्दियों से चला आ रहा है।

रामलीला के दर्शक दो प्रकार के होते हैं। दोनों ही भक्तों की श्रेणियों में आते हैं। इनमें से एक वे दर्शक हैं जो मानस मंच पर ध्यानस्थ प्राय आंखें मूंदे राम की लीलावली का अन्त दर्शन करते रहते हैं। दूसरे प्रकार के वे दर्शक हैं जो बाह्य जगत में मंच पर प्रदर्शित राम लीलाओं में अपने आपको डुबो देते हैं। जब दृश्य बदलता है तो दर्शक आगे भाग कर अपना अपना स्थान पुन ग्रहण कर लेते हैं। राम के अयोध्या से वन जाते समय सरयू नदी पार करने का दृश्य बहुत करूण हैं। रामनगर के इस सात मील के घेरे में एक छोटी सी नदी बहती है, जिसे दर्शक वास्तविक सरयू मान लेते हैं। केवट राम, लक्ष्मण और सीता को नौका में बिठा कर नदी पार करता है। नौका को दूर जाते देखकर किनारे पर खड़े दर्शक भावुकता में उसी प्रकार रो उठते हैं जैसे राम के बनवास के समय अयोध्यावासी रोये थे।[2] इसे 'साधारणीकरण' की अवस्था कह सकते हैं। रामलीला में दर्शक को

---

1 रंगमंच, श्री बलवंत गार्गी पृ 106

2 रंगमंच, श्री बलवन्त गार्गी पृ 107

द्रवीभूत करने की अपार क्षमता है, फिर भी कुछ विद्वानों ने न जाने क्या सोच कर रामलीला को नीरस गतानुगतिकता,[1] बताने का प्रयास किया है।

रामलीला का एक निश्चित (स्थायी) मच भी होता है। वहां पर दर्शक को एक ही स्थान पर बठे रहना पडता हैं उसे उठ-उठ कर दूसरे स्थान पर लीला देखने जाने का कष्ट नहीं करना पडता। इस प्रकार के रामलीला मच मालवा, अवध और बुन्देल खण्ड में पाए जाते हैं। आजकल एक तीसरे प्रकार का मच भी बहु प्रचलित हो रहा है और वह है भ्रमणशील रामलीला मच। यह पूववर्णित रामलीला मच की विकसित परम्परा का ही अग है। इसमें भी दो प्रकार के मच बनते हैं। एक साधारण मच' जो तख्तों, बल्लियों, बासों और परदों को तानकर बनाया जाता है। यह किसी बडे शहर में जाता है तो शहर के प्रत्येक मोहल्ले म 10-10 15 15 दिन का पडाव डाल कर रामलीला का प्रदशन करता है। दूसरा वह मच जो शहरों मे घूमता है और बिना पर्दे का एक बहुत बडा मच बना कर केवल प्रकाश प्रयोग से सम्पूर्ण रामायण का प्रदशन करता है इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह सिने तकनीक के ध्वनिपक्ष एव प्रकाश प्रभाव पर आधारित होता है। प्रकाश गोल घेरे में जिस स्थान पर पडता है उस स्थान पर राम लीला का कोई दृश्य दिखाया जाता है, अन्य खाली पडे मच के स्थान पर अधकार का साम्राज्य रहता है। उसी मे आगे प्रदर्शित होने वाल दृश्य की तयारी होती रहती है। उन्हे पूर्व निश्चित समय के अन्दर यह सब कुछ करना पडता है। ऐसे मच पर परदा का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता केवल बिजली के प्रकाश से ही परदे का काम लिया जाता है। आजकल इस प्रयोग को हिन्दी रगकर्मियो ने अपना रखा है। यह रामलीला सम्प्रति विदेशों (अमेरिका फ्रास और लदन आदि) मे भी विकसित हो रही है।[2] यह प्रकाश एव ध्वनि का मिला जुला प्रयोग है।

---

1 रग दशन नेमिचन्द्र जैन प 85

2 लोकधर्मी नाटय परम्परा डॉ श्याम परमार पृ 4

—सोवियत रगमच पर रामायण (धमयुग 28 माच 1971) गेन्नादीपेचनिकोव, पृ 11

—रामनाम की लूट है लन्दन की सडकों पर। (धमयुग 27 जुलाई 1969) डा उर्मिला जन, पृ 21

—उत्तरी भारत का जनप्रिय लोकनाटय रामलीला रगयोग (अक्टोबर, दिसम्बर 70) डा 'अज्ञात' पृ 19 20

'अयोध्या में साठ सत्तर फुट ऊंचा रावण का महल बनाया जाता है, उस पर हनुमान रस्सी के सहारे उड़कर अग्निदाह करते हैं।[1] इसी प्रकार आगरा लखनऊ मथुरा, दिल्ली आदि स्थानों में रामलीला अलग अलग ढंग से आयोजित की जाती है। कोटा (राजस्थान) में हड़ौती भाषा की रामायण पर आधारित रामलीला मंच भी वर्णनीय है। राजस्थान में रामलीला का मंच चारों ओर से खुला रहता है। मंच पर एक चंदोवा तान दिया जाता है। उसके पास ही एक कुंज रहता है, जहां नक्कारे बैठा दिए जाते हैं। सब 'स्वरूप' आकर उस मंच पर पहुंचे व यथास्थान बैठ जाते हैं और लीला के अनुक्रम से वाद्य के साथ-साथ संगीतात्मक संवाद चलते रहते हैं। गद्य का प्रयोग प्राय नहीं किया जाता है। यहां भगवान राम के जीवन की लीलाएं होती हैं। सीता वनवास की घटना से सम्बंधित 'उत्तर रामचरित' का समावेश उसमें नहीं किया जाता। बीच बीच में अहिल्या उद्धार, गंगावतरण आदि की प्रासंगिक कथाएं भी आती हैं जिनका सांगोपांग अभिनय किया जाता है।

अभिनेताओं के आहार्य में भी औचित्य का पूरा ध्यान रखा जाता है। ऋषियों और साधुओं की वेशभूषा में पीताम्बर रहता है, ऊपर गेरूआ लम्बा अंगरखा, सफेद दाढ़ी सफेद मूंछ और तिलक माला तथा जनेऊ आदि भी रहते हैं। स्त्रियों की वेशभूषा साधारण स्त्री की जैसी रहती है। उसकी एक विशेषता यह है कि राक्षसियों की वेशभूषा भी शिष्ट महिलाओं जैसी रखी जाती है, केवल ताड़का और शूर्पनखा अपवाद रूप में भयंकर चेहरे लगाती हैं। समुद्र ब्राह्मण के रूप में प्रकट होता है। जटायु जामवन्त आदि के जाति सूचक चेहरे लगाए जाते हैं। राम और उनके सहचर पीतांबर पहनते हैं मुकुट, कुंडल, किरीट धारण करते हैं तथा धनुष बाण निषंग आदि से सुसज्जित रहते हैं। वानर वर्ग लाल जांघिया पहनता है कुर्ता भी लाल ही रहता है। उनका मुंह कुंकुम से लाल कर दिया जाता है।

दृश्य विधान के लिए बड़ी सुलभ प्रविधि का अवलंबन लिया जाता है। दो आदमी एक सफेद चादर को पकड़कर खड़े हो जाते हैं और उससे गंगा का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। सेतु का दृश्य भी इसी प्रकार दिखाया जाता है। लंका

1 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार पृ 27

रामलीला के अखाड़े से अलग बनाई जाती है। चारों किनारों पर ऊंचे लट्ठे खड़े कर दिए जाते हैं। ऊपर तख्त बिछा कर उन पर रावण का दरबार लगाया जाता है मचान जैसा। लंका के चार तरफ द्वार रहते हैं जिन पर घड़े रहते हैं और उन्हीं को फोड़ कर हनुमान द्वार भंग की सूचना देते हैं।

रामलीला प्रारंभ होने के पूर्व नांदी की भांति विभिन्न देवताओं की स्तुति द्वारा मंगलाचरण किया जाता है। सबसे पहले आयोजन की निर्विघ्न समाप्ति के लिए प्राण-प्रतिष्ठा की पूजा होती है और पहले दिन अखाड़े के एक किनारे पर ध्वजा की स्थापना की जाती है जो भरत के 'नाट्यशास्त्र' की स्थापना का अवशेष प्रतीत होती है।[1]

उक्त रंगमंचीय नाट्य कृतियों में रंग संकेत बहुत कम उपलब्ध हैं। रामलीला क्षेत्र में इस प्रकार की कृतियां बहुत कम हैं। तुलसी के परवर्ती (भारतेन्दु युग के) पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अपने 'रामलीला नाटक' के उपोद्घात में कुछ रंग संकेत दिए हैं।[2] जिनमें (1) अभिनेताओं के चुनाव (2) दृश्ययोजना क्षीर सागर के लिए श्वेत वस्त्र का प्रयोग, धुआं उड़ते दिखाना, खपच्चियों के ढांचे का उठना, ताड़ के कृत्रिम 7 पेड़ जो एक तार से बँधे हों कट जाना, कागज का जटायु, कृत्रिम समुद्र आदि (3) मंच से जा मारीच के बैठने की चारपाई, रावण की कुर्सी (4) वेश विन्यास आदि वर्णित हैं। इस परम्परा का प्रभाव आधुनिक नाट्य कृतियों पर भी पड़ा है।

डा० राम कुमार वर्मा ने अपने एक लेख 'रामलीला का अभिनय कैसे होना चाहिए'[3] में इस युग की राम लीला के स्वरूप का चित्रण किया है। इससे प्रतीत होता है कि राम लीला नाटक का कहीं भी एक रूप स्थिर नहीं है। राम लीला के दर्शकों के मध्य पान, बीड़ी, मूंगफली आदि बेचने वालों की आवाज नहीं होनी चाहिए। डा० वर्मा के अनुसार स्त्री पात्रों की कमी से मुखौटों के प्रयोग का

---

1. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा० कुं० चन्द्र प्रकाशसिंह, पृ० 151 152
2. *हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा*, डा० सिंह पृ० 146 147
3. रामलीला का अभिनय कैसे होना चाहिए, धर्मयुग (11 अक्तूबर 1970) डा० राम कुमार वर्मा पृ० 6

बहिष्कार होना चाहिए, लेखक के मतानुसार नगर मे राम लीला की झाँकियाँ इस प्रकार से सजाई जायें, कि उन्हें देखने पर राम कथा का क्रमिक विकास दर्शकों के सामने स्पष्ट हो जाये। यह कथन सर्वथा उपयुक्त है। राम कथा के नाट्य प्रदर्शन में एकरूपता होनी ही चाहिए।

पात्रों के साथ राम लीला के दर्शकों की गहन सहानुभूति स्थापित हो जाती है। इसीलिए लीला प्रदर्शन में दर्शकों की अपार भीड होती है। ऐसा इसलिए होता है कि राम हमारे इष्ट हैं। विदेशों में इसका प्रचलन बढ रहा है। रूस में पिछले दस वर्षों से रामायण का मंचीकरण होता आ रहा है। इसे देखने के लिए वहाँ के थियेटर (हाल) खचाखच भर जाते हैं। वहाँ के दर्शकों की भावनाएं पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं। ये दर्शक जब सीता को रावण की बातें सुन कर लक्ष्मण द्वारा खिंची रेखा को पार करते देखते हैं तो 'मत जाओ, मत जाओ' की पुकार करने लगते हैं।[1] पात्रों के प्रति दर्शकों की इस सहानुभूति का वर्णन डा॰ राम विलास शर्मा ने भी किया है।[2] स्पष्ट है कि राम लीला की नाट्य परम्परा बडी समृद्ध है। भारतीय जन मानस का इसमे रागात्मक सम्बन्ध है। इसके अनेक रूपान्तर और प्रकारान्तर हैं, फिर भी इन सब शैलियों में एक सूत्रता तथा भक्ति भाव प्राप्य है। राम की यह लीला वास्तव मे रामाश्रयी जनता में प्राण दर्पित है। इसका आज महानगरीय रूप भी प्राप्य है और लोक सांस्कृतिक स्वरूप भी। निश्चयत यह हिन्दी नाट्य का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रदेय है।

नरसिंह लीला एव प्रह्लाद लीला

यह नरसिंहावतार से सम्बन्धित लीला है। इसका वर्णन और विवरण अधिक नहीं मिलता। हाँ, नृसिंह चतुर्दशी के दिन भारत के धार्मिक स्थानों एव मंदिरों में इसका मंचन उत्सव सम्पन्न होता है। राजस्थान में मेहता सिटी, अजमेर, पुष्कर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि इस लीला के मुख्य केन्द्र हैं। राजस्थान में मन्दिरों के पुजारी (शाकद्वीपीय ब्राह्मण अथवा सेवक इस लीला का मंचन करते

---

1 सोवियत रंगमंच मर रामायण धर्मयुग (12-3 71) गन्नादी पेचनिकोव पृ 11

2 धर्मयुग (25 10-70 पृ 10 11, 15 और 1 11 70 पृ 39 40, 41, 55)

हैं। यह लीला बहुत पुरानी है। अनंत काल से इसका एक ही स्वरूप रहा है। सबसे पहले इसका मंच तैयार होता है बड़े–बड़े तख्ते दो खम्भों के बीच खुले वातावरण में जमा दिए जाते हैं। तख्तों पर मोटी दरी बिछा दी जाती है। ये दो खम्भे (जो पखवाइयों का काम करते हैं) मोटे रस्सों में बांध दिए जाते हैं ताकि दर्शकों की भीड़ अभिनेता हिरण्यकश्यप को न छू सके और न ही हिरण्यकश्यप के लम्बे लम्बे हाथ दर्शकों पर वार कर सकें। दर्शकों की भीड़ दोपहर के 2 बजे से जुटनी प्रारंभ हो जाती है और सायंकाल लीला प्रारम्भ होते होते संख्या हजारों तक पहुँच जाती है।

मेड़ता के चारभुजानाथ के मंदिर के बड़े रसोड़े (एक स्थान) में बालरूप प्रहलाद जी का शृंगार किया जाता है। बाहर दर्शकगण चारभुजानाथ की जय जयकार से सम्पूर्ण वातावरण को गुंजा देते हैं। इसी समय सभी अभिनेता (प्रहलाद और नरसिंह) अपने अपने स्थानों पर तैयारी करनी शुरू करते हैं। हिरण्यकश्यप धोती पर अंगरखा पहने एवं कटि में कटार बांध एक विशाल भयानक मिट्टी का चेहरा धारण किये हुए रसोड़े के पीछे, से हू हू की हुँकार के साथ प्रहलाद बता तेरा राम कहां है? जोर जोर से बोलता हुआ दर्शकों की भीड़ को चीर कर मंच पर जा खड़ा होता है। दर्शक उसके पीछे पीछे भागते हैं। इसके बाद वह अपनी मूँछों पर हाथ फेरने का अभिनय करता है और आंगिक मुद्राओं से जनता से पूछता है बताओ राम कहां है। इधर कुछ भक्त छोटे से प्रहलाद (जिसके शरीर पर केवल एक धोती पुष्पों की माला और हाथ में रुद्राक्ष की माला होती है) को अपनी गोद में उठाकर भगवान की जय जयकार करते हुए 'झालर' (एक प्रकार का वाद्ययंत्र जो आरती के समय बजाया जाता जाता है इसे टिंडोरा भी कह सकते हैं) बजाते हुए हिरण्यकश्यप के सामने लाते हैं। तब प्रहलाद कहता है एक घडी की जेज[3] है आयो म्हारो राम है। यह सुनते ही हिरण्यकश्यप सींकियों का एक लम्बा लट्ठा उस पर मारता है। लोग उसे बचाने का यत्न करते हैं।

नरसिंह रूप धारण करने वाला अभिनेता चारभुजानाथ के मंदिर में स्नानादि करके (पवित्र होकर) वेशभूषा धारण करता है। उसके पायजामा और चोला केसरिया रंग से रंगे होते हैं जिस पर काली काली बिन्दियां लगी रहती हैं। उसकी उंगलियों में लम्बे लम्बे बनावटी नाखून लगाए जाते हैं। सबसे बड़ी और

3 'जेज' प्रान्तीय शब्द है जिसका अर्थ है देर'। यह अवधि का सूचक है।

निश्चित बात यह है कि जो सिंह का चेहरा उस अभिनेता को धारण कराया जाता है वह चारभुजा के चरणों में पड़े चांदी के थाल में रखा रहता है। उसे पहनाने के पहिले उस अभिनेता को चारों ओर से रस्सी से बांध देते हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि यह न किया जावे तो उसके अन्दर बढ़ी हुई ईश्वरीय शक्ति को काबू में करना बहुत कठिन हो जाता है। रस्सियों से बांधे जाने के पश्चात वह व्यक्ति चारभुजा नाथ के चरणों का स्पर्श करता है। उस भारी भरकम चेहरे को धारण करते ही वह अपने आप को सिंह समझ बैठता है। इसमें इतना जोश आ जाता है कि वह चांदी के थाल पर प्रहार करता है। फलत उसमें खड्डे पड़ जाते हैं। दूसरे पुजारी उसे फिर पकड़ कर बाहर लाने का प्रयत्न करते हैं। उनमें से भी कुछ व्यक्तियों को चोटें खानी पड़ती हैं। गोधूलि वेला में उस मंदिर के मध्य सीढ़ियों के नीचे एक मजबूत पाट पर लाकर खड़ा कर देते हैं। हिरण्यकश्यप नरसिंह रूप को देखकर भागने की कोशिश करता है, किन्तु नृसिंह भगवान उसे पकड़ कर अपने जंघों पर रखकर तीखे नाखूनों से उसका उदर फाड़ देते हैं और प्रह्लाद को अपनी कृत्रिम जिह्वा से मुखौटे को झुका झुका कर प्यार करते हैं। तदन्तर नरसिंह भगवान की पूजा होती है और जय जयकार के साथ यह लीला समाप्त हो जाती है। बीकानेर में नृसिंह जी के मन्दिर के सामने नरसिंह चौक तथा डागों के चौक में लगभग इसी प्रकार की लीला का मंचन होता है। हां वेशभूषा में कुछ अन्तर अवश्य है। बीकानेर का हिरण्यकश्यप पूरे समय आवरण में प्रस्तुत किया जाता है और प्रह्लाद को पीले रेशमी कपड़े पहनाकर राज कुमार बनाया जाता है। मेड़ता का हिरण्यकश्यप एक जगह आकर खड़ा हो जाता है। उसके हाथ में पूंछ की बड़ी छड़ी होती है। बीकानेर का हिरण्यकश्यप दर्शकों में भागदौड़ करता हुआ एक मोटे कोड़े से उस पाट पर प्रहार करता है जहां पर प्रह्लाद बैठा हुआ होता है। बीकानेर के नरसिंह कागज के बने लम्बे चौड़े पीले खम्भे में से (जिसे 'कोठी' कहते हैं) प्रकट होते हैं। बीकानेर के दर्शकों में एक विशेषता यह होती है कि इनमें से कुछ के हाथों में पंखियां होती हैं जो हिरणा-कृष्णा गोविन्दा प्रह्लाद भज करते करते हिरण्यकश्यप के पीछे पीछे भगते हैं और उसके मुखौटे के पीछे बंधे काले कपड़े को उठा उठा कर गर्दन पर हवा करते रहते हैं।

जोधपुर में गनश्यामजी के मन्दिर में यह लीला बीच के चौक में आयोजित होती है। हिरण्यकश्यप मध्याह्न दो बजे से वेषभूषा धारण कर आस पास के 34 मोहल्लों में हुं हुं पुकार के साथ घूम घूम कर राम को मारने के लिए ढूंढता फिरता

है। फिर मंदिर मे पाट पर आकर प्रहलाद से पूछता है कि बता तेरा राम कहा है? नसिंह का अभिनय करने वाला व्यक्ति गनश्याम जी के मंदिर से वेषभूषा पहन कर पास मे स्थित नसिंह जी के मंदिर मे जाकर चेहरा (मुखौटा) लेकर आता है फिर उस गनश्याम जी के चरणों में रख कर स्तुति करके पहनता है फिर खिड़की मे लगे पर्दे को फाड़कर बाहर आता है।

इस लीला मंच का इतिहास प्राय उपलब्ध नही है। डा दशरथ ओझा ने 'हिन्दी नाटक उद्भव और विकास' के पृष्ठ 103 पर नरसिंह लीला, राना देवी सिंह पृष्ठ 22 छन्द 136, टीकमगढ़ के पुस्तकालय मे हस्तलिखित प्रति का सदर्भ देकर तथा श्री कृष्णदास ने भी अपनी पुस्तक 'हमारी नाट्य परम्परा' के पृष्ठ 176 पर नरसिंह लीला का नामांकन करके छोड़ दिया है इतना सकेत अवश्य मिलता है कि नरसिंह लीला का काल ध्रुवदास और चाचा वृन्दावन दास का मध्यवर्ती काल है। इनके मतानुसार इसका प्रचलन 16वी शताब्दी मे हुआ।

श्री एस गोपालो[1] के कथनानुसार तमिलनाड के तंजोर प्रान्त मे जो नरसिंह लीला होती है वह दो सौ वर्ष पुरानी है इसे उन्होंने 'टोटल थियेटर' के नाम से सम्बोधित किया है। इसमें भाग लेने वाले कलाकार प्राय ब्राह्मण ही हैं। इस भागवत की पौराणिक परम्परा बतलाया गया है। प्रहलाद चरित्रम् के अनुसार इसमें भगवान विष्णु के नरसिंह अवतार द्वारा हिरण्यकश्यप को मारने की कथा का वर्णन है। इसके नाट्य प्रदर्शन रात भर होते हैं और कई दिनो तक चलते हैं। इसका आरंभ सूत्रधार (Jester) द्वारा प्रस्तुत परिचय से होता है। इस प्रथा को मद्रासी भाषा में प्रथाप्रवेसम कहते हैं। दल के एक पात्र का इसी प्रकार आरम्भ में परिचय कराया जाता है। मुख्य पात्र परिचय के साथ तुमुल ध्वनि उत्पन्न की जाती है। एक परदे को दो छोरों से दो स्त्री पात्रों के द्वारा पकड़ लिया जाता है जिनके पर और सिर स्थित रहते हैं मवाओच्चारण के समय रागो पर नृत्य गत पर विश्वास का प्रतिबंध नही रहता। वे संवाद बोलते समय स्वत अनापूर्वक खड़े होकर बातचीत कर सकते हैं। सगीत का समय प्राधान्य रहता है। कर्नाटक रागों का भरपूर प्रयोग होता हैं। मंच के चारों ओर दर्शक बैठते है जो इसमें सक्रिय रूप मे भाग भी लेते हैं। अत कभी कभी अभिनेता एवं दर्शक को पहचानना भी कठिन हो जाता है। इस लीला मे पहले विशेष महत्व नही दिया जाता था। बाद मे

---

1 The Hindusthan Times 9 1 1971 Page 9

पारसी थियेट्रिकल परम्परा का इस पर भी प्रभाव पड़ा और प्रभावशाली मंच एवं वेशभूषा का प्रयोग बढ़ने लगा। धीरे धीरे सिनेमा का कुप्रभाव भी इसमें घुसने लगा और पिक्चर फ्रेम स्टेज, बनने लगा। कविता संगीत, और नृत्य के मिश्रण से इसमें शेक्सपीरियन थियेटर का सा आभास मिलता है। नृसिंह भगवान के खम्भ फाड़ कर निकलने के समय एक तूफ़ान का आयोजन होने लगा।

आज अव्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत इस भागवत मेला में भाग लेने वाले बंगलौर शहर के वकील, टैलीग्राफिस्ट विश्व विद्यालय अथवा स्कूलों के छात्र होते हैं।

नौटंकी, स्वांग, सांगीत, भगत और रम्मतें

नौटंकी उत्तर भारत का सर्व प्रिय नाट्य है। इसके पर्याय रूप में स्वांग, भगत, ख्याल, सांगीत, रम्मत आदि शब्द प्रचलित हैं। इसकी उत्पत्ति नाटकीय[1] नाट्य प्रकीय[2] आदि से बताई जाती है, पर प्रयाग की दृष्टि से 'नाटक नौटंकी'[3] शब्द युग्म रूप में ही प्रचलित है। यह नट धातु से व्युत्पन्न, विशेषतः नाटक शब्द का स्त्रीलिंग विकृत रूप है, जो स्वयं में लोकधर्मी नाट्य परम्परा का सूचक है। कुछ लेखकों के अनुसार नौटंकी एक पंजाब की कुलीन महिला थी जो फूलों से तोली जाती थी। नत्थाराम ने उसके चरित्र पर एक नौटंकी भी बनायी थी। कुछ लेखकों के अनुसार नौटंकी नाम इसमें प्रयुक्त 9 प्रकार के वाद्यों और 9 नगाड़ों के कारण पड़ा है। स्पष्ट है कि यह विधा बड़ी विवादास्पद है। सांगीत शब्द 'स्वांग' से निकला स्वांग और गीत का रूपान्तर बताया जाता है। 'रम्मत' में रमणशीलता का भाव निहित ज्ञात होता है।

मध्यकालीन नाट्य परम्पराओं का मुख्य रूप है नौटंकी जो उत्तर भारत में सर्वत्र प्राप्त होता है। कुछ विद्वान[4] इसका उत्पत्ति काल 11वीं 12वीं शताब्दी

---

1. हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा. चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 39
2. भारतीय नाट्य नव सन्दर्भ नौटंकी उद्भव और विकास डा. प्रभात पृ 70
3. बनवारी लोक नाट्य लोकमंच रंगयोग (वर्ष 2 अंक 3) गुरुप्रसाद दीक्षित
4. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, जुलाई, 1937 कालिका प्रसाद दीक्षित कुसुमाकर पृ 255

मानते है। प्रसादजी[1] के अनुसार नौटकी 11वी 12वीं शताब्दी (मुस्लिम आक्रमण काल) का अभिनय रूप है। उ होने लिखा है "धर्मान्ध आक्रमणों ने जब भारतीय रगमच के शिल्प का विनाश कर दिया तो देवालयों से सम्पन्न मडपो में छोटे मोटे अभिनय सवसाधारण के लिए सुलभ रह गए। रगमच से विहीन कुछ अभिनय बच गए, जिन्हें हम पारसी स्टेजों के आने के पहले भी देखते रहे हैं। इनमे मुख्यत नौटकी (नाटकी) और भाड ही थे। नाटकी और भांडों मे शुद्ध मानव सम्बन्धी अभिनय होते थ। मेरा निश्चित विचार है कि भांडों की परिहास की अधिकता सस्कृत भाण मुकुन्दानन्द' और 'रस सदन' आदि की परम्परा में है, और नाटकी या नौटकी प्राचीन राग काव्य अथवा गीति - नाटय की स्मृतियां हैं।" इस कथन से इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि सस्कृत रगमच काल मे नौटकी का आरम्भिक रूप विद्यमान था।

स्वाग, नकल, भगत सागीत और नौटकी प्राय एक ही प्रकार के लोक नाट्यो के विभिन्न नाम है।[2] डॉ दशरथ ओझा ने लिखा है स्वांग नाटकों के निम्नलिखित भेद आजकल प्रचलित हैं—1 नौटकी, 2 निहाल दे 3 हीर राझा, 4 नवलदे।[3] श्री वेदपाल खन्ना विमल ने भी नौटकी और सागीत को एक ही माना है।[4] इसे मान लिया जाये तो नौटकी की प्राचीनता और व्याप्ति सिद्ध करने की कोई समस्या नहीं रह जाती क्योंकि स्वांग शब्द विद्वानो ने बहुत पुराना माना है। स्वाग या नकल समानार्थी हैं। नौटकी स्वांग का ही आधुनिक विकसित रूप कहा जा सकता है। डा सिंह की मा यता है कि नौटकी शब्द नाटकीय नाटकी नौटकी के क्रम से बना है।[5] यह स्वांग का समानधर्मी कहा जा सकता है।

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबध प्रसाद पृ 103 104 चतुथ सस्करण स 2010 वि
2 लोक नाटय की विलुप्त परम्परा नौटकी साप्ताहिक हिन्दुस्तान (18 फरवरी 1968) डा मनात, पृ 21
3 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा ओझा, प 51
4 हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन डा वेदपाल खन्ना 'विमल' पृ 17
5 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्र प्रकाश सिंह प 39

रंगमंच के निर्धारित मापदण्डों के आधार पर नौटकी के प्रमाणतत्वों का मूल्यांकन अपेक्षित है। इसके मंच निर्माण के विषय में विद्वानों का कहना है कि इसका मंच सीधा साधा होता है। इसमें किसी प्रेक्षागृह विशेष की आवश्यकता नहीं होती। सुविधानुसार कहीं भी तख्तों से मंच तैयार कर लिया जाता है, जो चारों ओर से खुला रहता है। इसके समस्त दर्शक बैठे रहते हैं। परदों का प्रयोग प्राय नहीं होता मंगलाचरण से इनका कार्यक्रम प्रारंभ होता है। मंगलाचरण में किसी देवता की सस्वरस्तुति की जाती है। गायक एक ही होता है जो खेल का नायक, सर्वेसर्वा और प्रमुख व्यक्ति होता है। इसे 'रंगा' (रंगाचार्य) कहते हैं। कहीं कहीं नौटकियों के मंगलाचरण में एक से अधिक व्यक्ति भी स्तुति गायन करते देखे गये हैं। इनकी गायन पद्धति एवं भाषा में आंचलिकता की विशिष्ट छाप होती है। अधिकतर यह बहर, लावनी, दोहा, चौपाई सोरठा, चौबोला, कवित्त, गजल, शेर ख्याल दादरा आदि छन्दों की तर्जो पर गाया जाता है। इसमें संगीत (विशेषत नगाड़ो की संगत) का प्राधान्य होता है। गायन, नगाड़े की ध्वनि और फिर वाद्य चलते ही रहते हैं। गायन पद्धति पर आधारित अभिनय और इसका संगीत अन्योन्याश्रित हैं। इसीलिए इसे गीतिनाट्य की संज्ञा दी गयी है। श्री नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है, नौटकी संगीत मूलक नाटक है, एक प्रकार का म्यूजिकल आपेरा नहीं।[1] एक विद्वान ने तो यहां तक लिखा है कि राष्ट्रीय आपेरा बनने की क्षमता यदि किसी मंच में है तो इसी में[2] टोटल थियेटर की समस्या का समाधान भी नौटकी में ही प्राप्य है।

संगीत के वाद्यों में नगाड़ा या नक्कारा, ढोलक सारंगी, वहां हारमोनियम (जिसे पैर पेटी भी कहते हैं) आदि मुख्य रूप से प्रयुक्त होते हैं। एम्बेसेडर संस्था कानपुर के सक्रेटरी जनरल श्री सत्यमूर्ति के अनुसार एक प्यालानुमा ढोल भी होता है जिसे एक व्यक्ति दो सर्कडियों से बजाता रहता है।[3] पत्रिका दी एम्बेसेडर्स' कानपुर 1962 के एक लेख इण्डियन फाक थियटर' प 2 के अनुसार

'The NAUTANKI troup generally consists of an old man, his wife, his nephews and his son Three of them form the orchestra One plays small bowl shaped drum which he b ats with

---

1 रंगदर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन, पृ 210

2. दे साप्ताहिक हिन्दुस्तान (23 अगस्त 1960) पृ 20

3 'दी एम्बेसेडर' कानपुर 1962

two sticks sitting on his hanches, anoth r plays a harmonium and the third runs his bow accross the hundred strings of the SARANGI The narrator called RANGA which means of the ranga or stage manager director and promptor, he controls the exits and entrances of the players as also the rhythm and tempo of the play and through his comments maintains the unity and thread of the plot

रगा (सूत्रधार) नौटकी की कथा के स्थान, समय नायक एव उससे सम्बन्धित प्रमुख पात्रो का वर्णन कर कथा का प्रारम्भ गा गा कर करता है और बीच बीच में भी कथा सूत्र जोडता चलता है। नौटकी म दृश्य परिवतन भी रगा की वार्ता द्वारा ही होता है। कभी कभी गायन अथवा नृत्य द्वारा भी इस दृश्य-परिवतन की सूचना दी जाती है।[1] श्री नेमिचन्द्र जन की भी यही मा यता है।[2] रगा को प्रातीय भाषा म 'मसखरा' कहते है और इसे नौटकी मे मुशी कहा जाता है वह हमेशा अ य अभिनेताओं के बीच आता रहता है पहले वह मसखरे के रूप मे आता है और घटिया किस्म का हास्य प्रस्तुत करता है बाद मे किसी भी भूमिका मे आ सकता है कि तु उसका तरीका वही रहता है। वस्तुत मडल के मुख को रगा कहते हैं। यही सूत्रधार, यही निर्माता और यही मच का सचालक होता है। वह सारे खेल की गतिविधियो को स्वबद्ध करता है और मच पर पात्रो के प्रवेश या प्रस्थान की सूचना देता है। वह बीच बीच में अपनी व्याख्या प्रस्तुत कर कहानी के सूत्र जोडता है और काय में एकान्विति स्थापित करता है। इसमे गीत पद्यात्मक सवाद, सुरबद्ध वत्तांतक टुकडे और उल्हासपूर्ण नाच होते हैं। किसी नाच या अभिनय पर खुश होकर कोई दशक जब रुपया इनाम मे देता है तो झाकी के बाच में ही रगा इस ईनाम को कबूल करता है [3] श्री बलव त गार्गी ने एक अ य पात्र 'मखोलिया' का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं-हर एक नौटकी में एक मखोलिया होता ह जो छेड छाड करता है और बडों बडों की टाग खीचता ह। नाटक का मुख्य काय कविता और गीतो द्वारा ही विकसित होता है, लेकिन 'मखोलिया' गद्य में ही बोलता है और गांवों के चौधरियो, नम्बरदारों, थानेदारो और साहूकारो पर छींटा

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (18-2-68) अज्ञात एम ए प 22

2 रग दशन श्री नेमिचन्द्र जन प 21।

3 रगमच श्री बलवन्त गार्गी, पृ 93-94

नकल करता है। इस व्यंग्य विनोद द्वारा वह गांव में हो रहे अन्याय या अनुचित बातों का भंडाफोड़ करता है।[1]

वास्तव में रंगा विदूषक, मसखरा, हास्य अभिनेता, मखोलिया, मुंशी आदि के कार्य करता है। कभी कभी रंगा[2] स्त्री की भूमिका भी निभाता है और अपने लटके-झटकों (हास्य) से दर्शकों को आकर्षित कर लेता है। इसे पहचानना कठिन होता है। इसमें अश्लीलता का पुट प्राय नहीं होता।

अन्य पात्र –भारतीय लोकमंच (इण्डियन फॉक थियेटर) के विद्वान लेखक ने लिखा है कि नौटंकी कलाकारों का जत्था अधिकतर एक ही परिवार के सदस्यों का बना होता है – यह बात सर्वत्र लागू नहीं होती। इस प्रकार के संघ प्राय समान प्रकृति वाले कलाकारों से बनते पाए जाते हैं, जिनमें 1 या 2 मुख्य व्यक्ति होते हैं। इनके प्रभाव से संघ में एकता कायम रहती है। इसके लिए श्रेष्ठ उदाहरण मेहता रोड के श्री उगम राज सेवक का दिया जा सकता है जिसके संघ के व्यक्ति उसके परिवार के (बहू बेटे पोते पोती आदि) न होकर अन्य जाति के कलाकार हैं। रंगा की भूमि के अतिरिक्त अन्य कलाकार सजधज कर मंच पर आकर बैठ जाते हैं। किशोर आयु के लड़के स्त्रियों की भूमिका करते हैं। कई बार अभिनेता अपनी भूमिका पूरी कर दर्शकों के सामने ही तख्तपोश पर बैठ जाता है हुक्का पीता है, पान चबाता है, और जब उसकी बारी आती है, उठ खड़ा होता है। कई बार झांकी के बीच में ही अमर सिंह राठौड़ हुक्के का कश खींच लेता है। दर्शक इस प्रकार के कृत्य को बुरा नहीं मानते न ऐसी बातें किसी भांति भी नाटक के कार्य की शृंखला को भंग करती है।[3] जापान में 'काबुकी' के कोलापाशी सूत्रधार की गतिविधियां भी लगभग इसी प्रकार की रहती हैं वह मंच पर जो कुछ भी करता है, दर्शकगण उसका बुरा नहीं मानते। नौटंकी में स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियां भी निभाती हैं। इनमें प्राय व्यावसायिक तवायफें होती है। इस समय कानपुर में एक ऐसी मंडली है, जिसमें कलाकार केवल औरतें ही हैं।[4] श्री नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में[5] तवायफों के प्रवेश से नौटंकी का कलात्मक

---

1 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृ 93
2 श्री उगम राज सेवक मेहता रोड (राज)
3 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृ 92 93
4 वही, पृ 94
5 रंग दर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन, पृ 208

स्तर दिनों दिन गिरता जा रहा है, यद्यपि इसी मात्रा में ग्रामीण जनता में उसकी लोकप्रियता और मांग भी बढ़ती जा रही है। नौटंकी की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रायः गायक अभिनेता दर्शकों पर प्रभाव डालने के लिये अपने कण्ठ को सुरीला बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। इसके साथ संगत करने वाले वाद्यकार भी वाद्य-वादन में विशेष प्रवीण होते हैं।[1]

नौटंकी में पुराने कथानकों (हीर रांझा, हरिश्चन्द्र, 'सीरी फरहाद' 'सुल्ताना डाकू', 'मोर ध्वज', 'लैला मजनूं' आदि) में पार्श्ववाचक (प्रोम्प्टर) की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये नौटंकियां पात्रों को कंठस्थ होती हैं किन्तु नई नौटंकियों के कथानकों के लिए उन्हें मानक तैयारी करनी पड़ती है, ताकि पार्श्व वाचक की आवश्यकता न पड़े।

नौटंकी के दर्शक प्रायः निम्नस्तर के होते हैं। गीत, संगम को रुचि रखने वाले दर्शक इसमें अधिक पाये जाते हैं। अच्छी मंडलियों के लिए, श्री जैन का कथन है कि उनका दर्शक वर्ग निश्चित है और उसी के मनोरंजन के लिए वे अपने प्रदर्शन तैयार करती हैं।[2] दर्शक मंच के तीन ओर बिल्कुल पास ही बैठते हैं जिससे दर्शक और अभिनेता के बीच सीधा सम्पर्क बना रहता है।

अच्छी मंडलियों के पास अपने अलग सेट होते हैं, किन्तु अन्य साधारण मंडलियां बिना सेट पर खुले मंच पर अभिनय प्रस्तुत करती हैं। नौटंकी के प्रदर्शन में दृश्य विधान अथवा उपकरणों का कोई स्थान नहीं।[3] इसका रंग विधान सीधा और सरल होता है। इसके यथार्थ प्रस्थान के कारण यह लिखा गया है कि संगीत मूलक नौटंकी कल्पना प्रधान थियेटरी रचना है, जिसमें यथार्थ के अनुकरण का उसका छल उत्पन्न करने का प्रयत्न तनिक भी नहीं किया जाता।[3] यही मान्यता श्री सत्यमूर्ति की है[4] The folk theatre does not strive to create an illusion of reality It breaks the illusion and creates inturn a world of it's own किन्तु ये मान्यताएं सब जगह चरितार्थ नहीं होती। पुरानी नौटंकियों में चमत्कार प्रयोग भी होते थे और साथ का भ्रम भी

---

1 रंग दर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन पृ 208
2 ,, ,, पृ 212
3 ,, ,, पृ 211
4 Indian Folk Theatre The Ambassadors Kanpur

मध्यकाल में नाटकों के पूर्ण अभाव का रोना रोते हैं[1] आपके कथनानुसार नौटंकी का स्वरूप समृद्ध या और साहित्यिक भी।' मुसलमानी प्रभाव से नौटंकी में जो अश्लीलता (स्त्रैणता) आई, उसका सबसे उपयुक्त प्रमाण अमानत की 'इन्दरसभा' मे मिलता है। आपकी मान्यता है कि रंगमंचीय नाटकों की परम्परा हिंदी में लीलाओं के रूप मे अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इसी के समानान्तर नौटंकी परंपरा भी अबाध गति से चल रही है।[2] मुस्लिम प्रभाव से नौटंकी का जो असाहित्यिक एव अश्लील रूप बना उसका पुन परिष्कार ग्रामों से ही आरम्भ हुआ। डा सिंह की मान्यता है कि नौटंकी को पुन परिष्कृत करने वाले प्रवतक बुलन्द शहर के उस्ताद इन्दर मन छीपी थे उनके शिष्य हाथरस के चिरंजी लाल छीपी ने इस परंपरा को आगे बढाया। इसी परंपरा में तीसरे व्यक्ति हाथरस के नत्थाराम हुए हैं जिन्होंने नौटंकी के विधान में अनेक कृत्रिम उपकरणों का समावेश कर पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। कदाचित इसलिए कुछ विद्वानो ने श्री नत्था राम को ही नौटंकी का प्रवतक स्वीकार कर लिया है।[3]

डा दशरथ ओझा ने हाथरस एव रोहतक के स्वांग साहित्य के सदर्भ में दीपच द को नामी स्वांगी बतलाया है जो 19वीं शताब्दी के प्रसिद्ध गायक एव अभिनय कला निपुण व्यक्ति था। उनके शिष्यों की परम्परा मे हरदेवा, बाजनाई झम्मन और मानेराम आदि के नामो का उल्लेख किया गया है[4] एक अन्य लेखक[5] ने श्री नत्था राम गौड को हाथरस का और श्री दीप च द को गोवधन का बतलाया हैं। श्री दीपचन्द का उपनाम 'दीपा' भी था। ये दोनों प्रसिद्ध गायक हुए हैं। इन्होंने बर्मा आदि विदेशों मे जाकर भी नौटंकी के प्रदर्शन किये हैं। श्री नत्था राम गौड टीपदार आवाज स जितने प्रसिद्ध हुए हैं उतनी ही प्रसिद्ध है उनकी अमर कृति "अमर सिंह राठौड"। श्री त्रिमोहन प्रारम्भ में नत्था राम की मडली म नक्कारा बजाते थे बाद में उन्होने अपनी पृथक सगीत कम्पनी व्यावसायिक आधार पर स्थापित की। यह कम्पनी मुख्यत उत्तर प्रदेश मे ही रही। अभिनश्री

1 हिन्दी नाट य साहित्य और रंगमच की मीमांसा, डा चन्द्रप्रकाश सिंह प 39
2 ,, ,, , , ,, प 40
3 दे साप्ताहिक हिन्दुस्तान (18 फरवरी 1968) प 22
4 हिंदी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा प 51
5 दे साप्ताहिक हिन्दुस्तान (23 अगस्त 1970) प 20

गुलाब इस कम्पनी की सर्व प्रथम स्त्री कलाकार थी।[1] हाथरस की नौटंकी परम्परा में था गिरिजा प्रसाद, चुन्नीलाल, पूरनचन्द, रामसिंह, मदन लाल, लच्छो, श्याम सुन्दर, अमर नाथ, छज्जन सिंह हास्य कलाकार) आदि के नाम प्रमुख हैं। कलकत्ता के प० जमुना प्रसाद पाण्डे (सेवक) के कथनानुसार हाथरस की दोदे की मण्डली भी बहुत प्रसिद्ध रही है। इसके अतिरिक्त दूलिया मालिया और जीतमल सेवक की नौटंकी भी बड़ी प्रसिद्ध रही है। स्व० श्री मोहन लाल एवं बाल कलाकार श्री महेश शर्मा भी इस परम्परा मे छोड़े नहीं जा सकते। कलाकारों में श्रीमती कृष्णा प्रमुख हैं। श्रीमती कामिनी शर्मा, श्यामा, कमला आदि को भी हाथरस की नौटंकी के शोभा बढ़ाने का श्रेय प्राप्त है। बल्लभगढ़ में बलदेव छठ के अवसर पर प्रतिवर्ष स्वांग प्रदर्शन होते हैं जिसमे 50–60 हजार दर्शक जुटते हैं। श्रीमती कृष्णा 'अमर सिंह राठौर' में हाड़ी रानी की भूमिका में दर्शकों के द्वारा प्रशंसा की पात्रा रही हैं।

सरकार की ओर से आज नौटंकी के पुनरुद्धार एवं परिष्कार के लिए प्रयत्न हो रहे हैं। दिल्ली की संगीत नाटक अकादमी के कुछ रंगकर्मी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। हाथरस की 'ब्रज लोक मंच' संस्था नौटंकी के प्रदर्शन करके उसे लोक प्रिय बनाने मे अग्रसर हैं।

कानपुर की व्यवसायिक संस्था श्री कृष्ण संगीत कम्पनी[2] का गठन 1927-28 म बताया जाता है। इसकी मुख्य चार शाखाएं थी 1 कराची, 2 कुमायु (गढ़वाल सेत्र) तथा दो कानपुर म। कानपुर की मण्डली के पास 'परिक्रम स्टेज' और सरकस के ढंग का मंडप भी था जिसमे 5 6 हजार सामाजिक बैठकर नौटंकी देखते थे। इसमें कुल 140 कलाकार थे। इसके संचालक श्री कृष्ण पहलवान (श्री कृष्ण मेहरोत्रा) रहे हैं, जिन्हें 1968 म सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया है। इन्होंने लगभग तीन सौ सांगीत-नाटकों की रचना की है, जिनमे हकीकत राय का 'खूने नाहक' बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कम्पनी जहां जाती थी वहां दर्शकों की खूब भीड़ लग जाती थी। कहते हैं इटावा की प्रदर्शनी में इसने न्यू अल्फ्रेड क० के दर्शकों को भी अपने प्रदर्शन से आकृष्ट कर उसका हाल खाली करवा दिया था।

---

1 दे साप्ताहिक हिन्दुस्तान (18 फरवरी 1968) पृ० 22

2 वही, पृ० 22

इसकी समकालीन दूसरी महत्त्वपूर्ण कम्पनी श्री त्रिमोहन लाल की 'सांगीत कम्पनी' थी। ये कन्नौज के रहने वाले थे। इनके साथ मान्धना (कानपुर) निवासी जागीरदार लालमणि नम्बरदार तथा मन्नी लाल भी थे। सबसे पहले श्री त्रिमोहन, नथाराम गौड़ की कम्पनी में नक्कारा बजाते थे, बाद में इन्होंने स्वतन्त्र रूप से यह अपनी अलग संस्था खोली। नौटंकी में स्त्री की भूमिका के लिए श्री त्रिमोहन ने एक गणिका अभिनेत्री गुलाब को स्थान देकर आज तक चली आई नौटंकी परम्परा में एक नये प्रयोग का सूत्रपात किया, इससे पहले पुरुष ही स्त्रियों की भूमिका करते थे। 'श्री कृष्ण सांगीत कम्पनी' के कुछ युवा कलाकारों ने भी श्री त्रिमोहन के इस नये चमत्कार की प्रतिस्पर्द्धा करने का प्रयत्न किया, जो श्री कृष्ण मेहरोत्रा (श्री कृष्ण पहलवान) को नहीं भाया। वे मंच पर गणिकाओं को उतार कर नौटंकी की अर्जित प्रतिष्ठा को खोना नहीं चाहते थे अतः उन्होंने स्वयं को इन कुरीतियों से बचाने के लिए इस दल से हमेशा के लिये अलग हो गये। श्री त्रिमोहन लाल ने 30 से अधिक सांगीत लिखे हैं, जिनमें 'ऊदल का ब्याह' 'मलखान समर' कौमी दिलेर उर्फ भारत सपूत, खुश दोस्त सुल्तान, त्रिया चरित्र उर्फ रंगीला जोगी' आदि प्रसिद्ध हैं।

कानपुर की तीसरी व्यावसायिक सांगीत कम्पनी' श्री लाल मणिनम्बरदार की थी, जो भ्रमण करके नौटंकी प्रदर्शन किया करती थी।

श्री कृष्ण मेहरोत्रा एवं श्री त्रिमोहन लाल की नौटंकी कम्पनियाँ अभी तक चल रही हैं।

कानपुर की चौथी नौटंकी मंडली श्री सुन्नू नम्बरदार की है, जो आसपास के शहरों में जाकर अपने प्रदर्शन करती है। फिरोजाबाद (जिला आगरा) में इस संस्था ने अपने बहुत से नाट्य प्रदर्शन किए हैं। यह बड़ी समृद्धशाली संस्था है। इसके पास अपने सेट कीमती वेष भूषाएं और मंच सज्जा का पूरा सामान है। इसके कलाकारों में एक से एक बढ़कर सुन्दर गणिकाएं स्त्रियों की भूमिकाएं करती हैं। निम्नकोटि के दर्शकों की इसमें अपार भीड़ रहती है। प्रदर्शन में केवल यही एक आकर्षण बिन्दु नहीं है। इस संस्था ने नाट्य चमत्कार भी प्रस्तुत किए हैं। इनका सारा प्रदर्शन फिल्म तकनीक पर आधारित है। इनकी पूरी टोली सरकस की तरह होती हैं जिसे क्षेत्रीय भाषा में 'टहीला' कहते हैं। प्रदर्शन के कई दिन पहले से बड़े बड़े पोस्टरों से नौटंकी प्रदर्शन के विज्ञापन आरम्भ हो जाते हैं। ये नौटंकियां महीनों तक चलती हैं। एक एक टोली में 40-50 कलाकार होते हैं।

कभी कभी तवाईफों (गणिकाओं) के कारण दर्शकों की उद्दंडता भीषण रूप धारण कर लेती है। ये सभी कम्पनियां इन्ग्योर्ड होती हैं और इनके प्रदर्शन के समय पुलिस का भी प्रबंध किया जाता है।

आगरा के 'भोजीराम नौटंकी वाला' की नौटंकी भी बहुत प्रसिद्ध है। इसके पास पुराने ढंग के परदे हैं। इसका 'सुलताना डाकू' खेल बहुत विख्यात है। भोजीराम स्वयं सुलताना डाकू का अभिनय करते हैं।

राजस्थान में मेड़ता परगना के निवासी उस्ताद लच्छीराम नौटंकी के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी शिष्य परम्परा में श्री कदजी सेवक (जोधपुर) तथा श्री उगम राज सेवक (मेड़ता रोड) आदि हैं। बतलाया जाता है कि महाराजा श्री उम्मेद सिंह के समय (लगभग 50-60 वर्ष पूर्व) से कदजी सेवक हीर की भूमिका करते थे जिसे देखकर दर्शक द्रवित हो जाया करते थे।

महाराजा सुमेरसिंह के समकालीन श्री लच्छी राम के साथ साथ जमन ऋषि उस्ताद भी नौटंकी खेलों में प्रसिद्ध माने जाते थे। जब कभी कजिया (कदजी) सेवक कोई नौटंकी प्रस्तुत करते तो उसके प्रारम्भ में यह स्तुति गाया करते थे,

"लच्छी राम उस्ताद हमारे जिनको करू सलाम।
जमन ऋषि उस्ताद हमारे जिनको करू सलाम॥"

इसके बाद कार्यक्रम प्रारम्भ होता था, जो सुबह 10 बजे तक चलता था। यह मंच खुला 'मुक्ताकाशी' होता था। पहले दो अभिनेताओं के बीच संवाद होते थे फिर उनमें से प्रत्येक अभिनेता नगाड़ों के बजने के साथ घूम घूम कर नाचता हुआ आकर पुनः संवाद बोलता—

किसने तुमको चिट्ठी भेजी किसने दौड़ बुलाया,
रांझना दूर खड़ा रो, नहीं तो पकड़ बांध दूंगी।—हीर
अखियां ने तुमारे चिट्ठी भेजी छतियों ने दौड़ बुलाया,
असल पठानी छोकरा हूं मैं, हीर के खातिर आया।—रांझा

'हीर रांझा' और 'राजा रिसालू' आदि नौटंकियां यहाँ अत्यधिक प्रचलित रही हैं।

राजस्थान की इस नौटंकी परम्परा में श्री उगम राज सेवक आज भी गणनीय हैं। वे पूरे राजस्थान में अपने दल के सहित नौटंकी प्रस्तुत करते रहते हैं।

नौटंकी के कई रूप राजस्थान में प्रचलित हैं जैसे (1) सगीत (सांगीत) जो हाथरस और पंजाब में विशेषतः प्रचलित है। (2) ख्याल–राजस्थान में इसे शेखा-

घटी ख्याल भी कहा जाता है अलवर, जसलमेर, बीकानेर मे ख्याल और रम्मत दोनो शब्द प्रचलित हैं। फलौदी, पोकरण आदि नगरों मे इसे तमाशा की सज्ञा दी जाती है। अजमेर और मारवाड में इसे ख्याल कहा जाता है। राजस्थान का अलीबख्शी ख्याल विशेष गौरवपूर्ण माना गया है। भरतपुर और ब्रज भाषी क्षत्र म उसे नौटकी ही कहा जाता है। राजस्थानी नौटकियों मे शेखावटी ख्याल विशेष प्रसिद्ध है। चिडावा और खडेला इनके पुराने क्षेत्र हैं। इनकी रचना पिंगल और अ्रेठी छन्दों द्वारा हुई है। लेखको म नानू, उजीरा तेली झालाजीराम, मान-कवि आदि प्रसिद्ध हुए हैं।

इनका मच बडा साधारण है। ये आयोजन व्यावसायिक आधार पर भी सम्पन्न होते हु।

कुचामणी ख्याल का भी अपना महत्त्व है। मारवाड म लच्छीराम के ख्याल बहुत प्रचलित रहे हैं। कुचामन में इसका अभिनय प्राय मुसलमानो और भाटों द्वारा होता है। इनकी व्यावसायिक मडला में 8 10 कलाकार होने हैं जो घूम घूम कर मुख्यत विवाहोत्सव के अवसर पर पारिश्रमिक लेकर अभिनय करते हैं।

रम्मतों म बीकानेर और जसलमेर की रम्मतें विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका विकास धार्मिक चरित्रो और वेद पूजा से माना जाता है। रम्मतो में गायन का प्रयोग कम होता है इसलिये ये अधिक प्रचलित नही हो पाई है। ये प्राय होली के अवसर पर देखी जाती हैं।

अलवर म भी रम्मत और ख्याल समानार्थी लोक नाटय माने जाते हैं। इन नाटयों म पूरणमल अमर सिंह राठोड, राजा गोपीचन्द, हरिश्च द्र हीर राझा आदि बहुत ख्याति प्राप्त है। अ तत यह स्पष्ट है कि नौटकी हि दी का एक अत्यधिक लोकप्रिय नाटय मच है।

भवाई

भवाई राजस्थान (मारवाड) गुजरात के सीमावर्ती क्षेत्र का सम्मिश्रित लोकनाटय है। जनश्रुति के अनुसार भवाई एक गायक मतक जाति रही है। समाज बहिष्कृत होकर आजीविका हेतु नृत्य गायन का व्यवसाय प्रारम्भ किया। इसीलिये उन्हें 'भाँड भवाई नाम दिया जाता है। भवाई की व्युत्पत्ति को लेकर अनेक मत हैं, इसे मुग्रा आई, भववही, भव आदि शब्दों से जोडा जाता है। वस्तुत भ्रमण

करने वाले और भावों को वहन करने वाले भवाई माने जाते हैं। भवाई में प्रहसन का सर्वाधिक महत्व है। अभिनय, साज सज्जा और व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण का इसमें प्रभाव देखा जाता है। यह किसी भी चौराहे या खुले मदान पर सम्पन्न हो सकती है। प्रहसन प्राय छोटे होते हैं और इसलिये कई बार दोहराये जाते हैं। इसकी परम्परा बडी पुरानी है। राजस्थान म लगभग 500 वर्षों से प्रचलित है। गुजरात का भवाई नाट्य राजस्थान भवाई स कुछ भिन्न है। गुजराती भवाई मे वष्णवी प्रभाव और धार्मिक सस्कार बडे प्रबल प्रतीत होते हैं जबकि राजस्थानी भवाई मनोरंजनात्मक ही हैं।

गुजरात का भवाई नृत्य नाटय शक्ति-पूजा से सबद्ध है। वहां ऊंझा की पटेल जाति भवाई की प्रमुख कार्यकर्त्ता है, यह लोक प्रसिद्ध है कि असाइत ठाकुर ने सकडों भवाई लिखे हैं। ऊंझा की वाणिक कन्या रतनवा या गगा से सम्बन्धित अनेक दन्त कथायें भी प्रचलित हैं। यहां 'झण्डा झूला का वेश' अत्यन्त लोक विख्यात कहा जाता है। इन विवरणों के आधार पर राजस्थान के भवाई लोकनाट्य को गुजराती भवाई से पर्याप्त भिन्न कहा जा सकता है।

वस्तुत भवाई राजस्थान और गुजरात का प्रसिद्ध लोकनाटय है। यह नाटय परम्परा सस्कृत के नाटककार रामचन्द्र (12वीं शताब्दी) से स्वीकार की गई है।[1] भवाई का कथ्य अधिकतर गुजर या राजपूत शूरवीरों की कहानियो पर आधारित होता है।

भवाई लोक नाटय का प्रारम्भ चौदहवीं सदी के एक ब्राह्मण कवि असाइत से माना गया है जो सगीत एवम् अभिनय दानों मे दक्ष कहा गया है।[2] 17वीं शताब्दी में इसका राज्याश्रित रूप भी था। 18वी शताब्दी म राजाओ की दुराचारिता से इस राजप्रसादों से निकल कर बाजारों मे आना पडा।[3] श्री कृष्णदास की मा यता है कि गुजराती भवाई मच का प्रारम्भ सस्कृत की नाटक परम्परा से हुआ है। प्रारम्भ के नाटककार विद्वान थे अत इस मच के साहित्यिक स्तर को गिरते देख कर चिंतित और सतक रहा करते थे। जब इस ओर गुजराती पूजीपतियों का ध्यान आकर्षित हुआ तो पसों का जोर लगा कर उन्होंने इस मच पर

1 पौराणिक नाटकों की परम्परा डॉ देवर्षि सनाढ्य पृष्ठ 80

2 रगमच बलवन्त गार्गी, पृष्ठ 96

3 वही, पृष्ठ 96

कब्जा कर लिया और इसे बाजारी स्वरूप प्राप्त हुआ।[1]

भवाई का मंच बड़ा विलक्षण होता है। खेल शुरू होने से पहले एक व्यक्ति खड़िया मिट्टी का एक दायरा खींचता है जिसका व्यास लगभग बीस फुट होता है। इस जगह को 'पौड़' कहते हैं। इस पवित्र स्थान पर साजिंदे और गायक बैठते हैं। यहीं नाटक खेला जाता है। सब प्रथम दो व्यक्ति भुंगल (लम्बी गर्दन वाली भेरी) बजाते हैं। इससे नाटक आरम्भ होता है। भुंगल के तीव्र स्वर अभिनेताओं को पौड़ में प्रवेश और प्रस्थान की सूचना देते हैं। सेना की जीत और हार और नाटक के मोड़ों की सूचना भी भुंगल के स्वर देते हैं। दर्शक गोल दायरे में पौड़ के इर्द गिर्द बैठ रहते हैं। अभिनेता जब वेश भूषा से सजे हाथों में मशाल थामे शृंगार स्थान से निकलते हैं तो भुंगल के तीव्र स्वर दर्शकों को चेतावनी देते हैं ताकि वे कलाकारों के लिए राह बना दें।[2] प्राय 14 15 कलाकार इसमें भाग लेते हैं। रंग लेपन के लिये कलाकार काजल तथा सफेद रंग का प्रयोग करते हैं। मशालों का प्रयोग दो दृष्टियों से होता है। (1) मंच पर प्रकाश (2) मांगलिकता। कलाकार मशालों को कमानियों की तरह घुमाते हैं और हवा में आग के चक्कर बना देते हैं। इस रस्म के बाद एक बहुत बड़ी मशाल पौड़ में एक ओर गाड़ दी जाती है।[3] मंच पर मशाल का गाड़ देना हमें संस्कृत कालीन जर्जर इन्द्रध्वज की स्मृति दिलाती हैं। इसे विद्वानों ने शक्ति का प्रतीक माना है।[4] नारी के वेष में कुछ पुरुष जापानी काबुकी नाटक के सूत्रधार की तरह मंच के कलाकारों के लिए राह बनाने में सहायता करते हैं यह नाटक सारी रात चलता है।[5] मंच का तल बैठे हुए दर्शकों के बराबर होता है। नेमिचन्द्र जैन ने बम्बई के भांगवाडी में स्थित देशीय नाटक समाज नाटकघर की चर्चा करते हुए लिखा है–बम्बई में भांगवाडी के नाटकघर में प्रस्तुत होने वाले नाटक अपनी कुरुचिपूर्णता और घटियापन में 'फिल्मों' से बाजी लगाते हैं।[6] भवाई के अन्य उपांग तो सम्भवत ज्यों के त्यों ही हैं किन्तु कथ्य की दृष्टि से उसके नवीन रूप का जो वर्णन श्री जैन ने किया है वह ध्यान देने योग्य है।

1 हमारी नाट्य परम्परा परिशिष्ट–2, श्री कृष्णदास पृष्ठ 667
2 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृष्ठ 96
3 ,, ,, पृष्ठ 97
4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डॉ कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 33
5 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी, पृ 97
6 रंगदर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन, पृ 138

गुजरात का प्रसिद्ध लोकनृत्य गरबा भी मंच निर्माण की दृष्टि से गुजराती नाटक के बहुत समीप है।

इसमें विदूषक को रंगली कहते हैं। मंच पर दो तीन व्यक्ति कपड़ा तानकर खड़े हो जाते हैं तथा तबले और तेज आवाज वाले वाद्यों के साथ कभी सम्मिलित स्वर में कभी स्वतन्त्र रूप से गाकर अभिनय करते हैं। प्रारम्भ में गणपति की वंदना भवाई का अनिवार्य अंग है। गणपति स्वयं मंच पर आते हैं।[1] तत्पश्चात् मंच पर मशाल की स्थापना होती है। फिर ढोल बाजे बजा कर नाटक प्रारम्भ होने का संकेत दिया जाता है। प्रेक्षकों के पर्याप्त संख्या में आ जाने पर भवाई नाट्य प्रारम्भ होता है। परम्परानुसार पहले गणपति, फिर माता, तदुपरान्त ब्राह्मण का वेश प्रस्तुत करते हैं। यह सम्भवतः संस्कृत नाटकों के नांदी का ही परिवर्तित एवं लोकग्राह्य रूप है। इन वेशों के बाद भवाई के अन्य वेश आते हैं। रात भर यह कार्यक्रम चलता रहता है। इस प्रकार विविध सामाजिक, ऐतिहासिक एवम् धार्मिक वेश करके एक के बाद एक चलते रहते हैं। 'झपातेज, रामदेव-सलूण', रावण रा खेंगार' आदि के सुप्रसिद्ध वर्गों से लेकर 'फूल बीबी', 'लाल बीबी', कसारा, जोगण, मनियार आदि के वेश पूर्ण प्रचलित हैं।[2] इसके वाद्ययन्त्रों में सारंगी, नगाड़ा, नफीरी, मंजीरे, तबले, हारमोनियम आदि मुख्य हैं।

भवाई में दर्शक वर्ग का महत्त्वपूर्ण योग माना गया है। डा. लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है 'जब तक इसमें दर्शक अपना भावात्मक सहयोग नहीं देता, तब तक इसका मात्र प्रदर्शन ही होता है। मंच पर इसकी रचना नहीं हो पाती। भवाई नाट्य में यह विशेषतः अपेक्षित होती है। यह नाटक अपनी संरचना और प्रकृति में न प्रबद्ध है न इसमें औरों की भांति कथाक्रम का व्यवस्थित तारतम्य ही रहता है। यह सारा तारतम्य वस्तुतः दर्शक वर्ग के माध्यम से ही जुड़ता है।[3]

श्री देवीलाल सामर के मतानुसार भवाई की उत्पत्ति के केन्द्र राजस्थान और मालवा हैं,[4] जबकि श्री वेदव्यास ने भवाई को राजस्थान की एक जाति बतलाया है[5] जिनका पेशा है सभी वर्गों का मनोरंजन करना। सम्भवतः जाति

---

1 लोकधर्मी नाट्य परम्परा डॉ श्याम परमार, पृ 51

2 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डॉ कु चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ 33

3 दे नवभारत टाइम्स (20-4 1968)

4 दे लोक कला राजस्थान अंक प्रथम भाग पृ 3

5 दे साप्ताहिक हिन्दुस्तान (5 4-1970) पृ 42

के आधार पर ही इस लोकनाट्य का नामकरण हुआ है। मटकों का नाच, तलवारों तथा जलती मोम बत्ती और परात के किनारो पर पर रख कर 8 10 पानी भरे मटके सर पर रख कर नाचने के चमत्कार इनके प्रदर्शनों की विशेषता है।

राजस्थानी गुजराती भवाई हि दी लोक नाट्यो के बहुत समीप है। इन भवाईयों मे बीच बाच मे हि दी का पर्याप्त प्रयोग प्राप्य है जसे—नमे थालो मारी-सयरो जल भरवाने जाइए।[1] अस्तु इसे हि दी नाट्य मच में स्वीकार करना समीचीन ही है।

माच ख्याल और रम्मत

विद्वानो को ऐसी मान्यता है कि मालवा प्रदेश का लोकनाट्य माच वस्तुतः अन्य लोकनाट्यो की तरह अपने अविकसित रूप में सस्कृत रगमच के बहुत पूर्व विद्यमान था। सस्कृत नाटको ने इन लोकनाट्यो से वस्तुत पर्याप्त मात्रा में सामग्री प्राप्त की है। माच के अ तगत पूवरग के विधान मे गुरू द्वारा खम्भ पूजन की प्रथा इस बात की सूचक है।[2] हो सकता है यह खम्भ पूजन विधि का प्रचलन देव दानव सग्राम के समय इ द्र द्वारा स्थापित जजर के प्रभाव से लोकनाट्यों द्वारा अपनाया गया हो। कि तु इस प्रकार की विचारधारा केवल अनुमान पर आश्रित होने से तक तुला पर नही रखी जा सकती है। हमें लोकना ट्यों का जो रूप प्राप्त हुआ है वह मुसलमानी आक्रमण के बाद का ही है। माच रगमच का अध्ययन भी वहीं से आरम्भ होता है। 'माच मालवा का बहुचर्चित लोकनाट्य है, जिसमे खम्भ-पूजन विधि का पालन किया जाता है। यह प्रदशन मांगलिकता की धारणा की पुष्टि करता है। इसका विधान इस प्रकार है—

इस नाट्य आयोजन के कुछ सप्ताह पूर्व उचित मुहत में ग्राम अथवा नगर की बस्ती के किसी खुले एवम् निश्चित स्थान मे माच मच का खम्भ (स्तम्भ) स्थापित किया जाता है। उस समय माच' नाट्य के अभिनेता और कायकर्ता एकत्र होकर अपने गुरू क कर कमलों से खम्भ की पूजा करवाते हैं। आम्र के पत्र अमर वल्लरी धानया गुड और लाल वस्त्र पूजन सामग्री रूप मे प्रयुक्त किये जाते हैं तथा पूजन की बेला में ढोलक का सतत वादन अनिवाय समझा जाता है। माच' मच के निर्माण के लिए यह औपचारिक आयोजन बड़ा मागलिक माना जाता है।[3]

---

1 हि दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमांसा, डॉ कु चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ 34
2 लोक धर्मी नाट्य परम्परा : डॉ श्याम परमार पृ 30
3 " " , पृ 28

'माच के सम्बन्ध में डॉ० श्याम परमार ने बहुत सामग्री एकत्र की है। वे लिखते हैं— मंच प्रायः दृढ़ खम्भों पर 5 फुट से लगाकर 10 फुट ऊँचा बनाया जाता है। ऊपर चार बल्लियों के सहारे सफेद चादर तान दी जाती है और उसके रंग बिरंग कागजों के फूल गोंद से चिपकाये जाते हैं। मंच के चारों ओर पत्तियां लाल पीले वस्त्र के टुकड़े आम के पत्तों की झालरें या ऋतु के फलों के बन्दनवार टांगे जाते हैं। मंच की लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण आवश्यकतानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। मंच के दोनों ओर दो दो पाट और सामने वेदी के चार खम्भे गाड़े जाते हैं। चार खम्भों के निकट 16 युवक, 1 जमादार, 1 थानेदार और 1 बादशाह बैठते हैं। यह मंच योजना माच के सौन्दर्य में वृद्धि करती है। पृष्ठ के पाट 'बारहघाट के पाट' कहलाते हैं। यहां माच मण्डली के कुछ विश्वासपात्र कार्यकर्ता और अभिनेता माच-नाट्य के अभिनय के अवसर पर उपस्थित रहते हैं। इस तरह बारह घाट के पाट के पास एक टेक का पाट भी रहता है जिस पर अभिनेताओं के बोल झलने के लिए कुछ व्यक्ति बैठे रहते हैं और सामूहिक स्वर में बोल और टेक दोहराते हैं, जिससे गाते हुए अभिनेता को कुछ आराम मिल जाता है। मंच के एक ओर कुछ अनुभवी वृद्धगण बैठते हैं। यदि बोल में कोई भूल हुई अथवा ढोलक की थाप में त्रुटि हुई या अभिनेता के पद पर संचालन या हाव भाव में कहीं असम्बद्धता आई तो वे संकेतों द्वारा उसे सचेत कर देते हैं। माच के प्रणेता गुरु का आसन भी माच-मंच की एक ओर होता है जिस पर और कोई नहीं बैठता। यह व्यवस्था यथा निर्देश होती रहती है। प्रकाश व्यवस्था भी उल्लेख्य है। इसमें मशालची कुछ मशालों को मंच के तीन खम्भों पर लगाकर जला देता है।[1] माच का पूर्व रूप मालवा में प्रचलित "ढारा ढारी खेल" बतलाया जाता है।

मंच पर देव स्तुति के बाद पहले भिश्ती अभिनयात्मक ढंग से जल छिड़काव करता है, फिर फराशिन फर्श या जाजम बिछाने का अभिनय करती है। उसके बोल भी लगभग आधा घण्टे तक चलते हैं। माच के प्रणयन कर्ता अपने हाथों में माच की लिखी हुई बहियों के लिए अभिनेता के पीछे चलते हैं। वे मंच पर बही में से पंक्तियां बोलते हैं और अभिनेता साज पर उन्हें दोहराते हैं। माच का यह स्वरूप अब लुप्त होता जा रहा है।[2] ये अभिनेता प्रायः 'स्वरूप' कहलाते हैं। कभी कभी उन्हें स्वांग और 'रूप' भी कहते हैं।[3] मंच संगीत परम्परा बहुत पुरानी है। माच

1 लोक धर्मी नाट्य परम्परा डॉ० श्याम परमार पृ० 28 29
2 " " " पृ० 35
3 " " " पृ० 36

मे लोक संगीत का प्राधान्य अवश्य है, किन्तु गीत संवादो द्वारा कथानक की सूत्र बद्धता कायम करने के लिये जिस प्रकार सूत्र धार आद्योपा त मंच पर रहता है, उसका माच मे अभाव है। माच म पात्र अपने संवाद की समाप्ति पर स्वय हट कर एक ओर खड़े हो जाते है और अन्य पात्रो के आगमन के लिए मंच पर स्थान बना देते है।[1]

मालवा मे प्रचलित माच के प्रवतक अवंतिका निवासी बालमुकुन्द गुरु माने गए है जिन्होंने कुल 16 माचो की रचना की है। इनका काल 20वी शताब्दी के आरम्भ (लगभग स 1901 के बाद) का माना जाता है। इन माचो में ढोला मारूणी राजा भरथरी, सेठ सेठानी हीर–राझा आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। गुरु बालमुकुन्द अपने माच का अभिनय उज्जयिनी के जयसिंहपुरा मे करत थे। इनके 20 वष बाद कालूराम उस्ताद का नाम भी माच परम्परा मे लिया जाता है। कहा जाता है कि श्री कालूराम उस्ताद का दल बालमुकुन्द गुरू के प्रतिस्पर्दी स्वरूप उत्पन्न हुआ था। उन्होने भी लगभग 18 मार्चो की रचना की, जिसमें प्रह्लाद-लीला मधुमालती हीर राझा नागमती राजा रिसालू, इन्द्रसभा त्रिया चरित्र, हीरा मोती आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। य रचनाए 1950 के बाद बालमुकुन्द गुरू के द्वारा लिखी गई थी। कालूराम उस्ताद ने स्त्री पात्रो को मच पर उतार कर माच में नया आकर्षण आरम्भ किया। इनके बाद उस्ताद के पुत्र श्री शालिग्राम न इस परम्परा मे अपना पर्याप्त योगदान किया है। कालूराम उस्ताद के समकालीन भेरू गुरू भी माच की परम्परा से सबद्ध माने गए हैं। नए माच कलाकारो मे राधा किशन गुरू नाथूसिंह सिद्धेश्वर सेन शिवाराम परमार आदि हैं। माचो की कथा वस्तु पौराणिक प्रेम परक और ऐतिहासिक होती ह।

माच की बहुत बडी विशेषता यह है कि अभिनय के समय आगन्तुक पात्र का परिचय मंच पर खड़ा पात्र पहले से ही दे देता है। पात्र अपने अभिनय कर एक ओर मंच पर जा खड़े होते हैं। संवाद (वाद विवाद) पद्य-बद्ध होते हैं। रूपक उपमा अलकार आदि का प्रयोग माच मे पर्याप्त मात्रा म मिलता है।[2]

झालावाड में माच क स्वरूप का वर्णन करते हुए डा सिंह ने लिखा है कि वहाँ कभी कभी राजा रानी और सनिक भी वार्तालाप करत-करते नृत्य करने लगते हैं। अभिनय समाप्ति होने पर प्राय अभिनेताओं की शोभा यात्रा निकलती है।

---

1 लोक धर्मी नाट्य परम्परा डा श्याम परमार, पृ 37-38

2 वही, पृ 38-46

मांच का अभिनय रात्रि में काफी देर पश्चात् आरम्भ करने की रीति है। यह प्रातःकाल (काफी प्रहर दिन चढ़े) तक चलता रहता है।[1] चित्तौड़ का मांच भी बहुत प्रसिद्ध है। चित्तौड़ में प्रचलित मांच (तुर्रा कलगी) के प्रवर्तक हैं— श्री चेनाराम जिनके पास अपने हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं। यह मांच का मंच जमीन से 10 15 फीट ऊँचा बनाते हैं जहाँ चारों ओर दर्शक बैठते हैं।

मांच का एक विशिष्ट रूप राजस्थान में पाया जाता है जिसे तुर्रा कलगी का ख्याल कहा गया है। यह नाट्य शिल्प मेवाड़ क्षेत्र में विशेष प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति काव्य रचना प्रतियोगिता से मानी गई है। जनश्रुतियों के अनुसार राजा ने तुकनगीर को जब तुर्रा भेंट किया और शाह अली फकीर को कलगी दी तो वही से हिन्दू मुसलमानों का क्रमशः पीला और हरा रंग निश्चित हो गया। कुछ विद्वानों के मतानुसार तुर्रा शिव का कलगी शक्ति की प्रतीक है। इनके संवाद अनुप्रास तुकान्त और अन्य काव्य शास्त्रीय नियमों को लेकर होते हैं। इसका मंच लगभग 5 फीट ऊँचा होता है। यह एक प्रकार का शौकिया अभिनय है। अभिनेता केवल पुरुष ही होते हैं। इसमें वाद्य का विशेष प्रयोग होता है। इसकी अर्थ व्यवस्था जन साधारण द्वारा की जाती है। प्रकाशित कृतियों में चैनाराम गौड़ की तुर्रा कलगी का ब्याह बहुत प्रसिद्ध है। तुर्रा-कलगी प्राचीन शास्त्रार्थ परम्परा का अवशेष है। मंचस्थ हो जाने के कारण इसे ख्याल और मांच की संज्ञा दे दी गई है जो मालवा में अति प्रचलित है। तुर्रा कलगी लावणी बाजों के प्रसिद्ध अखाड़े हैं। राजस्थान की यह नाट्य परम्परा पर्याप्त प्रसिद्ध है।

कुछ विद्वानों ने मांच और ख्याल को लगभग एक ही माना है। श्री देवीलाल सामर ने राजस्थान के ख्यालों की चर्चा करते हुए लिखा है कि रागरंग के साथ किसी प्रसंग की नकल पेश करने की प्रक्रिया को खेल कहते हैं, जो कालान्तर में 'ख्याल' बन गया।[2] राजस्थान की सभी लोकधर्मी नाट्य परम्पराएं ख्याल नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। राजस्थान में शेखावटी प्रदेश की 150 वर्ष पुरानी ख्याल परम्परा (जो फतेहपुर क्षेत्र के प्रह्लादीराम एवम् भालीराम जी पुरोहित के समय से मानी गई है) से लेकर नानूराजा, उजीरा तेली, दूलिया राजा (चिड़ावा) तक का वर्णन और उनके प्रस्तुतीकरण का उल्लेख हुआ है। इसमें प्रत्येक गेयपद के अवसान पर प्रकट होने वाली नृत्य चालों (लोक शैली के क्रम) को विवादी पात्र अपने अंग में

1 हिन्दी नाटय साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, पृ 29
2 दे धर्मयुग (27 सितम्बर 1970) पृ 39 एवं 47

समट कर सवादात्मक उत्तर प्रस्तुत करता है और वादी पात्र की नृत्यगीतात्मक चुनौती स्वीकार करत हुए अनुपम नृ य चालो की सष्टि करता है। इस तरह पूव रात्रि स चला हुआ रग उत्तर रात्रि तक भावात्मक के आकाश को छून लगता है और दशकगण मत्र मुग्ध से टक टक निहारत ही रहत हैं। इन खेलो के प्रदशन म समय की कोई सीमा नही होती। कभी कभी रात को शुरू हुआ खेल सुबह तक भी खत्म नहा होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि माच एव ख्याल म कोई विशेष अन्तर नही है। ख्याल मच भी खुला हता है। इसकी सम्पूर्ण प्रस्तुति माच की तरह सगीत एव नृ य पर आश्रित है। वेशभूषा का कुछ व शष्य अवश्य मिलता है। श्री सामर न लिखा है कि स्त्री पात्र चाहे रानी हो या नौकरानी प्राय एक ही तरह की पोशाकें पहनत हैं। राजा और प्रजा की पोशाकों मे सिवाय प्रतीकात्मक एव साकेतिक सज्जा के अधिक कुछ फक नही होता। खेल म कलाकार की जाति सिफ कला की ही होती है। अत चाहे मुसलमान भी क्यो न हो उन्हे परम्परा का निर्वाह करना पडता है। इसलिए ख्याला के राजा 75 वर्षीय दूलियाराजा आज भी अपने ख्यालो का आरम्भ गणपति स्तुति एव सरस्वती व दना से करते हैं तथा बाद म बी, मुहम्मद एवम मदीना वाल को याद करत हैं। इन ख्याला म दाढी मूछो वाले पात्र घूघट ढक कर स्त्री की भूमिका करत हैं और मच पर नृत्य गीतो म निरत सु दर युवती से लगते हैं।

बीकानेर म ख्याला को रम्मत नाम स पुकारते हैं जो वहा प होली के दिनो प्रदर्शित की जाती हैं। खुल स्थान पर पाटो से निर्मित मच पर 5-10 कलाकार मिल कर इस लोक नाट्य का मचन करते हैं। वहा की अमरसिंह राठौड और हिडाऊ मरी की रम्मतें बहुत प्रसिद्ध हैं। हजारो की सख्या मे दशक वहा एकत्रित हात हैं। पुष्करणा (पुरिटकर) एव सवक जाति क कलाकार इसम विशेष भाग लेते हैं जसलमर क सवक जाति क तज कवि ने भी रम्मतो का अपने प्रदेश म बहुत प्रचलन किया है।[1] इनके अतिरिक्त कुछ और लोक नाट्य भी उल्लेखनीय हैं, जस स्वाग बहुरुपिया गव री महक्ल भेंडती नवटौरा पाबूजी री पड आदि। स्वाग पशवर नौटकी का ही एक रूप माना जाता है। नत्थाराम के स्वाग बहुत प्रसिद्ध रह जात हैं। स्वागो की रचना दोहा चौबोला और बहर तबील कहरवा आदि छदो म की जाती है। इसके लेखको म मदारी गगलिया गढपति आदि

1 साप्ताहिक हि दुस्तान (3 माच 1969) महेन्द्र मानावत पृ 52

उल्लेखनीय हैं।[1]

बहुरूपिया–

यह एक प्रकार का मूक छद्म अभिनय है। मुगलकाल में इसका विशेष प्रचलन प्राप्त होता है। इसमें एक ही व्यक्ति भिन्न भिन्न प्रकार के रूप धारण करता है। मराठी नाटकों में इसका विशेष प्रभाव स्वीकार किया गया है।[2] आजकल यह कला केवल आजीविका का एक प्रचलित माध्यम है। इसके लिए नित्य नई वेश भूषाएं चाहिए। इसे लोक नाट्यों में सम्मिलित कर लेना समीचीन ही है क्योंकि यह आहार्य, एवाभिनय और चमत्कार पूर्ण होता है साथ ही दर्शकों के लिए प्रभावक भी। यद्यपि इसका निश्चित नाट्य विधान नहीं होता फिर भी इसकी कला तो है ही। बहुरूपिया-प्रदर्शन यत्र-तत्र सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

गवरी–

राजस्थान भीलों आदि का लोक नाट्य है। यह मेवाड़ क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। गवरी गौरी शब्द का विकृत रूप है। इसमें शिव भस्मासुर और गौरी की मूल कथा है। इसका नायक भी भासुर मुखौटा धारण कर सभी गवरी का सचालन करता है। इसके प्रदर्शन हेतु त्रिशूल गाड़ कर एक रंगस्थली बनाई जाती है। उसपे पताका भी स्थापित की जाती है। देवी भाव और तंत्र मंत्र का इसमें विशेष प्रभाव दिखाई देता है। इसके कथोपकथन गद्य पद्यात्मक होते हैं। अभिनय में भी नृत्य का समावेश रहता है। यह मुख्यतः एक धार्मिक नाट्य है। राजस्थानी लोक नाट्यों में यह अपेक्षाकृत अपने अविकृत रूप में उपलब्ध होता है।

महरूल और नकटौरा–

ये स्त्रियों के गोपनीय लोक प्रहसन हैं जो अवध क्षेत्र में विशेष प्रचलित हैं। इनमें विवाह संस्कार का नाट्य किया जाता है। यह नाट्य नारी मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भड़ती या भाण संस्कृत भांड का ही रूपान्तर है जो प्रायः प्रहसनपूर्ण मौखिक चलमंच मुक्त होता है।

पाबूजी की पड़–

यह भाषा भीलों' पाबूजी के जीवन वृत्त और शौर्य गायन का एक सादा मंच नाट्य रूप है। यह राजस्थान में यत्र तत्र प्रचलित है।[3]

---

1 हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास षोडश भाग, पृ 386
2 लोक धर्मी नाट्य परम्परा डॉ श्याम परमार पृ 69
3 हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास षोडश भाग, पृ 441

उपर्युक्त लोक नाट्य रूप हिन्दी रंगमंच की अमूल्य सम्पदा है। हिन्दी जगत में इनके और कई रूपांतर प्राप्य हैं। हिन्दी का लोक रंगमंच वास्तव में बड़ा समृद्ध और सर्वांगीण है। इनके संरक्षण के लिए यत्र तत्र लोक कला मंडल और संगीत नाटक अकादमी आदि संस्थाएं संस्थापित की गई हैं। यह क्षेत्र अधिकाधिक शोध का विषय है। लोक रंगमंच आज लोक जीवन के अतिरिक्त व्यावसायिक मंच पर भी व्याप्त है। यह कला कृषि प्रधान देश में लोक प्रचलित है और इसमें समस्त लोक जीवन का सच्चा प्रतिरूप दिखाई देता है इसलिए इसे लोक नाट्य तथा लोक रंग मंच कहना ही समीचीन है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के लोक मंचों का तुलनात्मक अध्ययन करने से इसका तात्विक विश्लेषण सविस्तार किया जा सकता है। मराठी का दशावतार तमाशा आन्ध्र ललित बंगला का जात्रा, मैथिली का कीर्तनिया, असम का अंकिया, मद्रास का तीरु कुथू (तेरु कुत्तु) कर्नाटक के यक्षगान आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका पारस्परिक विवेचन अत्यन्त उपादेय है। हिन्दी रंगमंच के इतिहास में इन लोक नाट्यों का अक्षुण्ण योग है। वस्तुतः शास्त्रीय मंच का उद्गम इसी लोक मंच से हुआ है। यही परिष्कृत और सुसंस्कृत रूप धारण कर लोक व्यापी सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि लोक मंच नाटक की आदि भूमि है और रंगमंच की चरम परिणति भी।

अध्याय ४

हिन्दी का प्रथम मंचित नाटक

हिंदी रंगमंच की व्युत्पत्ति सम्बन्धी विद्वानों के मतमतान्तर विचारणीय है। हिन्दी नाटक और रंगमंच का मूल स्रोत लोकनाट्य अंग्रेजी और पारसी मंच ही माना जाता रहा है। डा. भामा ने स्वाग (जिसके नौटंकी निहालदे हीर-रांझा नवरंदे रूप माने गये हैं) को ही हिंदी नाटक का मूल स्रोत कहा है[1] किन्तु डॉ सोमनाथ गुप्त के अनुसार "हिन्दी रंगमंच कहलाने वाली और इस नाम को सार्थक करने वाली स्थायी चीज हिन्दी जगत के पास अभी तक नहीं है। जिस रंगमंच पर हिन्दी के नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ वह सीधा संस्कृत रंगमंच से नहीं लिया गया। अंग्रेजी रंगमंच के प्रभाव से उसका जन्म हुआ।[2] संभवत इसीलिए उन्हें हिन्दी रंगमंच के प्रारम्भ में पारसी रंगमंच का सादृश्य दिखाई दिया है। डॉ सोमनाथ गुप्त की ये पंक्तियां भी विचारणीय हैं– रंगमंचीय सब नाटकों का प्रारम्भ कोरस से होता है। यह कोरस भी एक अजीब वस्तु है। वास्तव में यह संस्कृत नांदी का अनोखा और नूतन संस्करण मात्र है।[3] कोरस (जो अंग्रेजी शब्द है) को संस्कृत का अनोखा और नूतन संस्करण कहने का अभिप्राय यह होता है कि कोरस से ही नाट्य कला का जन्म हुआ है। उनके अनुसार कोरस से सभी रंगमंचीय नाटकों का प्रारम्भ होता है। कोरस जब संस्कृत का ही परिष्कृत रूप है तो फिर हिन्दी के आदि नाटकों का प्रारम्भ भी संस्कृत से ही माना जाना चाहिए।

हिन्दी नाटक की उत्पत्ति का दूसरा कारण डॉ सोमनाथ गुप्त ने कांशी की मंडलियां द्वारा पारसी रंगमंच की बुराइयों को दूर करने हेतु स्थापित किया गया

---

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा दशरथ ओझा पृ 51-52

2 हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास (चौथा संस्करण) डॉ सोमनाथ गुप्त पृ 98-99

3 वही, पृ 108

रगमच बतलाया है ।[1] डा गोवि द चातक ने भी हि दी के प्रसवकाल मे लोकनाट्यो के अतिरिक्त पारसी रगमच की परम्परा को विद्यमान बतलाया है ।[2] जहा तक लोक नाट्यो का प्र न है इसम हिन्दी रगमच ने ही नही सस्कृत रगमच ने भी लोक-तत्त्व ग्रहण किये इस नकारा नही जा सकता ।

यह बात सवमा य है कि किसी भी भ षा के रगमच का निर्माण एक साथ नही हो जाता । हि दी रगमच ने धीरे धीरे विभिन्न तत्त्व ग्रहण करके अपना निजी स्वरूप निर्धारित किया है । अत यह मानना कि पारसी काल मे हि दी रगमच की उत्पत्ति हुई समीचीन प्रतीत नही होता क्योकि उस समय हि दी रगमच प्रसवकाल म नही प्रत्युत प्रतिस्पर्धा की स्थिति मे था अतएव उसकी उत्पत्ति के लिए सस्कृत के परवर्ती और रास काल के पूवकाल को टटोलना पडेगा ।

रगमच का प्रमुख तत्व है नाटक की प्रस्तुति । जिन नाटको मे यत्किचित मचोपयोगी सकेत मिलते है उन्ह हिन्दी रगमच का निधि माना जा सकता है । यहा पर उन मत-मता तरो एव तत्त्वो को उद्धृत करना आवश्यक नही जिनके आधार पर रगमच क स्वरूप का निर्धारण किया जाता है । उत्पत्तिकाल म हिन्दी रगमच का बहुत प्रामाणिक विवरण नही मिलता पर उसके अस्तित्व का प्रमाण अवश्य मिलता है । अस्तु उसक विकास का निर्णय यहा करणीय है ।

प्राप्त प्रमाणो के अनुसार 12वी शताब्दी (1167 विक्रम) मे जन धर्म का प्राधान्य था अस्तु उसके प्रचार हेतु नाटकादि हुआ करत थे । यह स्मरणीय है कि जनाचाय जिनवल्लभ सूरी ने मदिरों में अभिनय करने की अनुमति नहीं दी थी, क्योकि अभिनेताओ की चेष्टाए विटो की सी होती थी, प्रमादवश उन्ह चोटें लग जाती पाठ भी दुष्ट हो जाता था[3] सगीत एव नृत्य का प्रचलन भी था । इस प्रकार स्पष्ट है कि जन रास नाटकों मे अभिनेयता का अभाव था फलत उनके नाटको की रगमचीयता की वद्धि नही हो पायी ।

निष्कष यह है कि 12वी शता दी से पूव मन्दिरो में अभिनय होते अवश्य थे । कितु 12वीं शताब्दी म कुछ भद्दे प्रदशन होने लग गये जो अत नाट्य प्रदशन मन्दिरो म किए जाने के लिए वर्जित हो गए । इसी कारण 13वी शताब्दी में

---

1 हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास डा सोमनाथ गुप्त प 233 (परिशिष्ट 2)

2 प्रसाद नाटय और रगशिल्प डा गोविन्द चातक प 3

3 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा प 70

अभिनयता का स्तर घट गया। जो नाट्य कला 12वीं शताब्दी में प्रचलित थी वही परिष्कृत रूप में 15वीं 16वीं में ब्रज में पुन विकसित हुई। 12वीं-13वीं शता० के रास एवं हल्लीसक के कथानक वल्लभ सम्प्रदाय के आराध्य देव श्री कृष्ण की जीवन घटनाओं से सम्बन्धित है। इसी कथानक का विकसित रूप हम वैष्णव धर्म आन्दोलन काल (15-16वीं शताब्दी) में देखते हैं। डा दशरथ ओझा के अभिमतानुसार हिन्दी रंगमंच की स्थापना-जहां तक प्रदर्शन तत्व का प्रश्न है 12वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आरम्भ हो चुकी थी जो उत्तरोत्तर बढ़ती रही किन्तु अधिक वृद्धि से उसमें कुछ विकार उत्पन्न हो गये, सम्भवत इसलिए उन प्रदर्शनों को जैनाचार्यों द्वारा धर्म दृष्टि से निषिद्ध मंचों से निष्कासित कर दिया गया। अतः व जन साधारण के बीच पनपने लगे। 13वीं शताब्दी के पुरा और कार्तिक के मन्दिरों के सामने एक विशाल नाट्य मंडप का भी उल्लेख है।[1] सम्भवतः यह जैनाचार्यों एवं जनसाधारण की रुचि के विरोधी विचारों का प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनाचार्य रास एवं हल्लीसक में प्रदर्शित संगीत एवं नृत्य विधा के विरोधी थे। यह भी सम्भव है कि जब जैन धर्म शक्तिशाली हो गया तो वैष्णव धर्म का मार्गावरण उसने उक्त प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध लगाया फलतः वैष्णव नाट्य प्रदर्शन प्रणाली को बहुत धक्का पहुँचा। वैष्णव धर्म रास नाटक पुस्तकों तक ही सीमित रह गया समाप्त नहीं हुआ किन्तु 15वीं 16वीं शताब्दी में वह पुन वैष्णव धर्म आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ। डा सिंह के मतानुसार[2] भारतीय नाटय परम्परा का पूरा ह्रास या लोप कभी नहीं हुआ समय समय पर उसने नए नए रूप अवश्य ग्रहण किए।" अत वैष्णव धर्म की विलुप्त नाटय परम्परा परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप में फिर से उदय हुई। किन्तु डा ओझा का मत है कि–'रास ग्रंथों से यह भी प्रमाणित होता है कि कालान्तर में इसकी दो धाराएं चल पड़ी। शृंगार प्रधान रास की परम्परा अजैन रास ग्रंथों में चलती रही और धर्मतत्त्व प्रधान रासों की परम्परा जैन साधु विरचित रासो में। जैनाचार्य नृत्य और संगीत से पराङ्मुख होने के कारण अपने रासो को इनसे सर्वथा वंचित रखते गए। परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में ये रास केवल श्रव्य रह गए। इनकी अभिनेयता घटती गई किन्तु अजैन रास नृत्य-संगीत के आधार पर उत्तरोत्तर उन्नत होते गए। 16वीं शताब्दी में वल्लभाचार्य और हित हरिवंशदास आदि महात्माओं ने उसे पुन नवशक्ति संयुक्त किया और

1 'पुराना नाटय नए बोल' साप्ताहिक हिन्दुस्तान (7 6-70) श्री पुरलबन्त
2 हिन्दी नाटय साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डॉ. कु. चन्द्रप्रकाश सिंह प

के कारण तिरस्करणी विहीन बना हुआ है रास काल मे वाचनिक या कवि द्वारा प्रेक्षकों के सम्मुख उच्चरित करा दिया जाता था। मत्यु, श्मशान दृश्य तथा युद्ध वर्णन भी वाचनिक प्रेक्षकों को सुनाता था। गयसुकुमार जैन रास परम्परा के धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतीक है। डा० ओझा ने इस रास नाटक को तीन विशेषताओं के कारण हिन्दी का प्रथम नाटक माना है[1] जो इस प्रकार है—

1 गयसुकुमार रास मे राजस्थानी हिन्दी का प्रभुत्व विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।
2 इसमे पात्रों की सख्या रासक से अधिक है।
3 यह वसुदेव, देवकी, कृष्ण आदि से सम्बद्ध रखता है।

यह सब कुछ होते हुए भी इस नाटक के मचित होने के प्रमाण उपलब्ध नही होने अत प्रथम मचित कृति के रूप मे यह गणनीय नही।

अब्दुल रहमान कृत सदेश रासक

13 वी शताब्दी मे विरचित यह ग्रथ अपभ्रश मिश्रित डिंगल मे है। डा नामवर सिंह ने इसे रोमास गीत कहा है।[2] इसके बाद सारे रास ग्रथ अपभ्रश डिंगल में लिखे गये। सदेश रासक काल में रासकों का प्रदर्शन बहुरूपिया (नटों) द्वारा किया जाता था। सदेश रासक मे छोटा कथानक, पात्र, मगलाचरण, और आशीर्वचन आदि कई तत्व है। वातावरण (सूर्यास्त, निशागमन आदि) की सृष्टि जो प्राकृत यत्रा से कराई जाती है सदेश रासक मे सवादों द्वारा कराई गई।[3] रूप और उल्लास मे परिपूर्ण इस नाटक की तत्कालीन अभिनय क्षमता का भी भास होता है। डा बच्चन सिंह का कथन है कि —"बहुरूपिए कथोपकथन के रूप में रासकों का प्रदर्शित करते थे लेकिन बहुरूपियों से इसका सम्बन्ध मात्र इसे नाटकीय गुणों से पूर्ण नही बनाता।'[4]

श्री कृष्णदास के अनुसार 'राजस्थान की यह रास परम्परा अब तक चली आ रही है। कुछ वर्ष पहले तक प्रात मे इसका अभिनय प्राय होता रहता था।

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डॉ दशरथ ओझा पृ 84
2 हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योगदान डा नामवरसिंह पृ 186
3 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा दशरथ ओझा पृ 82 83
4 हिन्दी नाटक डॉ बच्चनसिंह पृ 16

लकुट राम तो अब तक प्रति वर्ष अभिनीत होता है।[1] यह कथन भी पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है।

सदेश रासक एव गयसुकुमार रास के लिए डॉ चन्द्र प्रकाशसिंह के तर्क भी महत्वपूर्ण प्रतीत होते है। उन्होंने लिखा है— जिस समय सन्देश रासक की रचना हुई थी, उस समय पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो की तरह चरित काव्यों की रचना की परम्परा भी चल पडी थी। अतएव स्पष्टत वस्तुस्थिति तो यह प्रतीत होती है कि दृश्यकाव्य अपने अभिनेय गुणों और उपकरणों को छोडकर श्रव्य मे परिणत हो रहे थे। पृथ्वीराज रासो मे परिणति की यह क्रिया पूरी हो चुकी है और सन्देश रासक मे अभी वह आध मार्ग मे ही है। इसका प्रमाण यह है कि देश रासक पूर्ण अभिनेय रचना नहीं अद्दहमाण का साक्ष्य भी उस काल के रासक रासो या रास को पाठ्य या श्रव्य-काव्य ही सिद्ध कर पाता है। अद्दहमाण का कहना है कि उसके समक्ष के रास बहुरूपियो द्वारा भाषित होते थे प्रभिनीत या प्रदर्शित नहो। 'कहु बहुरूपि णिबद्धहु रासउ भासियउ।" अद्दहमाण के इस कथन की टीका मे भी यही बात पुष्ट की गई है—कुत्रापि बहुरूपिभिर्निबद्धो रासको भाष्यते। इससे यह सिद्ध होता है कि रास जो नाट्य रासक के रूप मे कभी पूर्ण अभिनेय कलाकृति बन गया था जब केवल बहुरूपिए के समापण की वस्तु हो गया है।[2] इस प्रकार डॉ सिंह ने 13 वी शताब्दी में रास नाटको की प्रदर्शनात्मक अभिनेय परम्परा के ह्रास काल की ओर सकेत किया है और बहुरूपियो द्वारा रास नाटकों का भाषित होने का तर्क दिया है। उन्होने पाठ करते हुए बहुरूपियो की मुद्राओं की विचारधारा को अकित कर अपने तर्क की पुष्टि की है और सन्देश रासक को श्रव्य काव्यात्मक रासक ठहराया है।[3] डा भोला शकर व्यास का कहना है कि सदेश रासक हिन्दी का प्रथम नाटक होना तो दूर रहा नाटक ही नहीं है वह शुद्ध श्रव्य काव्य है।[4] गयसुकुमार रास के लिए डा सिंह का कथन है कि 'जब राजस्थान के ग्रथागारो में अब भी असख्य रासक ग्रथ अज्ञातावस्था में पडे हैं

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 167

2 हिन्दी नाट्य-साहित्य और रगमच की मीमासा डा चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 116

3 वही, पृ 116

4 सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रथ डा भोला शकर व्यास पृ 227

तो गयसुकुमार रास को ही हिंदी का प्रथम नाटक सिद्ध करने का आग्रह उचित नहीं प्रतीत होता।[1]

नागानंद रासक

महाराज हर्ष (7 वीं शताब्दी) कृत नृत्य गीत प्रधान नागानंद रासक को डा० ओझा ने हिंदी का आरंभिक एकांकी नाटक माना है और 13 वीं शताब्दी में इसके अभिनीत होने का उल्लेख भी किया है।[2] गरुड जैसे पात्रों को हवा में उड़ते हुए भी बताया जाता था।[3] नेपाल में मल्लों के शासन काल के संदर्भ में बतलाया जाता है कि यह नाटक राजा जयानंद के शासन काल में लिखा गया था जयानंद ने अपने दरबार में इसके अभिनय के लिये विशाल मंच निर्मित कराया था।[4] किंतु यह भी ठोस प्रमाणों पर आधारित नहीं है।

13 वीं शताब्दी में हिंदी रंगमंच के कुछ तत्वों (जैसे नाटक की कथावस्तु पात्र योजना, आरंभ और अंत, संवाद योजना, पद्यात्मक प्रणाली मंच सज्जा, प्रयाग दृश्य परिवर्तन आदि) के आरंभिक स्वरूपों के दर्शन होते हैं। इनमें अधिकतर नाटक अलिखित होते थे। अभिनेताओं को अपने पाठ कंठस्थ करने पड़ते थे। अलिखित नाटक विशिष्ट परिस्थितियों में घटना विशेष के अनुसार पनपते रहे होंगे और फिर काल कवलित हो जाते रहे होंगे। जो बच रहते हैं वे अप्रकाशित कालांतर में प्रकाशित रूप में प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे नाटक संक्षिप्त एवं पात्र विरल किंतु प्रबल वस्तु विवेचन से परिपूरित होते हैं। श्री बलवंत गार्गी ने इसके अलिखित होने का कारण यह बतलाया है कि कोई उन्हें चुरा न लें। 13 वीं शताब्दी के नाटक चाहे लिखित हों अथवा अलिखित उनके आरंभिक स्वरूपों का तो पता चलता है किंतु ये नाटक कब और कहां प्रस्तुत हुए इसका विवरण अप्राप्य है। अतः इन तीनों नाटकों में से एक भी प्रथम मंचित नाट्यकृति के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती।

---

1 हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० कुं० चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 117

2 हिं० नाटक उद्भव और विकास डॉ० दशरथ ओझा, पृ० 78 79

3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ० 387

4 'नेपाली नाटक तथा रंगमंच' लोकायन (खण्ड) पृथ्वीराज कपूर अभिनंदन ग्रंथ श्री मोहन राज शर्मा पृ० 201

१४ वीं १५ वीं शताब्दी के नाटकों में हि दी गीतों का प्रारंभिक स्वरूप

14 वी शताब्दी के सस्कृत नाटको म हिन्दी गीतो का स्थान मिलने लगा था ।[1] विद्यापति ने सव प्रथम अपने सस्कृत नाटको म हिन्दी को स्थान दिया ।[2] उडीसा मे 15 वी शताब्दी म विद्यापति की नाटय रचना 'परशुराम विजय' म जो गीत लिखे हैं उनम हिन्दी भाषा प्रयुक्त है । डॉ चन्द्र प्रकाशसिंह का मत है कि चौदहवीं शताब्दी मे जब विद्यापति के 'पारिजात हरण और रुक्मिणी–परिणय' मे हिन्दी ने नाटक साहित्य को निर्माण करने का उपक्रम भी किया तो वह न टकीय गीतो तक ही पहुँच पाई पात्रो के कथोपकथन के लिए सस्कृत अथवा प्राकृत का ही आश्रय लेना पडा । इसके पश्चात् मथिली, हिन्दी और ब्रज भाषा म यद्यपि लगभग सौ नाटको का पता चलता है फिर भी नाटको का सावजनिक और लोक प्रिय रगमच तक पहुँचने के लिए सभवत भारते दु काल तक प्रतीक्षा करनी पडी ।[3]

धम गुप्त कृत रामायण नाटक

डा अज्ञात के अनुसार नेपाल के शासक जयस्थितिमल्ल (1318-1394ई) के शासन काल म यह नाटक 14 वी शताब्दी में श्री धर्मगुप्त के द्वारा लिखा एव खेला गया था । इसे डा अज्ञात ने रामचरित्र पर सस्कृत हिंदी (मथिली) का प्रथम नाटक कहा है किन्तु प्रमाणो के अभाव म इसे हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक नही माना जा सकता ।[4] 15 वी शताब्दी म वष्णव धर्माचाय शकर देव विरचित कालियादमन मथिनी नाटक के गीतों में भी हिन्दी के शब्दो का आधिक्य है ।[5] अभिनेय नाटको म इन हि दी प्रधान गीतो की परम्परा का प्रचलन मथुरा म रूप गोस्वामी ने किया । अभिनय परम्परा का यह इतिहास और उनका यह विकास क्रम हिन्दी रगमच की उत्पति का साक्षी हैं । इसके आधार पर यह स्थापित

---

1 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास प्राक्कथन डा दशरथ ओझा प 11

2 वही प 65

3 हि दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा चन्द्र प्रकाश सिंह प 22

4 उत्तरी भारत का जन प्रिय लोकनाटय–रामलीला, रगयोग (जनवरी माच 1971) डा अज्ञात प 15

5 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 175

किया जा सकता है कि उस युग में हिन्दी रंगमंच अपने अस्तित्व (या आकार) ग्रहण करने में यत्नशील रहा है।

तुलसीकृत जानकी-मंगल नाटक

इस रचना का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है। कवि ने स्वयं लिखा है—

"सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं"

इस विवाह वर्णन को वर्णनात्मक नाटक कहा जा सकता है। संक्षेप में इसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं—स्वयंवर की तैयारी में देश विदेश के राजागण नगर की सजावट देखते हुए जनकपुर आते हैं। जनकपुर की भीड़ संकेतों द्वारा वर्णित है। विश्वामित्र की रामभिक्षा' में जनक पर्वत, वृक्ष, लता नदी, और तालाब दिखाई देते हैं। इनके लिए सूक्ष्म कथावस्तु का प्रयोग किया गया है।

जनकपुर पहुंचने के पहले मार्ग में अहिल्या उद्धार दिखला दिया गया है। तदन्तर विश्वामित्र जनक संवाद[1] जानकी का मंडप में लाना[2] दशरथ राजाओं को शर्तें सुनाना[3] आदि दृश्यों में अवश्य नाटकीयता के दर्शन होते हैं। धनुर्भंग प्रसंग में बाणासुर एवं रावण के चुपके से भाग जाने की सूचना मात्र दे दी गयी है राजाओं का यहां धनुष उठाने नहीं बतलाया गया है। केवल यही कहा गया है कि राजाओं को शुभ शकुन नहीं मिला अतः वे बहाना बना कर बैठ गये।[4] बाणासुर धनुष को देखकर बाण के समान भाग गया और रावण भी चुपके से भाग गया। विवाह प्रसंग में बारात का मंच पर बताया जाना संभव नहीं अतः सूच्य का प्रयोग हुआ है।[5] जानकी मंगल (विवाह) के साथ माण्डवी का भरत से उर्मिला का लक्ष्मण से और श्रुति कीर्ति का शत्रुघ्न से विवाह कर दिए जाने की सूचना दे दी गयी है।[6]

दहेज में दास दासी-घोड़े हाथी सोना वस्त्र और मणि इत्यादि दिए जाने

---

1 जानकी मंगल श्री गोस्वामी तुलसीदास सं 2014 प्रथम संस्करण पृ 16
2 ,, ,, ,, पृ 15
3 ,, ,, पृ 26
4 ,, ,, पृ 27
5 ,, ,, ,, पृ 28
6 ,, ,, ,, पृ 43

हैं किंतु मंच पर उनकी प्रस्तुति असंभव लगने लगती है। बारातियों को भोजन की चर्चा करने का मतलब यह होता है कि यह सम्पूर्ण रचना सूचनात्मक अथवा वर्णनात्मक ही है।[1] यहां तुलसीदास जी ने परशुराम की भेंट मार्ग में कराई है। इससे नाटकीय परशुराम लक्ष्मण और परशुराम राम की नाटकीय संवाद योजना के दर्शन नहीं होते जो शीतला प्रसाद त्रिपाठी के जानकी मंगल नाटक में प्राप्य है।

इसके संवाद पद्यात्मक हैं। रंग संकेत कहीं भी नहीं है। जगह जगह राम के शील सौन्दर्य और शक्ति से परिपूर्ण देवत्व का प्रतिपादन किया गया है जो इसकी नाटकीयता में बाधक है। हां जगह जगह पुष्प वृष्टि धनुष गर्जन पार्वतीजी लक्ष्मी जी आदि का छद्मनारी वेष देवताओं के विमान वर्णन में चमत्कार योजना आदि की ओर हमारा ध्यान अवश्य आकर्षित होता है। पुष्प वृष्टि, गर्जना आदि की विधियां विचारणीय बातें हैं। संगीत का भरपूर प्रयोग हमें इसमें मिलता है। मंगल कंगन जुआखेल (जूआ खेलने की प्रथा) आदि का आभास तत्कालीन सामाजिक स्थिति के संदर्भ में सहायक सिद्ध होते हैं। यहां नाटकीय दृष्टि से तुलसीकृत पार्वतीमंगल' भी विचारणीय है। इसमें शिवजी के कुरूपाकृति का अलौकिक शक्ति से सुन्दर रूप में परिणत हो जाने का भी चमत्कार निरूपित किया गया है।[2] सही माने में जानकी मंगल से कहीं बढ़कर संवाद प्रधान रचना पार्वती मंगल है। इसमें ब्रह्मचारी शिव) और पार्वती के संवाद पठनीय हैं। सप्त ऋषियों का आगमन भी अद्भुत नाटकीय दृश्य है। इसमें भी देवताओं का विमानों से आगमन (अवतरण) बतलाया गया है।

उपर्युक्त प्रारूपों को देखते हुए यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि तुलसी कृत जानकी मंगल शुद्ध रंगमंचीय नाटक नहीं है। हां उसमें नाटक के तत्व अवश्य विद्यमान हैं। पं शीतला प्रसाद त्रिपाठी ने लिए यह आधारभूत अवश्य रहा है। उन्होंने इन्हीं प्रसंगों को चुनकर उसके सारे बातें को रंगमंचीय दृष्टि से बुना है। हिन्दी का प्रथम नाटक उसे ही कहा जा सकता है। क्योंकि उसमें लगभग सभी तत्व विद्यमान हैं। वह खेला भी जा चुका है जबकि तुलसी कृत जानकी मंगल के कहीं मंचित होने की सूचना प्राप्त नहीं होती।

---

1 जानकी मंगल श्री गोस्वामी तुलसीदास सं 2014 प्रथम संस्करण पृ 44

2 पार्वतीमंगल श्री गोस्वामी तुलसीदास पृ 32

समय सार नाटक

इसके रचयिता बनारसीदास जैन (1636 ई०) माने जाते हैं। यह नाटक पद्यबद्ध है। से धार्मिक पद्यग्रंथ कहना अधिक उपयुक्त है। इस ग्रंथ की कई टीकाएं हुई हैं। बनारसी दास जी का समयसार नाटक मूल ग्रंथ 'समय पाहुड' मुनि अमृतचंद)' का अनुवाद कहा जा सकता है। यह नाटक अंकों में विभाजित नहीं है और न संवादात्मक शैली में ही है। स्पष्ट है यह एक धार्मिक धर्मग्रंथ है। अतः अभिनीत नाटकों के विचार में यह सुग्राह्य नहीं है।

आनंद रघुनन्दन नाटक

महाराजा रघुराज सिंह के पिता महाराजा विश्वनाथ सिंह कृत नाटक 'आनन्द रघुनंदन' को अनेक विद्वानों ने हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। डा० गिरीश रस्तोगी लिखते हैं—यह हिन्दी नाटक साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। कथोपकथन, रंग संकेत, गद्यांश, नान्दीपाठ, प्रस्तावना, संधियां का प्रयोग आदि के कारण रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक कहा है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वस्तुतः अपनी कसौटी के अनुसार आनन्द रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया था। श्री रस्तोगी ने शुक्लजी के कथन को स्वीकार करने के साथ-साथ यशवंत सिंह कृत प्रबोध चन्द्रोदय को भी रचना क्रम के अनुसार हिन्दी का प्रथम नाटक कहा है[2] क्योंकि इसमें रंग संकेत गद्य में है और यह ब्रज भाषा का गद्य पद्य मिश्रित सुन्दर अनुवाद है। डॉ॰ रस्तोगी की यह उक्ति भी विचारणीय है—'आनंद रघुनन्दन' या 'नहुष' नाटक को चाहे अब तक हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता रहा हो किंतु सत्य यह है कि भाषा स्वरूप और नाटय शैली दोनों दृष्टियों से इन्हें हिन्दी का प्रथम साहित्यिक नाटक मानना उचित प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः ये हिन्दी नाटक के पूर्व रूप हैं जिनमें महाकाव्य में प्राप्त संवाद स्थलों के समान नाटकीयता हो है किंतु नाटक के कलातत्व नहीं हैं। संस्कृत नाटकों के उपरान्त नाटक परम्परा को बनाए रखने तथा हिन्दी के साहित्यिक नाटकों के उदय में उनका महत्वपूर्ण सहयोग आवश्यक है अतएव सच्चे मान में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही हिन्दी का प्रथम नाटककार कहा जा सकता है तथा उनका 'विद्या सुन्दर' नाटक ही हिन्दी का प्रथम नाटक माना जा सकता है (भले ही उसे बंगला नाटक का छायानुवाद कहा

1 हिन्दी नाटक : सिद्धांत और विवेचन : डा० गिरीश रस्तोगी, पृ० 66
2 वही, पृ० 66

जाय) क्योकि इसी नाटक के द्वारा भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाटक के लिए उपयोगी शैली का निर्धारण किया और आगामी नाटककारो का मार्गदर्शन किया।[1] भाषा स्वरूप एव नाट्य शैली के आधार पर डा रस्तोगी उपयुक्त साहित्यिक नाटको म कभी आनद रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार करते हैं तो कभी नहुष और कभी विद्या सुन्दर को क्योकि उनके अनुसार रगमच का पूर्ण व्यापक अर्थ ही अभी स्पष्ट नही है।[2]

डा रस्तोगी के मतानुसार 19 वी शताब्दी की साहित्यिक धारा ही हिंदी रगमच की आधार शिला हो सकती है इसका अर्थ यह है कि वे धार्मिक अथवा लोक साहित्य (लोकधर्मी नाट्य परम्परा) को हिन्दी का नही मानते। साहित्यिक धारा मे प्राय दो प्रकार के नाटक माने जाते हैं–1 मौलिक–2 अनूदित। ब्रज भाषा के नाटकों म पर्याप्त मौलिकता एव अभिनेयता है। साहित्यिक नाटक न होने पर भी जन नाटको की परम्परा को अक्षुण्ण रखने म उनका महत्वपूर्ण योग है। अत सिद्ध है कि यही हिन्दी नाटक का पूर्व रूप है। यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी नाटक तथा रगमच का उदय सस्कृत नाटको के पद्यात्मक सवाद एव सस्कृत के नाटकीय काव्य से हुआ है।

इसके अतिरिक्त श्री रामलखन शर्मा ने आनन्द रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम प्रामाणिक नाटक कहा है।[3] और डा बच्चन सिंह को इसे अनेक त्रुटियो के बावजूद भी हिन्दी का प्रथम नाटक मानने मे आपत्ति नही है।[4]

डा लक्ष्मी नारायण दुबे ने महाराज विश्वनाथ सिंह कृत आनद रघुनदन को हिन्दी का प्रथम लिखित नाटक माना है।[5] इसके प्रथम माने जाने के उन्होने

---

1 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 70
2 　　,, 　　,, 　　,, प्राक्कथन पृ 4
3 राजा रघुनाथ सिंह नहीं रघुराज सिंह धर्मयुग (27-4 69) श्री राम लखन शर्मा, पृ 7
4 हिन्दी नाटक डा बच्चन सिंह पृ 19
5 महाराजा विश्वनाथ सिंह कृत नाटक आनद रघुनन्दन हिन्दी अनुशीलन वर्ष 22, अक 3 4 जुलाई से दिसम्बर 1969 डा लक्ष्मी नारायण दुबे, पृ 45 58)

कई प्रमाण भी दिए हैं। सबस पहली बात तो उ होंने यह कही है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल डा सोमनाथ गुप्त, डा शान्ति गोपाल पुरोहित, डॉ भानुदेव शुक्ल आदि न भी इसी नाटक को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। श्री दुबे ने इस नाटक को प्रथम इसलिए माना है कि इसम मौलिकता है नाटय तत्व हैं युग चेतना का निर्वाह है कथानक और नूतन प्रसगोद्भावनाए हैं, पात्र और चरित्र चित्रण वचित्र्य है, रसपरिपाक है यह प्राच्य प्रभावो को लिए हुए है इसमे पाश्चात्य और भारतीय परम्पराओ का समन्वय है दो विधियो का प्रयोग है--इमन अति मानवीय शक्ति को क्रिया रूप म न दर्शाकर नपथ्य का माध्यम चुना है। इसके राम अवतारी न होकर श्रेष्ठ मानव ही हैं--इन दो विधियो को आधुनिक बोध कहा गया है। इस नाटय कृति मे सस्कृत नाटो का अधानुकरण नही है--सस्कृत नाटय पद्धति का अनुगमन भी है और उससे विद्रोह भी जिसके आधार पर लेखक ने इसे क्रातिकारी रचना माना है। इसम काव्यत्व और सगीत भी है किन्तु उन्ही के शब्दो म नाटय कला, प्रेक्षागृह तथा रगमचीय दृष्टि से यह नाटक अनेक दोषो तथा त्रुटियो से भरा पडा है—अनुमान तथा अपने विवेक से ही दशक काम चला सकता है--परन्तु नाटक म इसकी कोई सयोजना नही की गयी है—बडे बडे अनुष्ठान नाटक म बच्चों के खेल बनकर ही सिमट गये हैं।' श्री ब्रजरत्न दास की उक्ति क अनुसार यह रचना नाटक कला की दृष्टि से किसी काम की नही और न इसका अभिनय ही हो सकता है इसका महत्व केवल इसकी प्राचीनता मात्र है। इसके मचन के स्पष्ट प्रमाण कहा प्राप्त नही है अस्तु प्रथम रगमचीय नाटयकृति का प्रश्न अभी तक अनुत्तरित है।

प्रबोध चन्द्रोदय

यह एक रूपकात्मक सस्कृत नाटक है जिसके मूल रचयिता हैं श्री कृष्ण मिश्र। इसका रचना काल 11 वी शती माना जाता है। हिन्दी मे प्रबोध चन्द्रोदय के लगभग एक दजन अनुवाद या छायानुवाद हुए हैं। इसके आदि अनुवादक हैं श्री ब्रजवासी दास (1760 ई) ब्रज भाषा काल मे यह नाटक बहुत प्रचलित हुआ। प्रारभ मे यह लाइट यन्त्रालय बनारस द्वारा मुद्रित हुआ और स 1932 वि. मे इस सम्पादित कर प्रकाशित किया गया। नाटक की भूमिका से स्पष्ट है कि इसका अभिनय भी हुआ था। यह छन्दबद्ध (पद्यात्मक) अनुवाद है। पुष्ट प्रमाणो के अभाव म इस हिन्दी की प्रथम अभिनीत कृति स्वीकार नही किया जा सकता।

(2) प्रबोध चन्द्रोदय अनुवादक नानक दास (1789 ई)

अनुवाद भजन भाषा मे लिखित बलीराम कृत प्रबोध चन्द्रोदय का रूपान्तर है। इसका अन्तस्थ विभाजन कथा और पात्र क्रम कृष्ण मिश्र कृत प्रबोध चन्द्रोदय के अनुरूप है। इस नाटक म नाटय प्रणाली के स्फुट सकेत भी मिलत हैं जसे कनात क पीछे नेपथ्य, ग्रीन रूम की व्यवस्था— आग करी कनात इक स्वाग बनावत काज।' इसके अतिरिक्त वाद्य यत्र सगीत और अन्य अभिनय सम्बधी रग सकेत भी प्राप्त होत है।[1]

(3) प्रबोध चन्द्रोदय का भावानुवाद पाखण्ड विडम्बना क नाम से भारतेन्दु द्वारा सन् 1873 मे प्रस्तुत किया गया। जो भारतेन्दु नाटकावली द्वितीय भाग में प्राप्य है।

(4) प्रबोध चन्द्रोदय का एक अनुवाद अनाथदास द्वारा किया गया है। यह कृति सन् 1883 म नवल किशोर प्रस लखनऊ से प्रकाशित हुई है।

(5) इसके एक अनुवादक कवि गुलाबसिंह परमानद स्वामी द्वारिका द्वारा सन् 1905 म प्रकाशित हुआ है।

(6) उक्त नाटक का एक अन्य अनुवाद महेश चन्द्र प्रसाद द्वारा सन् 1935 ई म पटना स प्रकाशित बताया जाता है।

(7) प्रबोध चन्द्रोदय के प्रथम अनुवादक महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर माने जाते हैं। यह पद्यात्मक अनुवाद है जो स 1695 (17 वी सवासर म) विरचित कहा जाता है। डा सोमनाथ गुप्त क अनुसार इसका अनुवाद काल लगभग 1643 ई है। यह गद्य पद्य पूर्ण ब्रज भाषा रूपान्तर भी माना जाता है।[2]

उपर्युक्त अनुवादो से इस नाटक की लोकप्रियता स्वय सिद्ध है इसम प्रथम बार दार्शनिक प्रश्नो और मानवीय मनोवृत्तियो का नाटकीय प्रणाली से प्रतिपादन हुआ है। कि तु यह नाटक मूलत पद्यात्मक कृति है। साथ ही इसके मचन का बहुत स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। अस्तु प्रथम मचित नाटक के रूप म इसे मान्यता देना एक क्लिष्ट कल्पना है।

---

1 भारतेन्दुकालीन नाटक डा गोपीनाथ तिवारी पृ 185

2 An Extention Lecture on Development of Hindi Drama— Dr Somnath Gupt Page 4

शकुन्तला

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के अनेक अनुवाद हिन्दी में प्राप्य हैं। इनमें सबसे प्राचीन है कवि नेवाज कृत शकुन्तला काव्य नाटक (1653 1760)। यह रचना ब्रजभाषा में हुई है। इसके कई नामान्तर भी मिलते हैं जैसे शकुन्तला, शकुन्तला उपाख्यान।

यह चार अंकों में विभाजित है। इसमें तत्कालीन जन नाट्य शैली ग्रहण की गई है। यह मूल कृति का अविकल अनुवाद न होकर मात्र भावानुवाद है। अनुवाद छंद बद्ध है। अस्तु मौलिक तथा प्रथम रंगमंचीय हिन्दी नाटक के रूप में स्वीकार्य नहीं है। शकुन्तला नाटक का दूसरा अनुवाद धौंकल राम मिश्र (1799 ई) द्वारा बताया जाता है। यह भी काव्य नाटक है और कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अविकल अनुवाद नहीं है फिर भी इसका नाट्य विधान मूल कृति के अनुसार ही हुआ है। इसमें पर्याप्त रंग निर्देश भी हैं जैसे 'जब परदा की ओट में सखिन सहित मो नारि,' 'परदा के पट टारि कहे लख्यो विदूषक आनि" आदि। सन् 1863 में राजा लक्ष्मण सिंह ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद शकुन्तला नाटक नाम से किया। यहां पद्य में ब्रज भाषा का तथा गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग है। डॉ देवर्षि सनाढ्य इस नाटक को 'हिन्दी का यथार्थ पहिला नाटक' मानते हैं।[1] यह नाटक भी पद्यबद्ध अमौलिक ब्रजभाषा रूपान्तर है इसलिए यहाँ स्वीकार्य नहीं है।

देवमाया प्रपंच

इसकी गणना कविवर देव रचित कृतियों में की जाती है। देव ने देव चरित्र नामक कृति में कृष्ण लीला का जो भक्ति भाव सम्पन्न वर्णन किया उसका प्रभाव इस नाटक में देखा जा सकता है। यहां भक्ति की भावमयता के साथ साथ वैराग्य और आध्यात्मिक तत्त्व बोध भी उपलब्ध है इसी भाव भूमि पर 'देव शतक" कृति भी आधारित है। इस नाटक की प्रेरणा प्रबोध चन्द्रोदय से सिद्ध की गयी है। इसका रचना काल संदिग्ध है। फिर भी इसे 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। विशेष विवरण अप्राप्य होने के कारण और

---

1 महाराज विश्वनाथ सिंह कृत नाटक आनंद रघुनंदन हिन्दी अनुशीलन वर्ष 22 अंक 3 4 जुलाई दिसम्बर 1969 डा लक्ष्मी नारायण दुबे, पृ 46

मुख्यत पद्य रचना होने के कारण इसे प्रथम अभिनीत नाटक नहीं कहा जा सकता ।

प्रभावती

डा श्याम सुन्दर दास ने 'रूपक रहस्य' म प्रारम्भिक हिन्दी नाटको के विकास क्रम म प्रभावती नाटक का उल्लेख किया है और उसे नाटय कला या नाटकीय तत्वो से किंचित परिपूर्ण भी घोषित किया है । किन्तु आज इस नाटक की विशेष प्रतिष्ठा नही है । इसके रचयिता देव कहे गए हैं ।[1] प्राप्त प्रमाणो के अनुसार श्री काशीराज की आज्ञा से इसका प्रणयन हुआ था । यह भी एक छन्द प्रधान ग्रथ है । अस्तु रगमचीय हिन्दी नाटको के इतिहास म गण्यमान नहीं है ।

गोवि द हुलास नाटक

डॉ सिंह ने आनद रघुनन्दन से भी पूर्व, गोविन्द हुलास नाटक को स्थापित किया है ।[2] इस कृति म किसी लेखक का नाम नही दिया हुआ है । इसे 18 वी शताब्दी की रचना माना गया है । इसमे प्रस्तावना सूत्रधार सहयोगी नर कृष्ण सम्बधी कथानक, अन्य गोप गोपी इसके पात्र एव सवाद आदि का वर्णन है ।[3] इसमें नाटक के अभिनीत किए जाने के सकेत भी मिले हैं । डा सिंह ने गोविन्द हुलास नाटक को रूप गोस्वामी कृत विदग्ध माधव नाटक (जो सस्कृत भाषा मे है) का जीव गोस्वामी द्वारा ब्रज भाषा रूपान्तर माना है ।[4] लेखक न इसे नाटय शास्त्र की दृष्टि से सर्वागपूर्ण नाटक एव सर्वांगसम्पन्न नाटक कहा है । इस नाटक की महत्ता इसलिए भी स्वीकार की गयी है कि यह नाटक गौडीय वष्णव आचार्यो के रस शास्त्र और नाटय शास्त्र दोनो के सिद्धान्तो का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है । उक्त वष्णव आचार्यों न यह प्रयत्न भी किया था कि उनके सिद्धान्तो के

---

1 महाराजा विश्वनाथ सिंह कृत आनद रघुनदन' हिन्दी अनुशीलन जुलाई दिसम्बर 1969 लक्ष्मी नारायण दुबे पृ 45

2 हि दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमांसा डा चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 176

3 वही पृ 163

4 वही पृ 169 तथा 174

अनुरूप नाटक लिखे और अभिनीत किए जाय। गोविन्द हुलास हिन्दी में नाट्य शास्त्र की उसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।[1]

इस नाटक को कहां अभिनीत किया गया था इसका विवरण अभी उपलब्ध नहीं होता। यह जनश्रुति है कि इस नाटक को वृन्दावन में अभिनीत करने के लिए शंकर जी ने आज्ञा दी थी।

श्री कृष्ण चरित्रोपाख्यान

इस नाटक को भी विद्वानों ने जानकी मंगल से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार यह काठमाण्डू में 1 सितम्बर 1835 में प्रायः 8 दिनों तक खेला गया था।[2] इस नाटक में तीन भाषाओं का प्रयोग है—अवधी, ब्रज तथा संस्कृत। डॉ. शारदा देवी वेदालंकार ने हिन्दुस्तानी भाषा एवं बोलचाल की खड़ी बोली का उल्लेख किया है। इसके लेखक का अभी तक पता नहीं लग सका है। यह भी धारणा है कि यह नाटक इन्द्र यात्रा के अवसर पर नेवारियों द्वारा 1835 में खेला गया था। इसमें संस्कृत के श्लोक मंगलाचरण तथा देवताओं की स्तुति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर बिहारी मिश्रित अवधी में लिखे दोहे भी हैं। गद्य के अंश बोल चाल की खड़ी बोली में हैं। बीच बीच में कुछ नेवारी और पहाड़ी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं। स्टेज का निर्देशन नेवारी भाषा में ही मिलता है। इस ड्रामा में नौ अंक दृश्य हैं।[3]

श्री धीरेन्द्र नाथ सिंह ने लिखा है— 1835 ई. में कृष्ण चरित्रोपाख्यान के अभिनय के पश्चात लगभग तैंतीस वर्षों तक हिन्दी में कोई मौलिक नाटक खेलने की कहीं सूचना नहीं मिलती। सच तो यह है कि नाटक की यह परम्परा चली ही नहीं। यह नाटक था या रास लीला। 130 अभिनेताओं की भीड़। ऐसी स्थिति में हिन्दी रंगमंच को 33 वर्ष पूर्व घसीट कर ले जाने का आग्रह क्यों?[4] केवल 130 अभिनेता देख कर उसे नाटक न मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह भी नाटक की एक विशेषता ही है। किन्तु अन्य रंगमंचीय तत्वों के अभाव के कारण इसे हिन्दी का प्रथम मंचित नाटक नहीं कहा जा सकता।

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा. कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह पृ. 175 176

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ. 18 एवं 686

3 वही पृ. 687

4 जानकी मंगल साप्ताहिक हिन्दुस्तान 6-7-69 श्री धीरेन्द्र नाथ सिंह पृ. 14

दालार शास्त्री कृत गोपीचंदाख्यान (सन् 1853)

डा गिरिजा सिंह का मत है कि श्री विष्णुनाम भाव की करजीत मराठी नाटक मडली ने गोपीचन्दाख्यान नाटक का मचन 26 नवम्बर 1853 को बम्बई म किया। इस नाटक म मराठी के साथ साथ हिन्दी का भी पुष्कल प्रयोग हुआ है। इससे प्रभावित होकर मराठी नाटककारा न और बहुत म नाटक हिन्दी म लिखे।[1] फिर भी इस शुद्ध हिन्दी नाटक और हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक मानना प्रमाण पुष्ट नही है।

इन्दर सभा और रहस

आगा हसन अमानत (सन् 1816 1858 ई) कृत इन्दर सभा का रचना काल 1853 ई माना जाता है। बतलाया जाता है कि इन्दर सभा गीतो भरा एक किस्सा था जो अमानत ने लिखा था। सब से पहले यह गीति नाटय मुशायरो म पढा गया और बहुत प्रशसित हुआ। प्रो रिज्वी के अनुसार दो वष बाद (1855 ई) म नाटक क कुछ प्रमियो ने बाजार क एक अहाते म मच पर इन्दर सभा गीति नाटय पश किया तो सारे लखनऊ मे इसकी धूम मच गई।[2] कहा जाता है कि नवाब वाजिद अली शाह (1847 87) ने इन्दर सभा खेलने के लिए लखनऊ के कसर बाग म मच बनवाया था और स्वय ने अभिनय म भाग लिया था।[3] श्री बलवन्त गार्गी ने भी वाजिद अली को एक निपुण नत्यक नतक सगीतज्ञ और साहित्यकार बतलाया है।[4] यह भी बतलाया जाता है कि जब यह बाजार म खेला गया तो उसम परियो का पाट भी लडको ने किया था। यहा तक कि नाम का नाम हा इन्दर सभा हो गया। अमानत की इस कामयाबी से मुतस्सिर होकर और लोगो न भी इन्दर सभाए लिखीं।[5] इन्दर सभा के मच के लिए विवरण मिलता है कि सामने कवल एक परदा रहता था जिसे लाल रग म

---

1 हिदी और प्रान्तिक भाषाओ का रगमच आदान और योगदान नागरी पत्रिका वष 1 अक 6 7 माच अप्रल 1968 डा अज्ञात पृ 53
2 रगमच श्री बलवन्त गार्गी प 187
3 डा सोमनाथ गुप्त प 17
4 रगमच श्री बलवन्त गार्गी प 185
5 हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्ण दास पृ 201 203

रंग लिया जाता था। दृश्य बदलने का प्रश्न नहीं था। एक बार मंच पर आ जाने के बाद राजा इन्दर वहीं अन्त तक जमा रहता था। विभिन्न दृश्यों की सूचना पर्दे बदलकर नहीं गीतों के माध्यम से दे दी जाती थी। अभिनय का प्रारंभ कविता पाठ से होता था।[1] कविता के बाद राजा इन्दर अपना परिचय स्वयं देते हुए मंच पर उपस्थित होता और इन्दर परियों के लिए आदेश देता। पात्रगण वस्तुओं, नौकर चाकरों नाटक का समय एवं कार्य व्यापार के ढंग की सूचनाएं स्वयं देते थे। इस प्रकार सूच्य कथावस्तु का प्रयोग इस नाटक में हुआ करता था। पात्रों में इन्दर (इन्द्र) उर्वशी, मनका आदि पोखराजपरी, लालपरी सब्जपरी गुलफाम, कालादेव लालदेव आदि बन कर आते थे। एक पात्र के हटते ही दूसरा पात्र मंच पर आ जाता था। कलाकार रागिनी के भाव को अभिनय द्वारा मंच पर प्रस्तुत करते थे। कभी कभी व अभिनय करते करते एकदम पथरा जाते और एक मौन झांकी के रूप में स्तब्ध हो जाते पूर्णतया चित्रवत्। गायकों की एक मंडली मंच के एक ओर घटा बैठी रहती। राग समय और नियमों के अनुसार गाया जाता था।[2] वाजिद अली शाह के समय कलाकारों के पूर्वाभ्यास (तालीम) की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। पात्रों के वस्त्राभरण कीमती होते थे। वहां सामग्री विभाग का भी प्रबन्ध था। आंगिक अभिनय जैसे पानी भरना स्नान करना मक्खन निकालना आदि के अभिनय नृत्य ताल एवं भाव सहित किए जाते थे।[3]

जन साधारण की मानसिक स्थिति और सांस्कृतिक चेतना का यह हाल था कि अनेक बुराइयों के होते हुए भी इन्दर सभा की लोकप्रियता बहुत बढ़ गयी।[4] यहां तक की कुछ लेखक न इसे हिन्दी का प्रथम "पदरियत मंच भी माना है।[5] श्री कृष्णदास ने लिखा है कि इन्दर सभा का स्वागत हिन्दी प्रेमियों के बीच अच्छा न हुआ। नीलमपरी, पोखराजपरी आदि शब्द उन्हें खटके। उन्हें पूरे नाटक में एक सस्तापन नजर आया जिसे व बर्दाश्त न कर सकते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 214 215

2 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 186

3 वही पृ 186 187

4 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 219

5 आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव डा उपेन्द्र नारायण सिंह पृ 234

इन्दर सभा के जवाब में बदर सभा' लिखा जो हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में खण्ड 6, संख्या 13 (जुलाई सन् 1879 ई में प्रकाशित हुआ।[1]

प्राचीनता की दृष्टि से इन्दर सभा का महत्व होते हुए भी शुद्ध हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में उसे स्वीकार करना असिद्ध ही है क्योंकि वह कभी भी हिन्दी नाटय का आदर्श अथवा अनुकरणीय नहीं बन पाया।

रहस को विद्वानों ने कत्थक जैसा एक नृत्य माना है। इसे लीला नाटयों में स्थान दिया जा सकता है। इसके प्रस्तुतीकरण के उल्लेख अवश्य मिलते हैं।[2] पर इसे शुद्ध नाटय रूप में प्रतिष्ठित किए जाने के तथ्य प्राप्त नहीं हैं।

नहुष

इसके रचयिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपाल चन्द्र (गिरधर दास) 1857 ई[3] अथवा 1841 ई[4] माने गए हैं। भारतेन्दु जी इसे हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं।[5] इसमें शुद्ध नाटय रीतियां (पात्र प्रवेश रंग निर्देश, अभिनय भाषा आदि) का प्रयोग हुआ है। नहुष भाषा की दृष्टि से प्रयोगशील है यद्यपि यह भी ब्रज भाषा नाटय परम्परा से सम्बद्ध है फिर भी यह छंद प्रधान नहीं है। इसमें काव्यात्मक प्रबंध शैली प्राप्त होती है। बीच बीच में कवि स्वयं वर्णन करने लगता है। इसकी प्रस्तावना नांदी प्ररोचना कथोद्घात, भरतवाक्य आदि विधान शास्त्र सम्मत हैं। इसी दृष्टि से विद्वानों ने नहुष को हिन्दी का प्रथम नाटक घोषित किया है। वास्तव में इसके अन्तर्गत भारतीय नाटय शास्त्र और पश्चिमी ट्रेजेडी का समन्वय दिखाई देता है किन्तु पूर्ण रंगमंचीय कृति के रूप में इसे सिद्ध कर पाना कठिन है।

प० शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत "जानकी मंगल' नाटक

यह नाटक मूलत शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत माना जाता है। इस नाटक के 1868 में खेले जाने का एक प्रमाण प्राप्त हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने

---

1 हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास पृ 215 216

2 धर्मयुग 10 मई 70 श्री रणवीर सिंह पृ 21

3 साहित्य कोष

4 हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास। डा सोमनाथ गुप्त, पृ 4

5 भारतेन्दु ग्रंथावली सम्पादक ब्रजरत्न दास भा I पृ 752

जानकी मंगल नाटक के मंचस्थ होने की तिथि 7 मई 1858 दी है[1] किन्तु यह मत इस ब्रिटिश म्यूज़ियम में प्राप्त फोटो कापी (4-4-1868) को इंगलैण्ड के एलन्स इण्डियन मेल में प्रकाशित) के अनुसार असिद्ध हो गयो है। सर्व प्रथम इस की सूचना इंगलैण्ड में छपी, फिर लखनऊ के नवजीवन (31 मई 1968) धर्मयुग (4 अप्रैल 1968) श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह द्वारा सम्पादित जानकी मंगल नाटक के रूप में (जून 1969) तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान (6 जुलाई 1969) को प्रकाशित हुई।

उक्त चित्र के अनुसार 3 अप्रेल 1868 ई (वि स 1925) को यह नाटक सर्वप्रथम काशी के मंच पर अभिनीत किया गया। अनेक विद्वानों की मान्यता है कि यह काशी के बुलानाला स्थित बनारस थियेटर[2] में खेला गया था। डा सोमनाथ गुप्त ने भारतेन्दु के 'नाटक' निबंध के आधार पर यह तिथि 1862 लिखी है।[3] श्री धीरेन्द्र नाथ सिंह इस नाटक का थियेटर रोयल" काशी में अभिनीत होना मानते हैं। कुछ विद्वानों के निरूपणानुसार वाराणसी में स्थानीय कबीर चौरा स्थित जो राम स्वामी बाग है उसी में अस्थायी मंच बनाकर यह नाटक प्रस्तुत किया गया था।[4]

इस नाटक की निम्नलिखित बातें ज्ञातव्य है—

(1) सूत्रधार का मंच पर आना और संस्कृत में नान्दी पाठ करना बाद में एक अभिनेत्री से वार्ता के मध्य इस नाटक का प्रस्तुत करने का उद्देश्य[5] बताना।

(2) नेपथ्य में कोलाहल उत्पन्न कर, सूत्रधार के द्वारा दर्शकों को राम लक्ष्मण के वाटिका में प्रवेश होने की सूचना देना। इसमें लेखक ने सूच्य कथावस्तु का प्रयोग किया है। इस घटना को लेखक ने आरंभ माना है। प्रथम दृश्य उद्यान का है।

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल,
2 जानकी मंगल नाटक सम्पादक धीरेन्द्र नाथ सिंह, पृ 54
3 An Extention Lecture on Development of Hindi Drama पृ 8
4 नागरी पत्रिका (वर्ष 1 अंक 6 7, मार्च अप्रेल 1968) पृ 6
5 जानकी मंगल नाटक सम्पादक श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह (भूमिका) पृ 65

(3) उद्यान म पार्वती प्रतिष्ठित हैं। पहले राम लक्ष्मण प्रवेश करते हैं। सीता की प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाधिकारी से पूछ कर फूल तोडने लगन हैं। तभी सीता अपनी सहेलियों के साथ प्रवेश करती है और पार्वतीजी को पूजन समर्पित कर फूल तोडने में व्यस्त हो जाती है। उनमे से एक सहेली फूल तोडते श्री राम लक्ष्मण को देख लती है और सीता जी के पास जाकर उनकी रूप चर्चा करती है। सीता सुन्बुद्ध भूल जाती है। कालांतर में श्री राम वहा पहुचते हैं और सीता के सौन्दय से विमुग्ध हो जाते हैं। कुछ देर बाद सीता अपनी सखियो की टोली सहित प्रस्थान कर जाती है।

इस दृश्य की मच सज्जा एव अभिनय की स्थितिया ढूढ लेना आवश्यक है। उद्यान का दृश्य सभवत पर्दे का रहा होगा, और उसमे फूल तोडने का भावाभिनय किया गया होगा। राम के सौन्दर्य का सुनकर सीता की स्थिति और सीता को देखकर राम का विमुग्ध हो जाना—ये कुछ ऐसे अभिनय स्थल हैं जिससे इस नाटक के अभिनय प्रधान होने का अनुमान होता है।

दूसरा दृश्य राज भवन का है जहा देश विदेश के सुसज्जित राजा सीता जी को ब्याह कर ले जाने की इच्छा से प्रतीक्षारत हैं। धनुष उठाने में केवल राम ही सफल होते हैं। सीता का विवाह राम से कर दिया जाता है और तीसरे दृश्य मे क्रुद्ध परशुराम प्रवेश करते हैं।

मच सज्जा, वेष भूषा, रगलेपन एव अभिनय क्षमता का इस दृश्य से भी आकलन किया जा सकता है।

इस नाटक म कई रगमचीय तत्व हैं जसे पात्र, मच सज्जा वेष विन्यास, मुख विन्यास, अक योजना, सूत्रधार नादी से प्रस्तावना–कथानक–प्रधानता रग-सकेत गद्यमय सवाद योजना गीत चमत्कार सयोजना स्वगत भाषण, सगीत, प्रबुद्ध दशक आदि। कहीं कही भाषा म क्षेत्रीयता का पुट है जैसे प 73 पर कल के स्थान पर "कल्ह, आवगी आदि का प्रयोग द्रष्टव्य है। वैसे सम्पूर्ण नाटक खडी बोली म है यह नाटक आर्य नाट्य सभा के द्वारा 26 8 1876 को प्रयाग मे एक बार फिर खेला गया था।[1]

इण्डियन मेल के अग्रेज समीक्षक ने इसे सस्कृत के हनुमन्नाटक पर

1 जानकी मगल नाटक स श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह पृ 59

आधारित माना है और डा देवर्षि सनाढ्य ने[1] इसके कथानक को वाल्मीकि रामायण से और तुलसीकृत जानकी मंगल से प्रभावित होकर लिखा गया बतलाया है किंतु श्री धीरेन्द्र नाथ सिंह दोनों उक्तियों का खंडन करते हुए इसके कथानक का आधार रामचरित मानस के प्रथम सोपान को बतलाते हैं और कवितावली तथा 'विनय पत्रिका' का उस पर प्रभाव निरूपित करते हैं और इस नाटक में जो कुछ नाटकत्व दिखता है उसका श्रेय वे तुलसीकृत 'रामचरित मानस' को देते हैं। लम्बे संवादों के कारण इसकी सक्रियता में बाधा अवश्य उपस्थित होती है।[2] कुछ काल्पनिक पात्रों (जिनका मानस में चित्रण नहीं है) का भी यहां समावेश किया गया है। उनके व्यक्तित्व प्रकाशन में भी कोई विशिष्टता नहीं आ पाई है। इस नायक के व्यक्तित्व के सामने अन्य पात्रों की अवमानना स्वाभाविक ही है। राम के कथन मानस की चौपाइयों के गद्यानुवाद जैसे हैं यथा मनोहर वृक्ष लगे हुए हैं इन पर चातक कोकिला चकोर इत्यादि पक्षी कैसी मीठी मीठी बोलियां बोल रहे हैं और देखो इसके मध्य में यह सरोवर कैसा रमणीय है।

इस नाटक के प्रत्येक मध्यान्तर में संगीतज्ञ अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर दर्शकों का मनोरंजन करते थे।[3] यह परम्परा हिन्दी रंगमंच में आज भी विद्यमान है। सम्प्रति यंत्र संगीत, लघुहास्य, एकाभिनय आदि का उपयोग किया जाता है। विदेशी नाट्य परम्परा में लम्बे नाटकों के मध्य इसी प्रकार के लघु हास्य कथानक प्रस्तुत किए जाते थे जो एक अंक के बराबर होते हैं। इसी प्रकार एकांकी नाटकों का प्रचलन आरम्भ हुआ। भारत के पूर्णांकी नाटकों के मध्यान्तर में संगीत और विशेषी पूर्णांकी नाटकों के मध्यान्तरों के मध्य छोटे प्रहसन दर्शकों को बांधे रखते थे।

उपर्युक्त तथ्यों और तत्वों के आधार पर "जानकी मंगल' को हिन्दी का प्रथम मंचित नाटक मानना निर्विवाद सिद्ध होता है। इस नाटक को हिंदी रंगमंच का प्रस्थान बिंदु कहा जा सकता है। इसकी प्रेरणा, प्रभाव अथवा प्रतिक्रियावश हिन्दी में अनेक प्रकार के साहित्यिक, असाहित्यिक पारसीक तथा लोक नाट्य प्रणालियों का जन्म हुआ जो रंगमंच के इतिहास में विचारणीय है।

---

1 हिन्दी के पौराणिक नाटक डॉ देवर्षि सनाढ्य पृ 121
2 जानकी मंगल नाटक संपादक श्री धीरेन्द्रनाथ सिंह पृ 61
3 वही, पृ 62

भारतेन्दुकृत विद्यासुन्दर नाटक

डॉ रस्तोगी भारतेन्दु के विद्यासुन्दर नाटक को हिन्दी का प्रथम साहित्यिक नाटक मानते हैं और भारतेन्दु को हिन्दी का प्रथम नाटककार।[1] साहित्यिक नाटक के माप दण्ड का निर्धारण करने के लिए उन्होंने नाटक में गद्य पद्यात्मक संवाद, नाटकीयता अभिनेयता पात्र-परिचय दृश्य परिवर्तन, पात्र प्रवेशादि तत्व स्वीकार किए हैं। उनकी दृष्टि में कृति चाहे अनूदित हो क्यों न हो जिसमें उपयुक्त तत्व विद्यमान होंगे वही कृति साहित्यिक कृति हो सकती है। विद्यासुन्दर की साहित्यिकता और अभिनेयता पर संदेह न करते हुए भी, इसे प्रथम मंचित हिन्दी नाट्य कृति नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि यह बंगला का छायानुवाद है, मौलिक हिन्दी नाटक नहीं।

सत्य हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु कृत सत्य हरिश्चन्द्र (1874 ई) को आचार्य श्याम सुन्दर दास बाबू ब्रजरत्नदास आदि विद्वान हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे अनुदित होने के कारण प्रथम नाटक मानने मे आपत्ति प्रकट करते हैं।[2] इसके मचन का जो प्रमाण प्राप्य है उसके अनुसार यह नाटक भारतेन्दु के द्वारा बलिया में खेला गया था और स्वयं भारतेन्दु ने उसमे हरिश्चन्द्र की भूमिका निभायी थी।[3] बाद मे दिसम्बर 1884 ई मे भी यह नाटक बलिया के ददरी के मेले म खेला गया था जिसमे भारतेन्दु बाबू एक दर्शक के रूप म विद्यमान थे।[4]

कुछ विद्वानों ने इन्दर सभा गोपीचन्द और जालन्धर आदि नाटकों को हिन्दुस्तानी का नाटक कहा है। अरबी फारसी एवं हिन्दी शब्दावली से युक्त नाटको को हिन्दुस्तानी नाटक कहा गया है और अरबी फारसी विहीन शुद्ध खड़ी बोली का हिन्दी नाटक। श्री रणवीर सिंह ने वाजिद अली शाह के रहस 'राधा

---

1 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डॉ गिरीश रस्तोगी पृ 70

2 महाराज विश्वनाथ सिंह कृत नाटक आनंद रघुनंदन' हिन्दी अनुशीलन वर्ष 22 अंक 3-4 जुलाई से दिसम्बर 1969 डॉ लक्ष्मी नारायण दुबे, पृ 46

3 नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6-7 मार्च अप्रेल 1968 पृ 28

4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डॉ चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 264

कन्हैया का किस्सा" को भी हिन्दुस्तानी नाट्य कहा है जिसका प्रस्तुतीकरण लखनऊ के केसर बाग में हुआ था।[1]

स्पष्ट है कि भाषागत अन्तर को प्रकट करने के लिए हिन्दी और हिन्दुस्तानी की संज्ञा इन नाटकों को दी गयी है। कहीं कहीं मतविरोध भी है जैसे डा शारदा वेगलकार ने 'श्री कृष्ण चरित्रो पाख्यान" को भी हिन्दुस्तानी भाषा एव खडी बोली युक्त कहा है।[2]

श्री धीरेन्द्र नाथ सिंह ने 'कृष्ण चरित्रो पाख्यान' एवं राजा गोपीचन्द' को 'हिन्दुस्तानी हिन्दी दोनो कहा है और यह भी बतलाया कि इन्होंने हिन्दी रंग परम्परा का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं किया।[3]

वस्तुत हिन्दुस्तानी कोई पृथक भाषा नहीं वह हिन्दी की ही एक शैली है। अत इन्हें हिन्दी मंच में ही ग्रहण करना युक्तियुक्त है। कुछ विद्वानों ने हिन्दी रंगमंच की विधा को साहित्यिक असाहित्यिक श्रेणियों म भी विभक्त किया है। एक विद्वान लेखिका (मल्लिका कपूर) ने लिखा है—साहित्यिक रंगमंच की नींव रखने वाला प्रथम ऐसा नाटक, जिसने हिन्दी रंगमंच की परम्परा को आकार एव गति प्रदान की शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत जानकी मंगल है।[4] इससे पूर्व अल्प आयोजन युक्त नाटक अवश्य अभिनीत होते रहे होंगे। पर वस्तुत जानकी मंगल ही एक ऐसा नाटक है जिसने हिन्दी रंगमंच को एक निश्चित रूप दिया है। वस्तुत रंगमंच को साहित्यिक, असाहित्यिक रूपों म विभक्त कर के उसका अवमूल्यन करना है क्योंकि रंगमंच एक ऐसी बडी विधा है जिसमें साहित्यिक असाहित्यिक (साहित्येतर) सभी प्रकार की कलाएं समाई हुई हैं। अत अधिक से अधिक रंगमंच के दो मुख्य विभाग माने जा सकते हैं (1) अनभिनेय पक्ष। (2) अभिनेय पक्ष। अनभिनेय पक्ष में नाट्य वस्तु के भावोदय से लेकर उसके

---

1 धर्मयुग (10 मई 1970) श्री रणबीर सिंह पृ 21

2 हमारी नाट्य परम्परा, श्री कृष्णदास पृ 687

3 जानकी मंगल नाटक 'आत्म निवेदन', सम्पादक धीरेन्द्र नाथ सिंह

4 शुतुरमुर्ग साप उतारा छपते छपते (हिन्दी रंगमंच शतवार्षिकी पत्रिका, अनामिका, कलकत्ता) में लिखित एक लेख 'हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक जानकी मंगल से साभार

लेखन प्रकाशन आदि सम्पूर्ण तत्वो का अध्ययन किया जा सकता है। इसमे लेखक, परिस्थिति परवश लेखन कार्य, द्रव्य व्यवस्था, मुद्रण प्रकाशन पाठक, प्रतिक्रियाए आदि विविध रूप सम्मिलित हैं किन्तु इसके बाद का पक्ष रगमचीय और अभिनेय पक्ष है। रगमचीय (अभिनेय) पक्ष म प्रदर्शन तत्व बहुत महत्व पूर्ण है। किसी भी कृति का कलात्मक प्रदर्शन हो सकता है किसी भी असाहित्यिक कही जाने वाली कृति अथवा लोककला (जिसका साहित्यिक, अथवा लिखित रूप उपलब्ध नही है। को भी मच पर प्रदर्शित किया जा सकता है। अलिखित नाटक, लोक नृत्य और एकाभिनय भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियां (जिन्हे अग्रेजी में मिमिक' कहते हैं) आदि भी मच पर प्रस्तुत होते हैं। अस्तु स्पष्ट है कि रगमंच से असाहित्यिक अथवा अरगमचीय पक्ष को पृथक नही घोषित किया जा सकता।

कृति की नवीनता रगमचीय पक्ष का एक छोटा सा भाग है। उसके दूसरे पक्ष भी ध्यान देन योग्य हैं। वे हैं—निर्देशक पात्र चयन, पूर्वाभ्यास, अर्थ व्यवस्था मच व्यवस्था, दशक प्रस्तुतीकरण और समीक्षा। अत रगमचीय पक्ष इतना प्रबल एव विशाल है कि नाटक को उससे सबद्ध किए बिना पूर्णता प्राप्त नहीं होती। दूसरी बात यह है कि नाटक केवल पढा जाये तो एक समय म एक ही पाठक पर प्रभाव डालता है जबकि उसका प्रदशन हजारों दशको को प्रभावित करता है।

इसलिए यदि हम प्रदशन तत्व को ही मापदण्ड मान कर चलेंगे अथवा लिखित नाटक को ही रगमंच का मूल रूप मान कर उसे हिन्दी का प्रथम रगमंचीय नाटक घोषित करेंगे तो यह न्याय सगत नही होगा। अस्तु यह कहा जा सकता है कि हिन्दी रगमच के कई तत्व 12वी शताब्दी मे प्रकट हो गये थे जो घटते-बढ़ते 15वी 16वी शताब्दी तक पहुँचे और पुन लीला रगमचो के रूप में पूर्ण रूपेण प्रकट होकर हमारे सामने आए। डा कु चन्द्र प्रकाश सिह जी ने लिखा है कि हिन्दी नाटक का उद्भव पद्रहवी और सोलहवी शती म लोक धर्मी नाट्य परम्परा के नव्योत्थान का सहारा पाकर रासलीला और नौटकी जसे अभिनय रूपो के उत्सग मे लीला नाटक आदि के रूप में हुआ।[1] 15वीं से 19वी शताब्दी तक हिन्दी की यह रग परम्परा हम लीला नाटकों मे दिखाई देती है। इसके उत्तरार्द्ध मे भारतेन्दु का उदय होता है जहां से हिन्दी रगमच की दिशा सही रूप में उभर

1 दे हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा, पृ 175

कर सामने आती है। व्यवस्थित नाट्य लेखन तथा नियमित रंगमंच का आरंभ निःसंदेह भारतेन्दु युग से माना जायगा फिर भी हिन्दी रंगमंच की नींव बड़ी पुरानी है। अलिखित नाटकों और अनुलिखित रंगमंचीय प्रदर्शनों को भी इस अध्ययन सीमा में स्वीकार करना समीचीन नहीं होगा। निष्कर्ष यह है कि प्राप्त प्रमाणों के अनुसार हिन्दी रंगमंच अर्थात् हिन्दी की मौलिक नाट्य कृति का प्रथम अभिनय 'जानकी मंगल नाटक' (1868 ई) से ही सिद्ध होता है।

अध्याय ५

हिन्दी का पारसी रंगमंच

पारसी रंगमंच का अर्थ है--पारसीक कलाकारों द्वारा स्थापित अथवा पारसीक नाट्य कला से उत्प्रेरित मंच। यह मंच भारतीय और फारसी कथाओं, परम्पराओं और रंग शिल्पों का समन्वयकर्ता है। इसकी सृष्टि चूंकि भारतीय जनता के लिए हिन्दी भाषा के माध्यम से हुई अतः यह हिन्दी का ही मंच कहा जाएगा।

विद्वानों के मतमतान्तरों का अध्ययन करने से पारसी रंगमंच का आदिकाल निर्धारित किया जा सकता है। इसलिए उनके विचारों को यहां पर उद्धृत करना आवश्यक है। बहुधा विद्वानों ने पारसी मंच के पूर्व बंगाली और गुजराती रंगमंच के विद्यमान होने की बात स्वीकार की है और इसीलिए बंगाली रंगमंच के बाद पारसी रंगमंच का जन्म हुआ बताया है।[1] अधिकतर विद्वानों ने पारसी रंगमंच का उद्गम स्थान बम्बई सिद्ध किया है और उसके मुख्य केन्द्र बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली को माना है। इस संबंध में विद्वज्जनों की उक्तियाँ उद्धरणीय हैं--डा. गोविन्द चातक और श्री कृष्णदास आदि विद्वानों ने पारसी रंगमंच का आरंभ इन्दर सभा के प्रभाव से माना है।[2] डा. रस्तोगी ने डा. रणधीर उपाध्याय की शोध को स्वीकार करते हुए 1867-68 ई. में गुजरात के सुप्रसिद्ध नाटककार एवं पत्रकार के खुशरू नवरोजी काबराजी द्वारा बम्बई में संस्थापित विक्टोरिया नाटक मंडली

---

1 हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और विवेचन : डा. गिरीश रस्तोगी, पृ. 110

2 प्रसाद : नाट्य और रंगशिल्प : डॉ. गोविन्द चातक, पृ. 255

हमारी नाट्य परम्परा : श्री कृष्णदास, पृ. 203

को प्रथम नाट्य संस्था माना है। इस नाटक मण्डली में दादा भाई ठूठी, खुरशीद बाला, मेरवान बानी वाला नसरवानजी फरामजी मास्टर, पेस्तनजी फरामजी मादन आदि कलाकार थे जिसका उत्पत्तिकाल 1862 माना गया है। किन्तु इससे भी पूर्व 1861 में एल्फिन्स्टन नाटक मण्डली की उत्पत्ति बतलाई गयी है।[1] कुछ अन्य विद्वानों ने पारसी थियेटर का काल 1853 ही स्वीकार किया है जिसका प्रभाव भारतवर्ष में सब जगह पड़ा। डा. लाल के मतानुसार तिजारती — व्यवसायी कौम (पारसी) ने 1853 में एक के बाद एक नाटक कम्पनियों को स्थापित करना प्रारंभ कर दिया और दशकों के मन पसन्द नाटकों को लेकर सारे भारतवर्ष में भ्रमण किया। इस तरह पारसी थियेटर किसी रंगमंच विशेष का नाम न होकर उन्हीं कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत नाट्य आयोजनों की समवेत सत्ता हैं।'[2] इस प्रकार की मान्यता से 1853 में बहुत सी पारसी नाटक कम्पनियों के और उनके फैले हुए बहुत से नाट्य आयोजनों के होने का संकेत देते हुए (जिसे पारसी रंगमंच कहा गया है) डा. लाल ने अंग्रेजी नाट्य प्रवृत्तियों के प्रभाव से अल्फ्रेड, न्यू अल्फ्रेड कोरिन्थियन, कारोनेशन, थियेट्रीकल विक्टोरिया, ओरिजिनल आदि कम्पनियों के विकसित होने की बात कही है जबकि डा. विद्यावती ल. नम्र ने प्रथम और केवल एक ही नाटक कम्पनी का नाम 'पारसी नाटक मंडली' बतलाया है जिसके संरक्षक दादा भाई नौरोजी थे। इन दोनों में से किसी विद्वान ने यह नहीं बतलाया कि वह प्रथम नाटक कौन सा था जो अक्टूबर 1853 का अथवा सन् 1853 में कभी खेला गया? यह संकेत अवश्य मिला है कि प्रारम्भ में स्त्रियां नाटक देखने नहीं आती थी फिर उनके लिए विशेष फैमिली शो किए जाने लगे। नाटक के शौकीनों ने शेक्सपियर के नाटक अंग्रेजी व गुजराती में प्रस्तुत करने के बाद सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया और नये-नये प्रयोगों के साथ ईरानी भाषा के सामाजिक नाटक ईरानी पोशाकों में प्रस्तुत किए।[3] इन तथ्यों के आधार पर तो यही प्रतीत होता है कि 1853 में पारसी नाटक हुआ करते थे और पुरुष दर्शक वर्ग स्त्री दर्शक वर्ग अलग अलग रूप से नाटक देखने आते थे अथवा विशेष फैमिली शो का अभिप्राय यह भी

---

1 नागरी पत्रिका (अंक 6-7 1968) डा. 'अज्ञात', पृ 104 एवं 107

2 'वह पारसी थियेटर वास्तव में क्या था' धर्मयुग (15 2-60) डा. लक्ष्मी नारायणलाल पृ 20

3 हिन्दू ड्रामेटिक कोर और पारसी थियेटर की वास्तविकता धर्मयुग (29 3-70) डा. विद्यावती पृ 18

हो सकता है कि जिस दिन फमिली शो होता उस रोज सभवत भद्दे नाटय प्रदर्शन अथवा नाटयों क भद्दे स्वरूप को प्रदर्शित नहीं किया जाता होगा और उस समय पारसियो क स्वतत्र नाटय प्रदर्शनो के साथ साथ अग्रेजी नाटको के गुजराती और ईरानी रूपा तर भी प्रस्तुत किय जाते थे। कुछ भी हो डा रणवीर उपाध्याय एव डा गि इश रस्तोगी की पारसी रगमच के आरभिक काल (1867 68) की मा यता को उपयु क्त विद्वानों द्वारा अमा य अवश्य कर दिया गया है।

इस सदभ म श्री बलव त गार्गी की उक्ति 'पारसी—प्राचीन ईरान के अग्नि पूजक आठवीं स ी म भारत आए "[1] बहुत महत्वपूर्ण है। इस उक्ति की पुष्टि श्री नमिचन्द्र जन के इस कथन स भी होती है कि पारसी रगमच 'हिन्दी क्षेत्र मे मूलत अजनबी था बाहरी और विजातीय था।' [2] इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि जब पारसी लाग भारत मे आए तब 8 वी सदी में भारत वष म सस्कृत नाटय प्रदर्शनों का उत्तर काल था और लोक नाट्यो के स्वरूपो के अकुर भी यत्र-तत्र फूटने लग थे। प्रश्न यह उठता है कि 8 वा से लेकर 19 वीं सदी (1200 वर्ष) की अवधि म क्या पारसी लोगों ने कभी अपने नाटय प्रदशन किए ही नहीं ? क्योंकि केवल कुछ-एक विद्वानो ने लिखा है कि 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे पारसी थियेटरों की खूब धूम थी , [3] किन्तु इससे पारसी नाटय परम्परा के काल क्रम का पता लगाना बडा दुस्कर प्रतीत होता है। सम्भव है कि इनकी पूव नाटय परम्परा कुछ और ही रही हो और भारत म आकर धीरे धीरे इन्होन अपनी नाटय प्रवत्तियों मे समयानुकूल रद्दोबदल किया हो। सम्भवत 8 वी से 19 वा सदी का काल पारसियो का भी नाटयकाल रहा हो। इस अवधि में पारसियो का नाटयारम्भ काल निश्चित किया जा सकता है सम्प्रति 1853 को हि दी क पारसी रगमच का आरम्भिक काल मान लन में आपत्ति नही होनी चाहिए। इस प्रकार पारसी रगमच का कुल 8-10 थियेट्रिकल कम्पनिया को हिंदी रगमच का सूत्रपात करन का श्रेय मिलता है।

पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा प्रदर्शित नाटयों की विषय वस्तु अधिकतर पौराणिक अथवा धार्मिक ही होती थी, परन्तु बीच बीच मे हास्य (कामिक्स) अथवा

---

1 रगमच श्री बलवन्त गार्गी पृ 169

2 रग दशन श्री नेमिचन्द्र जन पृ 199

3 हिंदी नाटक डा बच्चनसिंह पृ 18

प्रहसनों को प्रस्तुतकर दर्शकों में व्याप्त बस्ता को शामिल करने का प्रयास [1] भी किया जाता था। दूसरे दृश्य को जमाने के लिए भी बीच बीच में प्रहसनों का प्रयोग किया जाता था। इन नाटकों में अधिकतर पौराणिक और सामाजिक सुधार सम्बंधी कथावस्तु होती थी। [2] जनता में अधिक लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए पारसियों ने तत्कालीन प्रयुक्त लोक भाषा (हिंदुस्तानी) का प्रयोग किया, इसीलिए श्री नारायण प्रसाद 'बेताब' कृत महाभारत में लिखा है —

न खालिस उर्दू, न ठेठ हिन्दी, जबान गोया मिली जुली हो।
अलग रहे दूध से न मिसरी, डली-डली दूध से घुली हो। [3]

पारसी रंगमंच के स्त्रोत

पारसी रंगमंच में कई कलाओं का सम्मिश्रण है। अतिमानवीय दृश्य परियोजना को शेक्सपीरियन रंगमंच से ग्रहण किया गया है। [4] नाट्य प्रदर्शनों के बीच-बीच में प्रहसनों का प्रदर्शन पाश्चात्य एकांकी की उद्भव सम्बन्धी विचारधारा को स्पष्ट करता है।

भड़ैंपन का कारण भी इन्हीं प्रहसनों को ठहराया गया है। [5] पारसी रंगमंच से पूर्व बंगाली, गुजराती और मराठी रंगमंच का थोड़ा सा इतिहास मिल जाता है। कदाचित इसलिए साधन विहीन (पारसी) रंगमंच ने मराठी एवं अंग्रेजी साधना की शिक्षा ली और इसी प्रकार पारसी थियेटर ने नाटक के अन्त में 'फार्स' दिखाने की पद्धति को विष्णुदास भावे की नाटक पद्धति से अपनाया था। [6] यहां तक कि मराठी नाटककारों (राम गणेश गडकरी आदि) की नाट्य कृतियों का पारसी हिंदी नाटककारों बेताब आदि पर सीधा प्रभाव पड़ा है। इसके लिए गडकरी के पुण्य प्रभाव और पं. बेताब के 'जहरी सांप' का तुलनात्मक अध्ययन करणीय है। पारसियों ने तो अंग्रेजी की अभिनय कला को भी सीखा और

---

1. हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 613 614
2. हिन्दी नाटक सिद्धांत और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 113
3. हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 613
4. हिन्दी नाटक डा बच्चनसिंह पृ 18
5. हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 614
6. धर्मयुग (29-3-70) डा विद्यावती पृ 18

समझा।[1] पारसी नाटक की मुख्य श्रोत थी पारसियो की निजी बुद्धि क्योंकि इन्होने भारत मे रहते हुए भारतवासियो की प्रवृत्तियो एवं मन-स्थितियो की नब्ज पहचानी और इससे धनोपार्जन करके उदरपूर्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें पता था कि भारतवासी नाटक देखने के बड़े शौकीन हैं अतः उन्होने तत्कालीन रंगमंचो से विविध तत्व ग्रहण किए-अंग्रेजो से चमत्कार प्रदर्शन एवम् प्रहसन लेकर हिन्दुओ की मनोवृत्तियों के साथ तादात्म्य स्थापित करके सामाजिक पौराणिक कथानको मे उन्हें सजोया और तकनीक बंगाली, गुजराती, मराठी रंगमंचो से प्राप्त कर इन्होने अपने इस कलात्मक व्यापार को विकसित किया। उनका यह साहित्यिक या कलात्मक व्यापार पारसी व्यापार की जगह शनै शनै पारसी रंगमंच के रूप मे प्रचलित हो गया। पारसियों ने स्पष्ट कहा है कि हम यहा रुपये पैदा करने आए हैं,कुछ साहित्य भण्डार भरने नही। देशोद्धार और समाज सुधार का ठेका हमने नही ले रखा है। हम तो जिसमे रुपया मिलेगा, वही करेंगे।[2]सिंध से मे आए सिंधियो ने जिस प्रकार भारत मे अनेकानेक व्यापारो को खूब बढाया है, उसी प्रकार पारसियों ने भी यह साहित्य व्यापार बढाया जिसे आगे चलकर साहित्य विधा स्वीकार कर लिया गया।

अपने नाटय व्यापार की वृद्धि के लिए उन्होंने संग्राहिक वृत्ति अपनाई। इस बटोर वृत्ति द्वारा उन्होने लोक नाटयो से भी बहुत कुछ ग्रहण किया और संस्कृत हिन्दी रंगमंच (रामलीला कृष्ण लीला) की भी शरण ली। पारसियो के नाटको मे गद्य के साथ साथ पद्य का प्रयोग प्राय नौटंकिया पद्धति पर आधारित है। श्री कृष्णदास ने लिखा है कि बोलते बोलते फौरन ही कविता आरम्भ हो जाती है।[3] चुटीले संवाद बोलते बोलते पद्य मे बोल जाना अथवा शेर सुना देना[4] भी लोक नाटयो के साथ साथ मुसलमानी प्रभाव होता है। मध्ययुग मे मुस्लिम साम्राज्य का सार्वत्रिक प्रभाव था। उनके शेर शायरीयुक्त साहित्य को बहुत अधिक मात्रा मे पारसियो ने अपनाया था। यही कारण था कि 'शीरी फरहाद' 'लैला मजनू' जैसे नाटक भी प्रस्तुत किये जाते थे। यहा तक कि हल्की किस्म के शेर भी अपनाये

---

1 धर्मयुग (29-3 70) डा विद्यावती पृ 16

2 हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास पृ 615

3 वही, पृ 610

4 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 114

गये और 'मिलवर किंग' जैसे नाटकों मे कुछ इस प्रकार की तुक बंदियों का प्रयोग भी किया गया है जैसे —

देदे माना भर भर प्याला, पीने वाला हो मतवाला।
बादल बरसे काला-काला, फूना आखों में गुल्लाला। [2]

इनके नाटका का प्रारम्भ प्राय संस्कृत नाटकों के नांदी पाठ या अंग्रेजी के कोरस अथवा लोकनाटकों की वन्दना के समान पद्य से ही होता है। उदाहरणार्थ—

हर-हर महादेव शंकर त्रिपुरारी।
भस्म अग भुजग लाल तिलक चन्द्र शोभित भाल।

नाटकों का अंत भी प्राय गीत के साथ किया गया है। स्पष्ट है कि संस्कृत नाटकों की 'भरत वाक्य' पद्धति को इन नाटकों मे ग्रहण किया गया है। [3] पारसी सवाद योजना पर हिन्दी के काव्यों की स्पष्ट छाप द्रष्टव्य है। यथा—

राजकुमारी —आपका निवास स्थान ?
भागीरथ—पास म प्रेमी हो तो स्वर्ग उद्यान, नहीं तो उजड़ा मैदान।

राजकुमारी–आपका नाम ?
भागीरथ–प्रेम में बदनाम।

इस प्रकार की सवाद योजना केशव आदि कवियों मे भी प्राप्य है। लीला रंगमंच के बाद और पारसी रंगमंच के पूर्व हिन्दी रंगमंच अपनी बिखरी स्थिति में दिखाई देता है। नाटककार और प्रस्तुतकर्ता दोनों की अपनी अलग और दयनीय स्थिति है। यह हिन्दी रंगमंच का शैशव काल है। डा लक्ष्मीनारायणलाल का कथन है कि इस शिशु को अहंकारी पिता (नाटककार) और अपनी सहिष्णु बाजारू मां (प्रस्तुतकर्ता) से ऐसा निर्मम परित्याग मिला कि समाज से इसे पारसी अनाथालय में जाना पड़ा।[3] पारसी रंगकर्मियों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और नाटककार एवं प्रस्तुतकर्ता के मिलने से जो ख्याति प्राप्त हो सकती है उस प्रवृति को अच्छी तरह समझा और अपनाया। यही कारण है कि पारसी कम्पनियां अच्छा नाटककार रखने के लिये एक दूसरे से टक्कर लेती थी।[4]

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 611
2 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 114-115
3 रातरानी-भूमिका डा लक्ष्मी नारायण लाल पृ 11
4 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 170

पारसी रंगमंच के स्त्रोत के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि पारसी नाटक यूरोप की नाटकीय तकनीकों और भारतीय लोक नाटकों स्वांगों जुलूस-झाकियों की खिचड़ी था।[1] वास्तव में यह मंच भारतीय ईरानी और यारूपीय कला का संगम है। इसने संस्कृत नाट्यशास्त्र के पद्यात्मक संवाद ग्रहण किए अंग्रेजी नाटकों का कुतूहल रोमांस और ट्रेजडी शिल्प स्वीकार किया और फारस की कथाएं भी अपनाई। इसने भारतीय परम्पराओं पर विदेशी संस्कार अंकित किए अथवा विदेशी कथानकों को भारतीय परिवेश में घटित किया। तात्पर्य यह है कि इस नाट्यशिल्प ने तत्कालीन जनरुचि के अनुकूल कई कलाओं वस्तुओं और शिल्पों का सम्मिश्रण करके एक पृथक स्थान स्थापित किया जो, हिंदी रंगमंच का एक नया प्रयोग तथा प्रकार सिद्ध हुआ।

पारसी रंगमंच के मूल तत्व

कथावस्तु—

इन नाटकों के कथानक अधिकतर पौराणिक एवं धार्मिक होते थे। "गंगा अवतरण, गणेश जन्म, कृष्ण सुदामा महाभारत, सत्य हरिश्चन्द्र, सूरदास सीता बनवास, मधुर मुरली, श्रवण कुमार धर्मी बालक, वीर अभिमन्यु आदि नाटक अधिक मात्रा में खेले जाते थे। इसके अतिरिक्त प्यार शायरी प्रधान रोमांचक कथानकों से परिपूर्ण नाटक जैसे शहीदे नाज मीठी छुरी ख्वाब हस्ती आग तेगे सितम, दिलवर सिंग हीर रांझा लैला मजनूं शिरी फरहाद आदि भी खेले जाते थे। पारसियों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी नाट्य कम्पनियों के नाम तो अंग्रेजी के अनुकरण पर रखे किन्तु नाटकों के कथानक भारतीय जीवन से ग्रहण करते थे। पारसी नाट्य प्रदर्शन का प्रारम्भ कोरस से होता था कविता तथा गीतों की अनावश्यक भरमार और अनुप्रासमयी भाषा की भी प्रधानता थी। शेक्सपियर के अनुकरण पर दोहरे कथानक की योजना भी की जाती थी। अंक के लिये 'एक्ट' न ॰ का प्रयोग भी किया जाता था।[2] इन नाटकों के कथावस्तु के विषय में कहीं विश्वस्त चर्चा नहीं मिलता। इनमें कथावस्तु नाममात्र की होती थी। चमत्कार प्रदर्शन ही मुख्य माना जाता था। लेखकों की ऐसी मान्यता रही

---

1 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 171

2 हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि डा गिरिजासिंह पृ 14

है कि "चमत्कार उन्हें नाटक के प्लोट उसकी भाषा, अथवा रस भावना के सबंध में अभीष्ट नही था। उन्हें तो केवल अपनी दर्शक मण्डली में आश्चर्य उत्पन्न करने और इस प्रकार उन्हें अपना ग्राहक बनाये रखने की धुन सवार थी। विज्ञापनों मे भी वह यह करते। नये सीन सीनेरी से युक्त" नाटक दिखाना ही उनका ध्येय था।[1]

पात्र—

पारसी थियटर के एक्टर के लिये गाना, नाचना, तलवार चलाने का ज्ञान आवश्यक समझा जाता था।[2] उसका कर- काठ और चेहरा मोहरा प्रभावशाली होता था। *वह घण्टो गाने के बोलने का अभ्यास करता था। स्वर का विशेष ध्यान* रखा जाता था। बड़े एक्टर किसी पराए व्यक्ति के हाथ से पान या कोई और खाने पीने की चीज नही लेते थे। एक्टर की आवाज् ऊंची और भुरभुरी होती थी। दो-दो हजार दर्शकों से भरे हुए पण्डाल में ऐक्टर की आवाज आखिरी दर्शक तक भी साफ पहुचती रहती थी। स्त्री पात्र का अभिनय करने वाले एक्टर लम्बे-लम्बे बाल रखते। दरबार मे नाचने वाली सखिया छोटी आयु वाले छोकरे होते थे। मुख्य पात्रो के अभिनय के लिये एक्टरों की दो दो जोड़िया होती थी। एक अच्छी कम्पनी के पास 100 से 150 तक कलाकार होते थे।[3] ऐक्टर खास खास पात्र के अभिनय के लिये प्रसिद्ध होते थे।[4] पुरुष कलाकार एवम् स्त्री कलाकार दोनो ही काम करते थे। श्री कृष्णदास ने मिस खुरशीद और मिस मेहताब जैसी सुप्रसिद्ध नर्तकियों की भी चर्चा की है।[5] मिस कज्जन, शरीफा, पेशेंस कूपर आदि मादन थियेटस की प्रमुख स्त्रिया थी, इसमे कुछ गोरी मेमे भी काम करती थीं। कभी कभी स्त्रिया पुरुष की भूमिकाएं भी करती थी। अधिकतर देखा गया है कि कम्पनी के मालिक भी कामदी त्रासदी के कुशल अभिनेता होते थे।[6] उनमे गुरशद जी बल्ली वाला,

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 608
2 रंगमंच श्री सवदानन्द पृ 27
3 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 174
4 *रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 174-175*
5 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 604 तथा नागरी पत्रिका वर्ष 1, अंक 6 7 मार्च अप्रैल 1968 पृ 108
6 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास, पृ 604

कावसजी खटाऊ साहराब जी मुन्नी बाई,[1] मास्टर फिदा हुसेन उर्फ शंकर नरसी[2] आदि सफल अभिनेता और निर्देशक रूप में प्रसिद्ध हैं। कुछ नाटक तो इन मुख्य अभिनेताओं के ख्याति प्राप्त अभिनय के कारण ही चलते थे। श्री रुद्र काशिकेय ने हरीकृष्ण जौहर और श्रीकृष्ण हसरत के अभिनयों की चर्चा की है जो पारसी कम्पनियों से सम्बद्ध थे।[3] डा उपेन्द्र नारायणसिंह ने जुबली कम्पनी (1877 ई) के संदर्भ में मिस जोहरा महताब आदि प्रसिद्ध नर्तकियों का उल्लेख किया है।[4] मुन्नी बाई ने सरस्वती निरंजन सीता एवम् पार्वती की भूमिका में यश प्राप्त किया तो फिदा हुसेन भी नरसी की भूमिका कर शंकराचार्य एवम् मदन मोहन मालवीय जैसे महान् देशोद्धार द्वारा 'नरसी' की उपाधि से विभूषित हुए। यह भी ज्ञातव्य है कि कोई भी अभिनेता नशा करके मंच पर नहीं आ सकता था।[5] उन्हें कड़े अनुशासन में रहना पड़ता था। कलाकारों को वेतन भी अच्छा मिलता था।

निर्देशक

पारसी कहानियों के निर्देशक अभिनय और अनुभव के पश्चात ही बनाये जाते थे। सफल अभिनेता दीर्घकाल बाद निर्देशन का कार्य भार संभालते थे किन्तु निर्देशक बन जाने के पश्चात भी वे नाटक को नये कलाकारों के भरोसे नहीं छोड़ते थे। वे मुख्य भूमिकाएं स्वयं ही निभाते थे।

पूर्वाभ्यास भी खूब कराया जाता था। कलाकारों को अपने अभिनय को चमकाने अथवा प्रशंसा प्राप्त करने हेतु पूर्वाभ्यास करते रहने की लगन थी। निर्देशकों को तत्कालीन जनरुचि का पता था अतः उसी के अनुकूल वे नाटक का

---

1 नक बानु टी खरास साप्ताहिक हिन्दुस्तान (2 8-70), श्री युगल किशोर मस्करा पुष्प पृ 27

2 भारतीय रंगमंच का अप्रतिम अभिनेता धर्मयुग (27-8-67) श्री युगल किशोर मस्करा पृ 18

3 नटराज नगर के नट नाटक और कलाकार नागरी पत्रिका (वर्ष 1 अंक 6–7 मार्च अप्रैल 1968) पृ 93

4 आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव डा उपेन्द्र नारायणसिंह पृ 235

5 द धर्मयुग (27-8-67) पृ 18

चयन करते थे। पारसी नाट्यविधा में हमें नाटककार एवम् निर्देशक के घनिष्ट सम्बन्ध का परिचय मिलता है। पारसी निर्देशकों ने नाट्य प्रस्तुतीकरण की जिस परम्परा के लम्बे नाटकों के बीच प्रहसन, चमत्कार प्रयोग मिली जुली भाषा को विकसित किया वह आज भी विद्यमान है। नारी पात्रों को मंच पर लाने का श्रेय इन्हीं पारसी निर्देशकों को है। इन प्रस्तुतीकरण में भद्देपन के दोषारोपण से ये बच नहीं सकते। यद्यपि यह सब व्यावसायिक वृत्ति और जनरुचि के कारण ही हुआ। फिर भी यदि निर्देशक चाहते तो जनरुचि में परिवर्तन ला सकते थे। पारसी निर्देशकों में 100 150 कलाकारों को अनुशासन में रखने की क्षमता थी और यही रूप आगे चलकर हम पृथ्वीराज कपूर में देखते हैं। पारसी मंच पर पुरुष निर्देशक तो थे ही किन्तु विद्वानों की मान्यता है[1] कि मुन्नी बाई भारत का प्रथम निर्देशिका भी थी जिसने पारसी नाट्यकाल में अपने सफल निर्देशन में प्रसिद्ध पाई। एक भूमिका के लिए दो अभिनेताओं को तैयार करने की सूझ भी पारसी निर्देशकों के पास थी जिसका प्रयोग वे प्रायः करते थे।

दर्शक वर्ग

पारसी काल तक संस्कृत नाट्य परम्परा समाप्त हो चली थी। यत्र तत्र लोक नाट्यों का प्रचलन प्राप्य था। यवनों के आगमन के कारण दर्शकवर्ग का कला प्रेम कुछ दब गया था। नयी सामाजिकता के साथ साथ उन्हें मनोरंजन की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति पारसी रंगमंच ने की। वर्ग का चित्रण करते हुए डा लाल ने लिखा है—'भावनात्मक और मानसिक स्तर से यह एक ओर शुद्ध भारतीय, विशुद्ध हिन्दु होने का स्वप्न देख रहा था। दूसरी ओर सुदूर पूर्व के जीवन स्वप्नों को अपने आप में भर लेना चाह रहा था, यह एक ओर सुधार के लिए तड़पा था। दूसरी ओर सर्वथा न्यू के प्रति लालायित था'[2] ऐसी स्थिति में पारसियों ने उन्हें जो कुछ भी दिखाया उसे उन्होंने प्रशंसा एवम् रुचि का विषय माना। निर्देशकों का नाटय विषय चुनने का ढंग तथा साथ में चमत्कार प्रयोग विधि का पालन कुछ ऐसे प्रयास थे जिसमें भारतीय दर्शक खो जाते थे।

---

1 'नेक बानु की खराम '' साप्ताहिक हिन्दुस्तान (2 8-70) श्री जुगलकिशोर मस्करा 'पुष्प' पृ 27

2 वह पारसी थियेटर वास्तव में क्या था ? धर्मयुग (15-2 70) डा लक्ष्मी नारायण लाल पृ 21

अधिकतर दर्शकों की यह स्थिति थी। दर्शक मण्डली इन अद्भुल दृश्यो को देखकर प्राय चकित और मन मुग्ध हो जाती थी। अभिनय के गुण दोष आदि की परख ता पहले भी नही की जाती थी। फिर ये दृश्य तो उनकी सुध बुध भुलाने म और समर्थ थे।[1] बहुत बार साधनो के अभाव म नाटक खेलना असभव हो जाता था क्योकि उसके बिना दर्शको के निराश होने की आशका हती थी।[2] सभी दर्शक एक ही प्रवत्ति के नही थे। कुछ ऐसे भी थे कि ... स्थक मुख सम्बन्धी प्रदर्शन पसन्द नही थे इनमे डाक्टर थीबो बाबू प्रमदादास हरिश्चन्द्र जयशकर प्रसाद राय कृष्णदास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि का उल्लेख मिलता है।[3] दर्शको से वाग्पीठ खचाखच भरे रहते थे। यहाँ तक कि जितने दर्शक अन्दर बठे होते उनस दुगने हाल वाग्पीठ के बाहर अन्दर जाने के लिए बेताब दिखाई देते थे। प्राय बडे बडे लोग पारसी नाटक देखना पसन्द करते थे। सम्राट जार्ज पचम तथा रानी मेरी[4] गुरू शकराचाय तथा मदन मोहन मालवीय जसे महान् व्यक्ति भी पारसी रगमच के दर्शक थे किन्तु ये उच्च कोटि के दर्शक उच्च कोटि के ही नाटय प्रदर्शनो मे दिखाई देते थे। स्त्री दर्शक वग भावुक होता ही है, अत पारसी नाटय प्रदर्शनो (विशेषता धार्मिक नाटको) में स्त्रिया मुख्य नायक जो भक्त नरसी आदि का अभिनय करता) के लिए प्रसाद चढाती नारीयल भेंट करती थी।[5] इस प्रकार हजारो की सख्या मे दर्शक एकत्रित होते थे किन्तु अधिकतर दर्शक अरसज्ञ थे। कदाचित इसीलिए आचाय शिवपूजन सहायन ने लिखा है 'हमार समाज की जनता ही ऐसी बुद्धू है कि नाटक को वश्यानत्य की तरह सिफ दिलबस्तगी का एक सामान समझती है।[6]

पारसी रगमच का शिल्प विधान

1 मच निर्माण—

पारसी मच म चार दरवाजे और गुप्त गत विशेष रूप से होते थे ताकि किसी भी स्थान पर देवता या कोई चमत्कार अचानक प्रकट किया जा सके। दृश्यो

---

1 हमारी नाटय परम्परा श्रीकृष्णदास पृ 609 610
2 रग दर्शन श्री नेमिचन्द्र जन प 48
3 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन-डा गिरीश रस्तोगी प 114
4 नव वानु डो खरास (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 2 8-70) पृ 27
5 भारतीय रगमच का अप्रतिम अभिनेता (धमयुग 27-8 67) श्री युगलकिशोर मस्करा पृष्ठ 18
6 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्र प्रकाशसिंह प 350

के लिए टीन चद्दरा एवम् तख्ता से पंडाल बनाए जाते थे।[1] पारसी नाटक मंड-लियों के मंच नाटक की विषय वस्तु पर आधारित थे। उनकी लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई तथा पर्दा निर्धारण (पखवाइयों का लगाया जाना) परदों का प्रयोग सभी कुछ नाटक के कथानक पर निर्भर होता अतः पारसी मंच निर्माण नाटक में बतलाये जाने वाले चमत्कारों के अनुरूप बनाया जाता था। इसके लिए पर्याप्त साधन जुटाए जाते थे। हैरत में डाल देने वाले प्रभावों का वहां होना आवश्यक था। व्यावसायिक होने के कारण अधिकतर पारसी नाट्य कम्पनियां शहर शहर घूम कर नाटक प्रस्तुत करती थी। अतः मंच निर्माण व्यवस्था से 10-15 दिन पूर्व इनके नाट्य प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी विज्ञापन प्रकाश में आ जाते थे। दर्शकों को आकर्षित करने का इनका यह मौलिक प्रयास सराहनीय है। साधारणतः पारसी मंच पर टूटे तथा ऊपरी चटक मटक से युक्त पर्दों द्वारा सजाया जाता था।[2] पारसी मंच बल्लियों, खम्भों और बांसों से बनाया जाता था वह चतुर्भुज होता था संस्कृत मंच की तरह उसके कई विभाग नहीं किए जाते थे। दृश्य विधान के परदे मुख्य थे। एक के पीछे और अनेक पर्दे मंच पर लगे रहते थे। ये पर्दे अपनी तड़क भड़क के लिए प्रसिद्ध थे। सामान्य पर्दों के साथ कटे या टूटने वाले फोल्डिंग पर्दे विशेष रूप से उपयोग में लाये जाते थे। पर्दों पर नई सीन और सीनरी के साथ टब्लो दृश्यों को भी विशेष महत्व दिया जाता था।[3] पारसी मंच में न्यू अल्फ्रेड कम्पनी के मंच का चित्र प्राप्त होता है। उसके मंच की चौड़ाई (पखवाइयों के स्थान को मिलाकर) 70 फीट और लम्बाई 60 फीट रहती थी। सज्जाकक्ष का माप इसमें अलग होता था। आगम निगम द्वार (Exit) से लेकर मंच के अग्रभाग तक 115 फीट लम्बाई तथा 60 फीट चौड़ाई रहती थी।[4]

२ विज्ञप्ति—

किसी नगर में नाटक कम्पनी के पहुंचने से पूर्व उसकी पर्याप्त प्रशंसा पहले दी जाती थी। यह उनका व्यावसायिक दृष्टिकोण था। विद्वानों ने उनके विज्ञापनों का चित्रण भी किया है। नाटक कम्पनी के आने से कई सप्ताह पहले शहरों और कस्बों में बड़े बड़े रंगीन इश्तिहार लग जाते थे। इन पर इस तरह के वाक्य लिखे

1 रंगमंच श्री बलवंत गार्गी पृ 174
2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 608
3 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प-डा गोविन्द चातक पृ 256
4 मेरा नाटक काल श्री राधेश्याम कथावाचक पृ 156

होते थे—डाकू जो मत बन गया श्रवण कुमार जो अंधे माता पिता को बहँगी में उठाए फिरा राजकुमारी जिसने लकड़े भिखारी से ब्याह किया। मनका अप्सरा जिसने विश्वामित्र का तपभग कर दिया। साथ ही बड़े-बड़े अक्षरो मे यह वाक्य भी लिखा हुआ होता था—दगा फसाद करने वाले को हवाला-ए पुलिस किया जायगा [1] जनता को इश्तिहारों पर्चों से बताया और जताया (सचित्र) जाता था कि अग्रेजी कम्पनियो म अग्रेज मेमो के डान्स होते हैं स्त्री पुरुष एक साथ नाचते हैं 'फारस की हूरें ईरान तूरान की नमसिनें बम्बई की परियां कलकत्ते की जादूगरनियां उनम हिस्सा ले रही हैं। 'मशहूरो मारूफ ड्रामा शोर पे आफाक और मायनाज ड्रामा—खूब सूरत बला से नाटक की दुनिया म तहलका मचा दिया जिसको स्टेज पर देख कर पब्लिक अश-अश करने लगती।[2] ये विज्ञापन पारसियों के नाटय व्यापार को बढ़ावा देने में बहुत सहायक सिद्ध हुए।

५ रग प्रयोग—

पारसी रगमच मे कई प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं जैसे बहु भाषीय प्रयोग मच सज्जा प्रयोग चमत्कार प्रयोग आदि। पारसी कम्पनियों के प्रसिद्ध कलाकारो को सबसे पहली शिक्षा जैसा देश वैसी भाषा का ज्ञान कराया जाता ताकि दर्शकगण नाटक के कथ्य को समझ सकें। इनका यह प्रयोग इनकी प्रसिद्धि की आधार शिला रहा है। हिन्दुस्तान मे हिन्दुस्तानी भाषा (न खालिस उर्दू न ठेठ हिन्दी)[3] रगून म बर्मी भाषा कोलम्बो मे सिंहली भाषा[4] का प्रयोग इसी के प्रमाण है। व्यापारियो को व ग्राहकों को अपना बनाने अथवा अपनी ओर आकृष्ठ करने के तरीके ढूढने ही पड़ते हैं। अत इनका भाषा सम्बधी प्रयोग एक सफल प्रयोग कहा जा सकता है। कलाकारो एव निर्देशको को इसके लिए कितना परीश्रम करना पड़ता होगा यह एक विचारणीय प्रश्न है। भाषा का सीखना ही सब कुछ नहीं है उसके साथ उस बोलने म जो भटक (स्ट्रास) अथवा शब्द प्रश्रय की आवश्यकता है उसका साधना भी अनिवार्य हो जाता है।

---

1 रगमच श्री बलवन्त गार्गी पृ 170
2 धर्मयुग (15 2 70) डा लक्ष्मीनारायण लाल पृ 20
3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 613
4 नेक वानु डा खरास साप्ताहिक हिन्दुस्तान (2 8 70) श्री युगल किशोर मस्करा पुष्प पृ 27

इस दृष्टि से पारसी रंगकर्मियों से कदापि स्पर्द्धा नहीं की जा सकती और न ही कोई अन्य भारतीय रंगकर्मी उनकी समता तक पहुँच सकता है। यह दुष्कर कार्य है।

मंच सज्जा चमत्कार प्रभावों के कारण स्वतः आकर्षक सिद्ध होती थी। मंच पर खम्भों के टूटने और उनमें से अभिनेताओं के निकलने के लिए अनेक साधन जुटाए जाते थे तपोवन और जंगल के दृश्यों के लिए यथावत मंच सज्जा होती थी। कुछ दृश्य परदों पर भी चित्रित होते थे जैसे नगर, सड़क आदि। जयपुर में जब लैला मजनू अथवा शीरी फरहाद नाटक खेले गए तो वहाँ जंगल के वास्तविक दृश्य प्रदर्शित किए गए। आज भी उस स्थान में सुरक्षित भाड़ियाँ तथा फौआरे इस अतीत स्मृति के साक्षी हैं। स्पष्ट है कि पारसी रंगकर्मी यथार्थ मंच सज्जा की ओर विशेष यत्नशील थे। चमत्कार का योग उसे और भी प्रबल बना दिया करता था। कदाचित इसलिए कहा गया है कि सीन सीनरी से युक्त नाटक दिखाना उनका ध्येय था।[1]

श्री सदानंद ने लिखा है "नाटक कम्पनियों के लिए मंच पर सड़क, जंगल मकान दिखाना सम्भव था, सिर कटने और आदमी उड़ते वह दिखा सकते थे।[2]

3 पारसी नाट्य चमत्कार—

चमत्कार प्रदर्शन तत्कालीन रंगमंच का एक अति आवश्यक अंग माना जाने लगा था, इसलिए एक एक से बढ़कर रूप हमें दिखाई देते हैं। न्यू अल्फ्रेड के वीर अभिमन्यु से जयद्रथ की मृत्यु पर वृद्धक्षत्र का तपस्या करते हुए दिखाई देना, उसकी गोद में जयद्रथ का कटा हुआ शीश पहुँचना। वृद्धक्षत्र का उठना और नाम के टुकड़े टुकड़े होकर फट जाना[3] अथवा जयद्रथ के कटे सिर का उड़कर तपस्या करते हुए पिता की गोद में जाकर गिरना।[4]

महाभारत नाटक में दुश्शासन द्वारा द्रौपदी का चीर हरण और चीर का बराबर बढ़ते जाना परदे के भीतरी भाग में श्री कृष्ण भगवान का अनंत चीर प्रदान

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 608
2 रंगमंच श्री सदानन्द पृ 21
3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 609 610
4 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 113

करते दिखलाई देना आदि ऐसे ही दृश्य है। व्याकुल भारत के बुद्धदेव नाटक में आंधी चलती है। अंधकार में बिजली की चमक और कड़क होती है। बादल गरजते हैं। आकाश से तारे टूटते हैं। बडी-बडी भयंकर विकराल नाटकीय मूर्तियां दिखाई देती है। किसी के मुंह से आग और किसी के मुंह से सांप निकलते हैं अन्तरिक्ष में इधर से उधर तीर चलते हैं। खम्भों के टूटने और उनके पीछे से अभिनेताओं के प्रकट होने अथवा आकाश मार्ग से देवी देवताओं के आविर्भाव तथा पुष्प वर्षा के दृश्य तो बहुत साधारण मान लिए गये थे। उस समय नुकूल प्रत्येक कम्पनी द्वारा दिखाये जाते थे[1] राधेश्याम कथावाचक कृत भक्त प्रह्लाद में हिरण्यकश्यप के ताज का गायब होकर प्रह्लाद के सिर पर आजाना हिरण्यकश्यप की तलवार का टूटना और उसका टूटा भाग बैकुंठ में विष्णु के हाथों में दिखाई देना[2] वस्तुत रोमांचक दृश्य है इन नाटकों में पात्र हवा में उड़ते थे, पटाखा फटने पर सिंहासन और जंगल चलते थे। हीरो महल की दीवार पर से नदी में छलांग लगाता था। पुष्पक विमानों को हवा में उडाने और आकाश से परियों को उतारने के लिए जटिल यन्त्र प्रयोग में लाए जाते थे। इस प्रकार चमत्कारिक दृश्य और युक्तियाँ उन्नीसवी शताब्दी के लन्दन के ड्रूरीलेन थियेटर की भड़कीली दृश्य सज्जा की सीधी नकल थ।[3] किन्तु कुछ विद्वानों ने सिद्ध किया है कि नाटकों में चमत्कारिक दृश्यों का प्रस्तुतीकरण इस रंगमंच की अपनी विशेषता थी।[4]

पारसी नाट्य-चमत्कार प्रयोग के सम्बन्ध में कुछ तथ्य ज्ञातव्य हैं जैसे *"स्टेज के बीच में एक कूआँ रहता था—जिसका रास्ता सुरंग बनाकर भी रखा* जाता था बिजली की रोशनी भीतर रहती थी। पृथ्वी में धंस जाना या पृथ्वी से निकल आना इस कूप द्वारा होता था। देवी देवताओं का प्रकट होना और अन्तर्धान होना तो इस कूप द्वारा ही सम्भव था। इसके अतिरिक्त एक मशीन भी ऐसी रहती थी जिस पर बिठकर पात्र करने वाले को ऊपर उठाया या नीचे गिराया जाता था। मशीन घुमाने वाला मशीन के पास छुपकर उसे घुमाता था।

ड्राप सीन के पास स्टेज मैनेजर रहता था वह एक चक्करी घुमाया करता

---

1 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 609 610
2 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 113
3 रंगमंच श्री बलवन्त गार्गी पृ 171
4 धर्मयुग (29-3 70) प 18

था, जो लकड़ी की पहियेनुमा होती थी और जिसकी आवाज ऐसी निकलती थी मानों कोई चीज पक रही है। मीर दृश्य सफर के समान यही चरखी घुमाई जाती थी। स्टेज मैनेजर हाथ द्वारा सीन उठाने गिराने की घंटी बजाया करता था। डोरवाली हल्की सी घंटी का सम्बन्ध मंच के ऊपरवाले थामा के मचान से रहता था, जहाँ परदा खींचने और गिराने वाले एक दो आदमी हाजिर रहते थे। स्टेज मनेजर की घंटी पर वे पर्दे उठाने गिराने का काम करते थे। उन हाजिर रहने वाले कर्मचारियों की नौकरी बड़ी जिम्मेदारी की थी। बिजली का एक ऐसा स्विच भी स्टेज मनेजर के पास रहता था जिसका बटन दबाते ही हारमोनियम के आगे एक हल्की सी बत्ती जल जाती थी ताकि गायक गान की तर्ज शुरू करे। इस गाने पर वंसमार ध्वनि भी आती थी। स्टेज मनेजर प्रत्येक नट की पोशाक बाल पटिंग आदि देखा करता था। अपनी वेष भूषा स्टेज मनेजर को दिखाकर ही नट स्टेज पर जाता था। एक 'मिस्टेक' नोट करने वाला कर्मचारी भी स्टेज मनेजर के पास बैठता था, जो स्वयं तथा स्टेज मनेजर की आज्ञा से मिस्टेक बुक से गलतियाँ लिखा करता था। उस रात की लिखी हुई गलतियाँ दिन के रिहर्सल में डाइरेक्टर ठीक करता था या एक्टरों से जवाब तलब करता था। नाटक की हस्तलिखित किताब थियेटर में नहीं रहती थी और न प्राम्ट होता था। यदि एक्टर इतना भूले कि चालू खेल में मग्न होने नौबत आ जावे तो वह स्टेज मनेजर अपनी याददाश्त से प्राम्ट कर देता था। पर उसके बाद उस एक्टर से पाट छिन जाने की नौबत आ जाती थी। इसका असर यह होता था कि एक्टर से गलती प्रायः होती ही नहीं थी। हाथ से पाट जाय, पाट गया तो पोजीशन गई। पोजीशन गई तो नौकरी खतम।[1]

पारसी रंगमंच में चमत्कार प्रयोग को नितांत पाश्चात्य अनुकरण कहना उचित नहीं, साथ साथ इसे मौलिक कहना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। हाँ, इसे पाश्चात्य नाट्य प्रयोगों से प्रभावित बताने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मून लाइट थियेटर (कलकत्ता) में राम सम्बन्धी नाट्य प्रस्तुतियों में जब लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं तो हनुमान अपने एक हाथ पर संजीवनी पर्वत लिए हुए आकाश मार्ग से धरती की ओर उतरते दिखलाई जाते हैं। इस प्रकार के प्रदर्शन को भाकी कहा जाता था। यह बहुत जोखिम का काम होता था। दो अदृश्य खम्भों पर तार और चिर्रानिंह का प्रयोग प्रशंसनीय माना जाता था। साधारण अभिनेता ऐसी

---

1 मेरा नाटक काल श्री राधेश्याम कथावाचक पृ 156 158

समय के प्रबुद्ध दर्शकों को नष्ट कर पारसियों ने हीन प्रस्तुतीकरण की कटु आलोचना की है। प्रसाद ने भी इसकी कटु भर्त्सना की पारसी स्टेज ने अपना भयानक ढंग बन्द नहीं किया। पारसी स्टेज में दृश्यों और परिस्थितियों के सर्जन की प्रधानता है। वस्तु विन्यास चाहे कितना ही शिथिल हो किन्तु प्रमुख परदे के शीघ्र बाद दूसरा प्रभावोत्पादक परदा आना ही चाहिए—कुछ नहीं तो एक असंबद्ध प्रहसन भड़ती से ही काम चल जायगा।[1]

आलोचनाओं की प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप कुछ पारसी नाटक कम्पनियां ऐसी निकलीं जिन्होंने पारसी कुरुचि एवं भद्देपन को हटाकर हिन्दी के नाटक प्रस्तुत करने आरम्भ किए। इनमें काठियावाड़ की श्रीसूर विजय (1914ई) मेरठ का व्याकुल भारत है तथा कानपुर की राम महल नाटक के नामक नाट्य कम्पनियां थीं। विश्वम्भर सहाय व्याकुल और जनेश्वर प्रसाद 'मायल' ने इस ओर विशेष योगदान दिया। भारतेन्दु के पश्चात इनके साथ-साथ काशी की भारतेन्दु नाटक मंडली के प्रसिद्ध अभिनेता डा विरेन्द्रनाथदास, कवर कृष्ण कौल और केशवराम टंडन इसमें सक्रिय भाग लेते थे।[2]

इस प्रकार पारसी रंगमंच के भद्दे नाट्य प्रदर्शन लगभग समाप्त होने लगे किन्तु चमत्कार प्रयोग और (रंग कौशल) निरन्तर विद्यमान रहे। श्री सूर विजय तथा व्याकुल भारत के द्वारा प्रस्तुत नाटकों में पारसी रंग कौशल के दर्शन होते हैं।[3] *आगा मोहम्मद हश्र कश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक और नारायण प्रसाद बेताब* पारसी रंगमंच के उल्लेखनीय लेखक थे जिन्होंने हिन्दी को अपना पर्याप्त योगदान दिया था। किन्तु इनकी दृष्टि से कहीं उल्लेख नहीं मिलते हैं जहां ये चाहते हों कि पारसी रंगमंच अथवा पारसी रंगमंच के भद्दे प्रदर्शन समाप्त हो जायें और हिन्दी रंगमंच उसके स्थान को ग्रहण करले। इनको लेखिनी ने समय की मांग के अनुसार योगदान दिया। इन्होंने हिन्दी रंगमंच को हिंदी नाटक अधिक दिए, इसलिए इन्हें हिंदी के नाटककारों में सम्मान दिया गया है।

---

1 काव्य और कला तथा अन्य निबंध प्रसाद, पृ 106
2 नागरी पत्रिका (वर्ष 1 अंक 6-7) मार्च अप्रेल 1968 का अनात प 108 109
—हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 607 608
3 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास प 609 610

पारसी रगमच की जड़े 1853 में जमनी प्रारम्भ हुई थी किन्तु 1857 मे हिन्दी रग-आन्दोलन न उसकी जडो को हिला दिया फलत 1857 से लेकर द्विवेदी काल के आरम्भ तक हिन्दी नाटको का ताता सा लग गया। मंचित नाटक म शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत जानकी मगल (1868) श्री निवासदास का रणधीर प्रेम मोहिनी 1871, भारतेन्दु का सत्य हरिश्चन्द्र (1874) देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत कलयुगी जोऊ (1876) जयनारसिंह की ओर भारतेन्दु कृत वन्कि हिंसा-हिंसा न भवति, केशवराम भटट कृत समाशाद सौसन, 1882 ई में भारतेन्दु कृत नील देवी 1885 म भारत दुदशा 1887 ई मे प्रताप नारायण मिश्र कृत हठ हमीर और कलि प्रवेश अम्बिका प्रसाद व्यास का गौ-सकट 1889 में माधवशुक्ल कृत सीता स्वयम्वर [1] और इनके बाद प्रयोग की सम्पूर्ण नाट सस्थाओ ने हिन्दी रग-आन्दोलन को आगे बढाया जिसम प्रमुख श्री रामलीला नाटक मण्डली हिन्दी नाटय समिति, नागरी नाटय कला प्रवतन मण्डली हिन्दी नाटय परिषद आदि सस्थाओ ने योगदान किया। रामलीला नाटक मण्डली 1907 तक बराबर चलती रही। माधव शुक्ल उसके मुख्य सचालक थे। वे रगमचीय कला के ममज्ञ थे। उनके साथ महादेव भटट तथा पडित गोपाल दत्त थ। माधव शुक्ल ने जौनपुर लखनऊ आदि मे घूमकर हिन्दी नाटक मण्डलियो की स्थापना की थी जिनका उद्देश्य शुद्ध हिन्दी के नाटकों का प्रचार करना था। [2] माधवशुक्ल के पीछे पडित बालकृष्ण भटट की बलवती प्रेरणा थी। इनका अन्य सहयोगियो में प्रमुख रामविहारी शुक्ल, देवेन्द्रनाथ बनर्जी मुद्रिका प्रसाद आदि थे।

पण्डित माधव शुक्ल कृत महाभारत' नाटक अभिनय क्षेत्र मे बहुचर्चित रहा। 1916 में शुक्ल जी प्रयाग छोडकर कलकत्ता चले गये। यहा उन्होने हिन्दी नाट्य परिषद की स्थापना की और प्रचलित पारसी रगमच का कुछ अंश तक सामना किया पर शुक्ल जी के राष्ट्रीय आन्दोलनो में जेल जान क कारण यह सस्था समाप्त हो गयी।

इधर प्रयाग में बाल कृष्ण भटट क द्वारा स्थापित नागरी प्रवर्द्धिनी सभा पडित मदन मोहन मालवीय जी की प्रेरणा से हिन्दी रगमच की सेवा करती रही।

---

1 प्रसाद नाटय और रग शिल्प, डा गोविन्द चातक पृ 258

2 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 354

1910 में प्रयाग में श्री नेमधन जी ने रामागमन नाटक का प्रदर्शन कर हिन्दी रंग-आन्दोलन में महत्वपूर्ण कार्य किया। मालवीय जी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भी नाटकों में भाग लिया करते थे। कहा गया है कि महाकवि निराला और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने भी हिंदी रंगमंच में अपना योगदान दिया।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, माधव शुक्ल और प्रसाद ये तीन नाम हिंदी रंग-आन्दोलन को बढ़ाने में प्रमुख सिद्ध हुए। 1900 ई के बाद से हिंदी रंग आन्दोलन उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहा। बड़ी बड़ी विभूतियों ने इसमें भाग लिया। पारसी रंगमंच अभी समाप्त नहीं हुआ था यत्र तत्र किसी शहर या गाँव में उसका प्रस्तुतीकरण होता रहता था। इसके अधिकांश दर्शकों को हिंदी रंगमंच ने अपनी ओर खींच लिया था किंतु पारसियों के पास चमत्कार प्रयोग के ऐसे साधन थे जिनसे कि वे अपना व्यापार चलाते ही रहे।

दूसरे महायुद्ध के दिनों में इप्टा (जननाट्य संघ) ने नाटक की विषयवस्तु और अभिनेताओं की क्षमता पर बल देकर, बिलकुल सादे काले परदे के सामने नाटक करके यांत्रिक और दिखावटी सज्जा के मोह को भरसक भंग कर दिया।[2] अन्त में 1968 में मून लाइट थियेटर कलकत्ता के प्रेम शंकर नरसी (मास्टर फिदा हुसैन) के अवकाश के साथ ही पारसी रंगमंच भी समाप्त प्राय हो गया है।

पारसी रंगमंच का विस्तार—

बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता के अतिरिक्त पारसी रंगमंच कानपुर, मेरठ, बरेली अहमदाबाद और आगरा में भी छाया हुआ था।[3]

डा भब्बूलाल मुल्तानिया 'अज्ञात' ने लिखा है कि न्यू अल्फ्रेड अपने हिन्दी नाटक लेकर बम्बई के बाहर समस्त उत्तरी भारत का दौरा किया करती थी। जिन नगरों में यह अपने खेल दिखलाया करती थी वे हैं मध्य प्रदेश का इन्दौर, राजस्थान का जयपुर, केन्द्र शासित दिल्ली, उत्तर प्रदेश के बरेली, कानपुर, लखनऊ, बनारस, आगरा, मथुरा आदि, अविभाजित पंजाब के लुधियाना, जालंधर, अमृतसर

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुं चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 358

2 रंगदर्शन श्री नेमिचन्द्र जैन पृ 48

3 धर्मयुग (15-2-70) डा लक्ष्मीनारायण लाल पृ 20

और लाहौर तथा सीमाप्रान्त का पशावर। इनके अतिरिक्त वह अलीगढ़, मेरठ मुजफ्फर नगर, सहारनपुर और मुरादाबाद की प्रदर्शनियों में भी अपना मंडवा लगाया करती थी।[1] विक्टोरिया नाटक मंडली ने हैदराबाद, बर्मा और इंग्लैंड में भी अपने नाटक प्रस्तुत किए थे।[2] कानपुर की राममहल नाटक मंडली ने सीतापुर, फर्रुखाबाद कन्नौज, कायमगंज जौनपुर जबलपुर आदि नगरों में नाट्य प्रदर्शन किए।[3] खुरशेद जी बालीवाला की कम्पनी ने दिल्ली रंगून कलकत्ता, मद्रास, सिंगापुर, मसूर और हैदराबाद तथा कोलम्बो, कराची से भी कई दिनों तक अपने नाटक प्रस्तुत किए।[4]

पारसी मंच के क्षेत्र में राजस्थान का बहुत बड़ा योगदान है। यहां जयपुर तो उसका मुख्य केन्द्र रहा है। राम प्रकाश सिनेमा (जयपुर) के प्रवेश द्वार पर एक संगमरमर शिला पर कुछ अक्षर हिन्दी और अंग्रेजी में इस प्रकार उत्कीर्ण हैं—

यह
नाटक भवन
इसबुल हुक्म आली जनाब सरामद राजहाय
हिन्दुस्तान राज राजेन्द्र श्री महाराजा धिराज
श्री सवाई राम सिंह जी बहादुर
ग्राइट ग्रेंड कमान्डर आफ दी मोस्ट
एगजाल्टेड आर्डर आफ दी स्टार आफ दी
इंडियन अमपायर
वास्ते
तरक्की इल्म नाटक व खुशी व नसीहत
आम रियाया जैपुर के
सन् 1878 ई संवत् 1934 में
तामीर व तरतीब हुआ

1—नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6-7 मार्च अप्रैल 1968 पृ 106
2— ,, ,, , ,, — ——— पृ 104–105
3— ,, , ,, ——— —— पृ 111
4—साप्ताहिक हिन्दुस्तान (2 8 70) पृ 27

यह थियेटर 1944 म सिनेमा घर मे बदल गया ग्रौर उस समय इसके ग्रधिपति थ चाँद हसन ग्रौर रजाक साहब । इस समय रजाक साहब के पुत्र सलाम साहब इसके स्वामी हैं । यह नाटक घर सिनमा घर को लीज पर दिया हुग्रा है । प्राप्त प्रमाणा स सिद्ध होता है कि 1878 स 1944 तक यहा पारसी रगमच छाया रहा जिस समय 1940 ई। म सूय विजय कम्पनी न यहा ग्राकर नाटक प्रस्तुत किए उस समय यहा केवल लकड का मच था ग्रौर चहार दीवारी नहा थी । प्राय ग्रपने ग्रपने पर्दे लगा कर नाटक खेल जात थे । ग्रभिनीत नाटकों म शकु तला शीरी फरहाद, ग्रादि उल्लखनीय है । रात्रि के 10 बज से प्रात 4 बजे तक ये नाटक चलत थे। 15-15 20 20 दिन तक एक ही नाटक खेला जाता था । लखनऊ के नर्शीद ग्रानम की मुहम्मद ग्रकबर लैला मजनू ग्रौर शीरी फरहाद नाटको क कारण बहुत लोकप्रिय हो गये थे । तत्कालीन महाराजाधिराज ग्रत्यन्त नाट्य प्रेमी थे । यह कम्पनी उनकी ग्रधिनस्थ सस्था थी जिसे महाराजा 100/- रु महीना दिया करते थे । इस कम्पनी का काम केवल नाटक प्रस्तुत करना ही था । दूसरी जन श्रुति है कि जो भी कम्पनी जयपुर में नाटक प्रस्तुत करने ग्राती वह 100/- रु महीना इस स्थान (चादी की टकसाल पर स्थित राम प्रकाश थियेटर क मच) के किराये के रूप म महाराजा को देती थी । इसके ग्रतिरिक्त यह भी सुना जाता है कि 1939 म जयपुर स्टेट क प्रधान सर मिर्जा मुहम्मद इस्माइल ने नाटक घरो को समाप्त करके उन्हें सिनेमा घरो के रूप म परिणत कर दिया । यहा बाहर की नाटय कम्पनिया न ग्राना बद कर दिया, हाँ जयपुर के कुछ नाटयदल ग्रवश्य इक्का दुक्का नाटक गली कूचो में खेलत थे । यह भी मालूम हुग्रा है कि मच के दो प्लेटफाम हुग्रा करते थे । नारी पात्र की भूमिका करने वाले लडके नारी वेशभूषा धारण कर ऊपर के मच पर खडे रहत थ ग्रौर पुरुष पात्र नीचे वाल प्लेट फाम पर ग्रपनी बारी ग्राने पर सीढियो से उतरकर ग्रभिनय करते थ । मच की दाई ग्रोर दो लम्बे (एक छोटा एक बडा) पतल कमर थे । छोटे कमरे म कलाकारो के वस्त्रादि सुरक्षित रहते थ बडे कमरे म व कलाकार मेकग्रप किया करते थे ग्रौर मच के पीछे खुले हरीयाली भरे स्थान पर जहा एक फुहारा विद्यमान है तथा एक सगमरमर की लम्बी बच लगी हुई है कलाकार मकग्रप हो जाने के बाद बठा करते थ । सगीतज्ञो के बठन के लिए नीचे ग्रलग स्थान बना हुग्रा था । मच के दोनो ग्रोर जहा सगीतज्ञ बैठने थ उतनी ही गहराई मे दो लकडी के तख्ते लगे हुए थ जिन पर मच पर प्रवेश करने वाले पात्र ग्राकर बठ जाते थ जसे ही उनकी बारी ग्राती कुछ धु ग्रा ग्रौर ग्रग्नि प्रज्वलित होती ग्रौर लकडी का तख्ता बटन

दबाते ही भग हट जाता था और वह कलाकार मंच पर खड़ा हुआ दिखता था।

दर्शक मण्डली इस चमत्कार को देख कर दंग रह जाया करती थी। इसे प्राय तमाशा के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

चांदी की टकसाल (जो इन दिनों राम प्रकाश सिनेमा है) पहले 'राम प्रकाशमंच था 1928 में यहां पर यू ग्रान्ड कम्पनी ने आकर कई नाटक किए थे। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि यहां नौरोज साहब की कम्पनी (कम्पनी ठनेज ड्रा) आई जिसने 7 8 महिने तक खेल किये। उस समय यहां पर लकड़ी के मंच की ला मंजिलें थी। महाराजा जयपुर ऊपर बैठकर खेल देखते थे। इस कम्पनी के नाटक में मूम न्लिर शहंशाह टावर प्रमुख थे। उस समय टिकट दर /-25 / 50 1/ 1/ 25 रु थी। नाटकों में परियां उड़ती दिखाई जाती, पर लगे देव मात जिसे देख जनता दंग रह जाती। समय समय गैस बत्तियां जलाई जाती थी। एक से एक उत्तम परदे थे और उन परदों के सहारे तरह-तरह के कलाम बताये जाते थे। परदों का काम जयपुर के नक्काशी किया करते थे। इस कम्पनी में 'केसू नामक बहुत प्रसिद्ध कलाकार था जिसके सर के बाल परा तक लम्बे थे, वह 'जनाना पार्ट किया करता था। जब इस कम्पनी के नाटक होते तो देखने वालों की बहुत भीड़ एकत्र हो जाती थी। ऐसी कहावत है कि पैसे न होने पर लोग अपनी मकान बेच कर यह तमाशा देखने जाते थे। अनुशासन की दृष्टि से नौरोज साहब बहुत बड़े आदमी थे। कोई भी कलाकार उनके बिना पूछे बाहर नहीं जा सकता, क्योंकि वे बिजली का हंटर रखते थे।

इसके बाद महबूब हसन की नाटक कम्पनी ने जयपुर के चन्द्र महल में 4 नाटक किए तथा राम प्रकाश थियेटर में साल भर तक नाटक खेले। इसके प्रसिद्ध नाटक थे 'इन्दर सभा' और जेरे हवस। तामगी चन्दा नाटक कम्पनी आयी जिसने हरिचन्दर (हरिश्चन्द्र) जेरे हवस शीरी फरहाद लैलामजनू आदि नाटक खेले।

तत्कालीन कला प्रेमियों और अभिनेताओं से ज्ञात होता है कि हुसैन की नाटक कम्पनी ने इन्दर सभा मोहब्बत का फूल' 'शीरी फरहाद चितामणि' किशोर भक्ति तथा ताबी मरी भंजा आदि नाटक प्रस्तुत किए थे। इसके मनजर बाद दस हजार हुसैन के जो माधोसिंह जो महाराजा के समय दुबारा अपनी स्वयं की नाटक कम्पनी लेकर जयपुर आए थे। तीसरी नाटक कम्पनी का नाम था न्यू अल्फ्रेड

कम्पनी जो ो बार जयपुर (महाराजा मानसिंह जा के समय म) आयी थी। इसो ि े क वर्ष नाटक सेले जिनम ईश्वर भक्ति जन जल बिहार न्नी न्रबार,' 'बच्चर सवा मासूम न्जिर आदि प्रमुख थ। स्म कम्पनी द्वारा ैला मजनू, मोह बन का द्त करले तहीजन शरीफ ैतन आ ि नाक भी सेल गये। ये नाटक रान व 9 बज प्रारम्भ होकर अद्ध रात्रि 3 बजे तक चलने थ। इसक बा या की नाटक कम्पनी (अलीगढ़) आयी और उसने 'गरीब की ईद 'नई दुल्हन आदि मचित किए। मामर की न्नू बादशाह की नाटक कम्पनी ने भी कुछ नाटक इस मच पर मले। इसके ब द जयपुर के कलाकारों के नाटक प्रारम्भ हुए। रोशनी व लिए इनमे गस बत्तिया प्रयुक्त हाती थी। ड्रेस मकगर कम्पनिया के मालिक के ही होत थ। बाकी मीन सीनरी आदि का प्रबंध दरबार की ओर से हा जाता था। सागवान की तख्तों पर लाखों रुपये खच हो जाते थ। दशकों के लिए तीन श्रेणिया थी। प्रथम श्रेणी कक्ष ऊपर बना हुआ होता था। लैलामजनू और इन्दर सभा के दृश्यो मे जगल बताने क लिए मच क पीछे का तख्ता हटा दिया जाता था जिससे कोसो दूर तक जगल दिखाई ता था। नाटकों में उड़ानें (बताई जाती थी जिसे 'ट्रापिक' कहा जाता था)। यह सब स्प्रिंग पर आधारित होता था। ऊपर की उडान को "सल्ट कहते थे। एक सल्ट मे चार गिरारियाँ होती थी जो उपर या नीचे। न उड़ानो के लिए तार एवम खिचाई क लिए रस्सों को काम म लाया जाता था। आज भी पारसी रंगमच के लिखित प्रमाण श्री प्रभुनारायण प्राध्यापक संस्कृत कालेज आमेर रोड जयपुर तथा श्री दीनानाथ श्री राष्ट्रभाषा कालज कानवाली छोटा चोपड जयपुर के पास सुरक्षित बतलाए हैं। जोधपुर म भी लगभग 50 60 वष पूव सात कादरिया टोली एवम 'बीकानेर की कम्पनी' ने इन्द्रसभा, सूरदास नल दमयन्ती राजा हरिश्चन्द्र आदि पारसी नाटक होने के प्रमाण वयोवद्ध नागरिकों द्वारा प्राप्त होते है। झालावाड (राजस्थान) की राज्याश्रित साधन सम्पन्न भवानी नाटय शाला (1904। भ पारसी रंगमच से पूर्ण रूपेण प्रभावित थी।[1] यहाँ पर बहुत स नाटक आगरा के मिर्जा नजीरबेग न खेल। बम्बई की पारसी थियट्रीकल कम्पनी क मास्टर पुरुषोत्तमदास ने 'खूबसूरत बला और महा भारत' आदि नाटक खेले। स 1910 ई म मो₀राव जी की कम्पनी के अब्दुल रऊफ को भी मद्रास से बुलाकर नाटय सेवाए ली गयी। पारसी रंगमच का एक और केद्र है वाराणसी। सन् 1930 के लगभग अल्फ्रेड न्यू अल्फ्रेड, व्याकुल भारत एलेक

1 हिन्दी नाटय साहित्य और रंगमच की मीमासा डा चन्द्र प्रकाशसिंह पृ 366 से 374

जेन्डा कारेंथियन आदि नाटक कम्पनियाँ आई और इन्होंने 'लला मजनूं' 'इन्दर सभा' 'एक ही पत्ता' शादी की पहली रात' 'भक्त प्रहलाद वीर अभिमन्यु, 'गणेश जन्म' 'सीता बनवास' 'धर्मी बालक' 'प्रेमी बालक' आदि नाटक खेले। कलाकारों में प्रमुख मास्टर निसार और कज्जन थे। वाराणसी में राधास्वामी के बाग गोदौलिया मे जगम्बाबा हाल मिसिर पुखरा बास फाटक टाउनहाल आदि में इन कम्पनियों ने अपने नाटक खेले। कारेंथियन कम्पनी ने घूमने वाला मंच भी बनाया था। बतलाया जाता है कि कलकत्ता के धर्मतल्ले मे इस कम्पनी का घूमने वाला मंच बना हुआ था। इस कम्पनी के पास सीन सीनरी के परदे और वेशभूषा आदि के भण्डार भी थे। बहुत कीमती-कीमती पोशाकें थीं। यहा दर्शकों की अपार भीड़ भाड़ रहती थी। इसका सबसे बड़ा कारण था इनका चमत्कार प्रयोग। पार्वती का सीता के रूप में परिवर्तित हो जाना वियोगिनी सीता को राम की याद करते समय चारो ओर राम ही राम दिखाई देना, गणेश जन्म नाटक मे कामदेव को सचमुच भस्म होते बताया जाना, गणेश जी का शीश काटा जाना और उस पर हाथी का सिर लगाया जाना आदि चमत्कारो को देखकर दर्शक दांतों तले ऊंगली दबा लेते थे। बतलाया जाता है कि सरकार ने प्रसन्न होकर आगा हश्र कश्मीरी को 'इण्डियन शेक्सपियर" की उपाधि भी दी थी। 1945 के बाद वाराणसी का पारसी मंच कम हो गया और स्थानीय संस्थाओं का उदय होने लगा। उनका "मुग्धकुमार जसे नाटकों का मंचीकरण स्मरणीय है।

बताया गया है कि मदन थियेटर्स बास फाटक में अपने नाटक प्रस्तुत किया करता था और कज्जन, मास्टर नवदा शंकर, मिस शरीफा, और मुन्नी बाई प्रमुख कलाकार थ।

यह स्पष्ट है कि वाराणसी में पारसी रंगमंच बहुत सुरुचिपूर्ण नही था, उसकी प्रतिक्रिया से रंगमंच का स्वरूप अवश्य स्पष्ट हुआ, और हिन्दी को संगठित रंगमंच भी मिला।

पारसी रंगमंच में अधिकतर स्त्री की भूमिका के लिए लड़कों को पार्ट दिया जाता था ज्ञात हुआ कि लखनऊ की मिस दुलारी ने वाराणसी में आयोजित गणेशजन्म नाटक में पार्वती की भूमिका की थी। मिस दुलारी ने शंकर भगवान से पूछा नाथ! आप इस समय क्यों उदास हैं मैं आपके मनोरंजन के लिए गाना सुनाती हूं" यह कह कर वह गाने लगी। दर्शकों को गाना बहुत पसन्द आया उन्होंने

पुनरावत्ति के नारे लगाये उसने फिर सलाम कर करके गाना गाया और इस प्रकार गाती रही कि उसके नाच गाने ने बहुत सा समय ले लिया। तब तक बिचारे शकर भगवान बठे बठे अपना सर खुजलाते रहे कितु जनता माग पर माग रखी जा रही थी।

पारसी मच के अन्तगत कलकत्ता का मून लाइट थियेटर भी उल्लेखनीय है। इस थियेटर के बारे में पर्याप्त जानकारी दी जा चुकी है। आरम्भ मे इस थियेटर मे प्रात फिल्में चलती थी और शाम 6 से 9, 9 से 12 तक नाटक के दो शो होते थे। रविवार को 10½ बजे प्रात नाटक खेले जाते थे। उसम वल गलस 15 अभिनेत्रिया लगभग 10, पुरुष अभिनेता 25-30 के लगभग थे। इसम बाल कलाकार भी साथ थे। मास्टर फिदा हुसन को 500/ रु प्रतिमाह मिलते थे। अभिनेत्रियों मे इन्द्रारानी कलकत्ता देवी और सीता देवी प्रमुख थी। क ा जाता है कि सीता देवी नाचने गाने मे सबसे प्रवीण थी अत उसे 1000/- रु मा सक वतन मिलता था इसके नाम से दशकों से हाऊस फुल हो जाता था और महीनो तक भीड लगी रहती थी। श्री एफ चार्ली हास्य अभिनेता के रूप मे काय करते थे और वे भी एक प्रसिद्ध अभिनेता थे। 22 माच 1968 को मास्टर फिदा हुसन मूनलाइट थियटर को छोडकर मुरादाबाद चले गये तब से यह बद हो गया। अब यह सिनेमा के रूप में चल रहा है। यद्यपि मास्टर नरसी के चले जाने के बाद श्री त्रिलोचन भा ने (जो उस दल के कुशल अभिनेता थे) निर्देशन का कायभार सम्भाला था कितु व काम चला नही पाए अत मूनलाइट थियेटर हमेशा के लिए बन्द हो गया। सम्भवत यही पारसी रगमच का अन्तिम चिन्ह था, जो उस परम्परा का निर्वाह कर रहा था। इसने हिन्दी रगमच को बहुत योगदान किया है। कुछ लखकों ने इसे हि दी मच के नाम से ही पुकारा है।[1]

यह भी मा यता है कि मूनलाइट थियेटर नियमित रूप से व्यावसायिक आधार पर नाट्य प्रदशन करता था। इसक प्रदशनो म दशकों की कमी नही थी। प्रत्येक नाट्य प्रदशन मे भीड रहती थी।[2] हाँ मूनलाइट कम्पनी के नाटकों का प्रेमी दशक वग अनामिका के नाटको का नही बन सका।[3]

1–नागरी पत्रिका वष 1 अक 6-7 माच अप्रेल 1968 डा अज्ञात प 108 —रगमच सवदानद पृ 26
2–दशक और आज का हि दी रगमच श्री विष्णुकान्त शास्त्री प 11
3–दशक और आज का हि दी रगमच श्री नेमिच द जन प 22 24

पारसी रंगमंच का समीक्षा तत्व या दर्शकीय प्रतिक्रियाओं का पक्ष भी उल्लेखनीय है। यह सुविदित है कि कावस जी खटाऊ की 'पारसी अल्फ्रेड' नाट्य संस्था अपनी प्रतिकूल समीक्षाओं के कारण ही क्षत विक्षत होकर नष्ट हो गई और मैडन थियेटर्स के हाथ बिकी [1]। इस शिल्प के समीक्षक हैं श्री लालचन्द फ्लर्क, माधव शुक्ल कृष्णकांत मालवीय बाबूराम पराड़कर, कृष्णानंद प्रसाद गौड़, गोपाल राम गहमरी पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, परिपूर्णानन्द मुंशी प्रेमचन्द आदि। आज भी दैनिक आज, वनमाल, मतवाला, माधुरी आदि में द्रष्टव्य हैं। स्पष्ट है कि पारसीक मंच समीक्षों द्वारा उपेक्षित नहीं रहा। कुल मिलाकर पारसी रंगमंच की उपलब्धियां महत्वपूर्ण हैं। पारसी रंगमंच का क्षेत्र अभिनेताओं का विवरण, नाटकों का ज्ञापन और उनके नये चमत्कार सर्वथा ज्ञातव्य हैं।

पारसी रंगमंच को सरकारी योगदान

भारत में जब संगीत नाटक अकादमी का प्रादुर्भाव हुआ तो उसने कला क्षेत्र में कुछ कलाकारों को प्रति वर्ष पुरस्कृत करने का कार्य आरम्भ किया। उनमें पारसी रंगमंच की अप्रतिम अभिनेत्री मुन्नीबाई को भी 101/- रु एक चांदी की शील्ड तथा ताम्रपत्र पर खुदा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया।[3] किन्तु इस अभिनेत्री के समकालीन और उससे भी अधिक सुप्रसिद्ध अभिनेता, निदेशक और अन्य कलाकार जैसे फिदा हुसन (प्रेम शंकर नरसी) जो राष्ट्र-पुरस्कार के अधिकारी हैं [3] अभी सरकारी प्रोत्साहन से वंचित हैं।

अततह श्री कल्याणमल लोढा की यह उक्ति स्वीकार्य है कि "पारसी नाटक मंडलियाँ असाहित्यिक थीं, असांस्कृतिक भी सुरुचि सम्पन्न भी नहीं थी पर रंगमंच को लोकमानस के निकट ले जाने का उन्होंने कार्य सबसे अधिक किया।[4] श्री चिरंजीत का कथन भी ध्यान देने योग्य है—"हम यह मानने को तैयार नहीं कि उन पारसी मंडलियों के नाटकों को पसंद करने वाली समूचे देश की जनता की

---

1 मेरा नाटक काल श्री राधेश्याम कथा वाचक, पृ 129

2 नेहरू बाबू दी स्टेज साप्ताहिक हिन्दुस्तान 2-8-1970 श्री जुगल किशोर मसकरा पुष्प, पृ 27

3 भारतीय रंगमंच का अप्रतिम अभिनेता धर्मयुग (27 8-67) श्री जुगल किशोर मसकरा पुष्प पृ 44

4 दशक और आज का हिन्दी रंगमंच श्री नरेन्द्र [illegible] पृ 80

रुचि विकृत और असंस्कृत था, सबके सब लोग वज्र मूर्ख थे।[1] व्यंजनार्थ यह है कि पारसी नाटक कम्पनियों में दर्शकों को आकृष्ट करने की क्षमता अवश्य थी। पारसी रंगमंच हिन्दी रंगमंच की थाती है उससे अलग नहीं। रूप भिन्नता से उसको हिन्दी सम्बद्ध से पृथक नहीं किया जाना चाहिए। पारसी कम्पनियों जैसे "न्यू अल्फ्रेड कम्पनी के संचालकों को तो हिन्दी से प्रेम था, व अपनी कम्पनी का स्टैण्डर्ड न गिरे,[2] इसलिए श्री राधेश्याम कथावाचक आदि लेखकों से अपने नाटक पास करवा कर मंच पर उतारते थे। मेरे अन्दर हिन्दी के प्रति प्रेम है[3] उक्ति श्री सोहराब जी की कम्पनी के प्रति ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण पारसी रंगमंच का स्पष्टीकरण देती है। वास्तव में पारसीक मंच हिन्दी की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। हिन्दी नाटक साहित्य में तो इसका योगदान है ही विशेषतः हिन्दी रंगमंच के इतिहास में इसने अभूतपूर्व भूमिका निभायी है। मुख्यतः इसने जनरुचि का निर्माण किया है और हिन्दी को एक व्यवस्थित तथा अन्तर राष्ट्रीय मंच दिया है।

---

1 शताब्दी किस रंगमंच की? नागरी पत्रिका (वर्ष 1 अंक 6 7 मार्च अप्रेल 1968) श्री चिरंजीत पृ 61

2 मेरा नाटक काल : श्री राधेश्याम कथावाचक पृ 109

3 वही पृ 59

अध्याय ६

हिन्दी का आधुनिक रंगमंच

भारतेन्दु के पूर्ववर्ती रंगमंच की पृष्ठभूमि—

भारतेन्दु के पूर्व और सहवर्ती समाज की स्थिति बड़ी दयनीय थी। ऐसी स्थिति में जागृति का माध्यम केवल रंगमंच था। इस युग में रंगमंच का विकास मुख्यतः इन्हीं कारणों से हुआ। इसके प्रेरक थे भारतेन्दु। "गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह भारतेन्दु ने भी लोकहित-साधना और साहित्य-साधना को एक रूप कर लिया था।[1] भारतेन्दु एक नवीन नाट्यादर्श की प्रतिष्ठा भी करना चाहते थे जिसमें प्राचीन और नवीन अर्थात् पूर्वी और पश्चिमी नाट्यधर्म का समन्वय हो।"[2] भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी रंगमंच का स्वरूप सुनिर्धारित नहीं था। हमें यह मानने में आपत्ति नहीं कि हिन्दी नाटक के प्रसव काल में हमारे यहां धार्मिक लीलाओं और लोक नाट्यों की ही परम्परा विद्यमान थी। दूसरी ओर पारसी कम्पनियों के पास चमत्कृत करने वाला रंगमंच था किन्तु नाटक की मूल आत्मा उनके पास न थी।[3]

भारतेन्दु युगीन हिन्दी रंगमंच—

हिन्दी रंगमंच की अभिनयात्मक परम्परा के विशद रूप के दर्शन भारतेन्दु काल में होते हैं। केवल भारतेन्दु इस प्रतिभा के धनी थे। यह ऐसा काल था जब

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा० कुं० चन्द्र प्रकाश सिंह पृ 180

2 वही पृ 183

3 प्रसाद नाट्य और रंग शिल्प, गोविन्द चातक पृ 3

प्रतिस्पर्द्धा और ईर्ष्या का द्वन्द्व चल रहा था और फलस्वरूप जिसमे हि दी रगमच अपनी जड़ें जमा रहा था। इसका श्रेय है मुख्यत श्री हरिश्चन्द्र को। भारते दु युगीन रगमच के दो रूप थे—

1 व्यावसायिक ि दी रगमच (पारसी रगमच) और
2 अ याावसायिक साहित्यिक रगमच।

हिन्दी के पारसी (व्यावसायिक) रगमच का विवेचन किया जा चुका है। दूसरी धारा विचारणीय है। इसके प्रवतक स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। इन्होने पारसी रगमच मे समायी हुई कुरुचिपूण प्रदशन-प्रवतियों को दूर कर उसे पुरस्कृत करने का बीडा उठाया। भारतेन्दु ने न टक नामक लेख मे पारसियो के कुरुचि-पूण प्रदशन का चित्रण किया है। उस समय नाटक को सम्मान की वस्तु नही समझा जाता था। इसलिए उच्च वग के लोग इसम नहीं आते थे और यह उत्तम कला कस्बियों, मीरासियो, डूमों और पैसा बटोरने वाली मडलियों के हाथ पडी हुई थी। भारतेन्दु ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होने कुछ नवयुवको को नाटयकला की शिक्षा दी और एक मडली बनाई। भारतेन्दु ने अपने नाटक बनारस मे प्रस्तुत किए और वे इस मडली को अन्य स्थानों पर भी ले गय। 18 वष के अल्प समय मे (1867 1885) तक उन्होने हि दी नाटक को साहित्यिक रग दिया और अच्छे स्तर का एक अव्यावसायिक मच स्थापित कर दिया।[1] इस प्रकार बनारस इलाहाबाद, कानपुर तथा और कई स्थानो पर अव्यावसायिक नाटक मडलिया स्थापित की गई।[2] किन्तु भारतेन्दु के लिए एक बात और कही जाती है वह यह कि भ रते दु ने व्य वसायिक नाटक मडलियों की पद्धति का खण्डन तो किया किन्तु उनकी बहुत सी पद्धतियो का अपने नाटको मे प्रयोग किया। व्यावसायिक मडलियो म साहित्यिक अश की कमी थी और भारते दु म व्यावसायिकता तथा आर्थिक पक्ष की। यहाँ साहित्यिक नाटक और व्यावसायिक नाटक का अन्तर स्पष्ट होता है। यह खाई निरन्तर बढ़ती गई।[3] इस प्रकार भारते दु पूव रगमच के प्रति जो उपक्षा की उसमे जो असुविधाए थी[4] वे भारतेन्दु युग में सुधार दी गयीं।

1–हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास पृ 189
2– „ „ „ पृ 190
3– „ „ „ प 191
4–हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल प 385, –आधुनिक हिन्दी साहित्य प्रो० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय प 223, हिन्दी नाटक सिद्धात और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी प 62

हिन्दी रंगमंच को भारतेन्दु की देन—

भारतेन्दु ने लगभग डेढ़ दर्जन मौलिक एवं अनूदित नाटक प्रस्तुत किए। अनूदित कृतियों में 'मुद्रा राक्षस' और गीत-गोविन्दानन्द (मूल संस्कृत), दुर्लभ बंधु (मूल अंग्रेजी मर्चेन्ट आफ वेनिस) तथा भारत जननी (मूल बंगला) उल्लेखनीय हैं[1] इसके अतिरिक्त विद्यासुन्दर (नाटिका) 1868 रत्नावली 1868 (नाटिका), पाखण्ड विडम्बना (एकांकी) 1872, धनंजय विजय 1873 (व्यायोग), कर्पूर मंजरी 1876 (सट्टक) आदि भी सम्मिलित की जाती हैं। मौलिक नाटकों में प्रवास (नाटक) (1868 अपूर्ण अप्राप्य) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति 1873 (प्रहसन), सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक) 1875, प्रेमजोगिनी 1874 (नाटिका) विषस्य विषमौषधम 1876 (भाण), श्री चन्द्रावली (नाटिका) 1876, भारत दुर्दशा (नाट्य रासक) 1876, भारत जननी (ओपेरा), नीलदेवी (गीति रूपक) 1880, अंधेर नगरी 1881 (प्रहसन), सती प्रताप 1884 (गीति रूपक) महत्वपूर्ण प्रदेय है। सती प्रताप भारतेन्दु कृत अपूर्ण नाटक है जिसे श्री राधाकृष्णदास ने पूरा किया है। शुक्ल जी ने सत्य हरिश्चन्द्र को अप्राप्य बंगला नाटक का अनुवाद कहा है।[2]

भारतेन्दु की नाट्य कृतियों का रंगमंचीय महत्त्व—

भारतेन्दु के नाटकों का अलग अलग विद्वानों ने विविध प्रकार से मूल्यांकन किया है। डा गिरीश रस्तोगी का कथन है कि भारतेन्दु ने नाटक को रोचक और अभिनयानुकूल बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया, संस्कृत नाटकों के समान रस निष्पत्ति या रस की प्रधानता की ओर नहीं।—कथा गठन में संस्कृत नाट्य शास्त्र के अनुसार उन्होंने यत्र-तत्र नान्दी पाठ, प्रस्तावना भरत वाक्य, अंक विभाजन आदि को स्थान दिया। चुम्बन आलिंगन मृत्यु वध युद्ध आदि दृश्यों का निषेध भी स्वीकार किया किंतु कहीं कहीं उनका उल्लंघन भी कर दिया, साथ ही 'नील देवी' नाटक को भारतीय सिद्धांतों के विरुद्ध दुखान्त बना दिया।[3] श्री कृष्णदास ने लिखा है कि उनके नाटकों में चार प्रभाव प्रत्यक्ष हैं संस्कृत, बंगला और लोक नाटक के।—नाटकों के प्रारम्भ में मंगलाचरण सूत्रधार नेपथ्य और आकाश भाषित आदि का प्रयोग संस्कृत के अनुरूप किया गया। गीत मोह, झांकी

1—साप्ताहिक हिन्दुस्तान (14 सितम्बर 1969) श्री इन्द्रराज बैन अधीर
2—हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ 505
3—हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 70

रामलीला की चित्र सज्जा, पद्यात्मक सवाद लोक नाटको से ग्रहण किए। चौखटे जडे मच की सज्जा और अको का दृश्यो म विभाजन बगला और पश्चिमी नाटकों के प्रभाव के अन्तगत किया [1] भारतेन्दु के नाटक चार या पाच अको के हैं। उनके पहले अक का दृश्य म विभाजित करने की परम्परा नही थी। भारतेन्दु ने ही हिन्दी मे यह प्रवृति चलाई। उनके नाटको में लगभग प्रत्येक अक मौन झाकी पर समाप्त होता है। प्रकाशित नाटकों म इस मौन झाकी की बनावट पर विस्तार से टिप्पणिया दी गयी हैं। साथ साथ मच सकेत भी हैं। उनके नाटकों मे कई स्थानो पर लम्बे वर्णनात्मक भाषण हैं जो मध्यकाल की रचनाओं से चले आ रहे हैं। भारतेन्दु के नाटकों की रचना और गठन म कुछ ढीलापन है। यह स्वाभाविक था क्योंकि वे नाटक का एक नया रूप खोजने का प्रयत्न कर रहे थे।[2]

डा बच्चनसिंह ने भारतेन्दु के नाटको की समीक्षा करत हुए लिखा है "उनके नाटको म सस्कृत की पीटी हुई परम्परा को पीछे छाडकर कुछ क्रातिकारी कदम हैं। [3]

रगमच की दृष्टि से विचार करने पर साफ दिखाई पडता है कि भारतेन्दु जनता के समीप पहु चना चाहत है। भाषा की सरलता जनोपयोगी कथोपकथन नाकप्रिय गीति ध्वनिया सभी कुछ इसके परिचायक हैं।[4]

भारतेन्दु काल म हिन्दी नाटक के अन्तगत गद्य को स्थान मिलने लगा था। भारतेन्दु ने पुराने नाटकीय रीति रिवाजो को तोडकर सव प्रथम छोटे अको एव दृश्यो की परम्परा चलाई। उस युग मे दशक एव पाठक यह भूल चुके थे कि नाटक कसा होना चाहिए इसलिए भारतेन्दु ने उन्हें समझाने के लिए नाटकीय अनुवाद किए। दुलभ बधु (शेक्सपियर के मर्चेन्ट आफ वेनिस का रूपान्तर) मे पात्रो के भारतीय नाम दिए गये। कुछ सस्कृत के नाटकों के भी अनुवाद किए। प्राकृत के कपूर मजरी का भी हिन्दी अनुवाद किया। पाठक एव दशको को समझाने के लिए उन्होने पात्रानुकूल भाषा का स्थान दिया। सत्य हरिश्चन्द्र मे नौकर का बनारसी लोक भाषा म और शया तथा रोहिताश्व का खडी बोली बोलना पात्रानुकूलता के उदाहरण ह।

1-हमारी नाटय परम्परा श्री कृष्णदास प 189-190
2- „ „ प 190
3-हिन्दी नाटक डा बच्चन सिंह पृ 32
4- „ पृ 34

भारतेन्दु के नाटकों में कथानक सामाजिक हैं। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से जन जागृति पैदा करने का उपक्रम किया। इन्हीं के लिए भारतेन्दु ने नाटक लिखे और खेले। भारत दुर्दशा में देश भक्ति राष्ट्रीयता 'नील देवी' में भारतीय वीरांगनाओं का चरित्र, अन्धेर नगरी में अंग्रेजी राज्य की मजाक उड़ाना आदि से परिपूर्ण कथानक भारतीयों में जागृति का शंखनाद फूंक रहे थे।

डॉ मिश्र ने नाट्य के मुख्य तत्व-वस्तु नेता और रस की दृष्टि से भारतेन्दु के अनूदित नाटकों (विद्या सुन्दर कर्पूर मंजरी, रत्नावली पाखण्ड विडम्बना, धनंजय विजय और मुद्रा राक्षस की सैद्धान्तिक समीक्षा प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि भारतेन्दु जी का प्रधानतया धीरोदात्त और धीर ललित पर ही विशेष अनुराग लक्षित होता है। इनके स्त्री पात्र सभी स्वकीया कोटि के है।[1] यह भारतेन्दु की सामाजिक दृष्टि का ही प्रमाण है।

वस्तुत प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।[2] भारतेन्दु के मौलिक नाटकों का महत्त्व सर्वोपरि है। जिस प्रकार श्री कृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय नाटक द्वारा आध्यात्मिक प्रतीक नाटकों की परम्परा चलाई उसी प्रकार भारत दुर्दशा नाटक से राजनीतिक प्रतीक नाटकों की परम्परा चली—विषय और उद्देश्य की दृष्टि से 'भारत दुर्दशा' और 'भारत जननी नाटकों का आधार एक है और दोनों में ही प्रतीक शैली का ग्रहण किया गया है।[3]

भारतेन्दु अभिनेता एवं प्रस्तोता

भारतेन्दु जी के युग में चार प्रकार के रंगमंच प्रचलित थे (1) राम लीला (2) रास लीला, (3) नौटंकी और (4) पारसी। वे जानते थे कि उन्हें अपने नाटकों द्वारा इन सभी वर्गों के दर्शकों को आकर्षित करना है तथा उनके मन में देश के अतीत आगत और अनागत की यथार्थ स्थिति को अंकित करना है।[4]

---

1 हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुं चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 194
2 वही पृ 196
3 वही पृ 206
4 वही पृ 232

नाटक लिखना तो भारतेन्दु का एक महत्वपूर्ण काम था ही नाटक मलना उसस भी साहसी काम था विशेषत उस समय जब लार्ड कनाइव और वारेन हेस्टिग्ज के अत्याचार हो रह थे। भारतेन्दु प्रथम साहसी कलाकार थे जिन्होंने 'बनारस थियटर' की नींव डाली [1] और 3 अप्रेल 1868 को शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत जानकी मगल नाटक' भी खेला जिसकी सूचना 7 मई 1868 क इग्लैंड क 'इण्डियन मेल म छपी थी। इनकी नाटक मडली भारतेन्दु नाटक मडली' के न म स प्रसिद्ध हुई। भारतेन्दु ने बहुत से नाटको म अभिनय करक मच की मर्यादाओ को पहचाना। यद्यपि उन्होंने बहुत सी त्रासदिया लिखी फिर भी उनम हास्य का समावश कर दशक रूचि का विशेष ध्यान रखा। उनके नाटक की मच सज्जा बहुत साधारण होती थी। बतलाया जाता है [2] कि 18 वष की उम्र म भारतेन्दु ने 'जानकी मगल नाटक म लक्ष्मण की भूमिका निभायी थी। [3] भारतेन्दु क मच निर्माण क विषय म डा सिंह ने लिखा है कि— उपल ध परदो पर जा दृश्य अकित होते थे उनके अतिरिक्त शेष दृश्य विधान राम लीला और रास लीला की शली पर सहज सुलभ उपकरणो के सन्निवेश द्वारा प्रस्तुत किए जाते थ। इसके प्रेक्षागह के विधान में पर्याप्त स्थिति स्थापकत्व होता था। अभिनेता सब पुरुष ही होते थे स्त्री पात्रों का अभिनय भी उन्ही के द्वारा सम्पन्न होता था।' [4] प्राप्त प्रमाणो क अनुसार भारतेन्दु ने बलिया म सत्य हरिश्चन्द्र नाटक म हरिश्चन्द्र की भूमिका निभायी थी। [5] वस्तुत भारतेन्दु स्वय उच्च कोटि क नाटककार होन क अतिरिक्त कुशल अभिनेता भी थे और अपने नाटकों के अभिनय निर्देशन मे सदा सक्रिय भाग लिया करत थ। [6] बतलाया जाता है कि भारतेन्दु ने अभिनय क उत्थान के लिए पेनी रीडिंग क्लब की भी स्थापना की थी। [7]

---

1 Natyam Allahabad Vol 1, No 1 1962 Page, 28
2 नागरी पत्रिका अक 6 7 माच अप्रल 1968 पृ 90
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ 454
—हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 264
4 हिन्दी नाटय साहित्य और रगमच की मीमासा डा चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 233
5 नागरी पत्रिका वष 1 अक 6 7 माच–अप्रल 1968 पृ 28
6 हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन डा वेदपाल खन्ना, पृ 45
7 हिन्दी नाटक सिद्धात और विवचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 117

कहा जाता है कि जब सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र की भूमिका की तो 'सम 'दु खिना बाला' के नेपथ्य बाबू राधा कृष्णदास तथा हिन्दी नाटय प्रेमी कवि रविन्त मुकुन ने भी भाग लिया था। यहा भारतेन्दु मासदी क मंच हुए अभिनेता सिद्ध हुए थ। उन्होने 'हरिश्चन्द्र' की भूमिका स दर्शकों म इतनी करुणा उत्पन्न कर दी थी कि वे रो पडे। उस समय पर्दों और सीनो का सुन्दर जमाव नही था—बजाज क कपड तानकर जो काम भारतेन्दु जी न कर दिखाया था, उसकी महिमा यूरोपियन लेडियों तक न गाई है।[1] सत्य हरिश्चन्द्र नाटक प्रेम मन्दिर विद्यालय व दावन म भी खेला गया था जिसमे डा सम्पूर्णानन्द न विश्वामित्र की भूमिका का निर्वाह किया था।[2] भारतदुदशा, सत्य हरिश्चन्द्र और वदिकी हिंसा हिंसा न भवति नाटक भारत दु के समय में काशी मे अभिनीत हो चुके है।[3] 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में छप हुए एक समाचार से स्पष्ट है कि बलिया के ददरी के मले में सत्य हरिश्चन्द्र' और नील देवी नाटक खेल गए थे जहा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र भी दशक के रूप में बैठे थे। उस समय के मजिस्ट्रेट ने कहा कि इसक नाटक कवि शिरोमणि शेक्सपियर से भी उत्तम ह।[4]

उक्त तथ्यों द्वारा भारतेन्दु के निर्देशक और अभिनता रूप के दशन होत है।

भारतेन्दु के समकालीन रंगकर्मी

भारते दु न अपनी नाटय प्रस्तुतियां द्वारा रंगकर्मियों का एक मण्डल तयार किया उनस प्रभावित होकर सब श्री बालकृष्ण भट्ट प्रताप नारायण मिश्र 'प्रेमघन रामकृष्ण वर्मा, राधाकृष्णदास आदि रंगकर्मियो ने भी सहयोग किया। बालकृष्ण भट्ट एव प्रताप नारायण मिश्र न इलाहाबाद एव कानपुर म बहुत से नाट्य प्रस्तुतीकरण किए। श्री प्रेमघन स्त्री पात्र की भूमिका करने म दक्ष थ। इसक लिए उन्ह अपनी मूछें भी कटवानी पडी। सामाजिक प्रथा या लोक विश्वास के अनुसार यदि पिता क जीवत रहत कोई पुत्र मूछ कटवा लेता है ता वह पाप माना जाता है। अत

---

1 नागरी पत्रिका (वष 1, अक 6 7 मार्च अप्रेल, 1968) पृ 28
2 पृ 29
3 रंगमंच श्री बलवन्त द पृ 24
4 हिन्दी नाटय साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 264 हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (दिसम्बर 1884 ई, खण्ड 11 सख्या 3)

'प्रेमघन' जी के पिता ने इसका कड़ा विरोध भी किया था।[1] फिर भी 'प्रेमघन' जी अपना कार्य करते रहे। इससे इन रंगकर्मियों के नाट्य प्रेम का पता चलता है जिन्होंने समाज एवं धर्म से भी नाट्य धर्म को कर्त्तव्य माना है। अम्बिका दत्त व्यास, किशोरी लाल गोस्वामी, रौनक बनारसी और विनायक प्रसाद तालिब भी भारतेन्दु युग के ही रंगकर्मी हैं।[2] भारतेन्दु की प्रेरणा से पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. मदन मोहन मालवीय और पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे व्यक्तियों ने अभिनय में अपना योगदान किया।[3]

भारतेन्दु युग के नाटककारों ने मुख्यतः पौराणिक, ऐतिहासिक कथानक चुने जिनमें 'प्रह्लाद', मोरध्वज, कर्ण, ध्रुव, हरिश्चन्द्र, अर्जुन, विषय चन्द्रहास, सावित्री, दमयंती, शिव-पार्वती और कृष्ण सत्यभामा आदि के चरित्र हैं। इस युग का नाटककार पात्रों के शील निरूपण और वस्तु विन्यास की विविध परिस्थितियों की योजना में अलौकिकता को छोड़कर अधिकाधिक मानवीय दृष्टिकोण का समावेश करता है। उसे चिन्ता तो केवल अपने उद्देश्य की है जिसे वह अपने दर्शकों की सांस्कृतिक और भौतिक चेतना को प्रबुद्ध करके और उसमें समाज के तत्कालीन सांस्कृतिक और नैतिक अधःपतन के प्रति असन्तोष उत्पन्न करके सिद्ध करना चाहता है। बड़ी से बड़ी पौराणिक कथा के निरूपण में भी ये लेखक अपने देश की दरिद्रता और दुरवस्था को नहीं भूल पाते हैं। खड्ग बहादुर मल्ल का पारिजात और पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या का 'प्रह्लाद' नाटक इसके उदाहरण हैं।

ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन भी आचरणगत संस्कृति के निर्माण की प्रेरणा हेतु किया गया जिनमें राधाकृष्णदास कृत पद्मावती, महाराणा प्रताप, काशीनाथ खत्री कृत तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक, राधाचरण गोस्वामी अमरसिंह राठौड़, शयन शर अली कृत कत्ल हकीकत राय, गंगा प्रसाद गुप्त कृत वीर जयमाल, श्री निवास दास कृत संयोगिता स्वयंवर और वकुण्ठ राम

---

1 Natyam Allahabad Page 28
2 नागरी पत्रिका वर्ष 6 7 मार्च अप्रेल 1968 पृ 92
3 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा, डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 235

दुग्गल कृत 'श्री हृव' आदि विशेष उल्लेखनीय है।[1] हिन्दी भाषा के प्रति प्रवृत्ति इन लेखकों में उमंग था अन्य भाषा समस्या को लेकर भी कुछ नाटक लिखे गये जिनमें शरत्कुमार मुखोपाध्याय का 'भारतोद्धार' प्रमुख है। भारतेन्दु ने जिस आध्यात्मिक-धार्मिक भावना का श्री गणेश 'चन्द्रावली' नाटिका में किया है उसी लीला का कुछ नाटक तो इन लीलाओं के मूल रूप को सुरक्षित रखने के पक्ष में रहे—परन्तु बहुत ऐसे भी लेखक हुए जिन्होंने दर्शकों को कभी साहित्यिक नाटकों की ओर खींचा और कभी पारसी रंगमंच के गड्ढे में गिराया।[2]

रास लीला सम्बन्धी नाटक भी इस युग में बहुत लिखे गये जिनमें प्रमुख खड्ग बहादुर मल्ल कृत 'महारास', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'प्रभास मिलन' (1903), नद किशोर (1900), ब्रजवासी गोरकवि रचित 'मान चरित्र' माधुरी' कृष्णदास कृत 'जुगल भामिनी लीला' विद्याधर त्रिपाठी की उद्धव यशोद नाटिका (1887) राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्री दामा' (1904) शिवनदन सहाय कृत 'कृष्ण सुदामा' (1870) अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'रुक्मणी परिणय (1894) और भूप नारायण सिंह की श्यामानुराग (1899) नाटिका आदि हैं।

रामलीला सम्बन्धी नाटक भी इस युग में लिखे गये। ज्वाला प्रसाद मिश्र का रामलीला रामायण (1904) सीता बनवास (1895) बदी दीन दीक्षित का सीता स्वयंवर (1856) प्रेमघन कृत प्रयाग रामा गमन (1904), वामनाचार्य कृत बारिध नारबंध-पाथान' (1904) आदि इस युग की प्रसिद्ध नाट्य कृतियां हैं। इसमें 3 वर्ग हैं— प्रथम वे नाटक जो परम्परागत रामलीला के तात्विक, धार्मिक एवं अभिनयात्मक प्रणाली का पालन करते हैं, दूसरे वे जो रंगमंच की नई प्रवृत्तियों को भी अपनाए हुए हैं किन्तु साथ साथ परम्पराओं का पल्ला नहीं छोड़ पाए हैं तीसरे वे जो प्राचीन राम लीला परम्परा से अपना नाता बिल्कुल तोड़ चुके हैं।[3] ये अधिकतर 'राम चरित मानस' के आधार पर निर्मित हुए हैं।

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कु चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 269 272

2 वही पृ 277

3 वही पृ 284

इन नाटकों में मनोवेगों की विशेष उत्तेजित अवस्था की अभिव्यक्ति के लिए गीतों का प्रयोग किया गया है।[1]

अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव से किशोरीलाल गोस्वामी ने मयंक मंजरी महानाटक में मयंक और नीरन्द्र को रंगमंच पर चुम्बन और आलिंगन की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करके हिन्दी नाटक या भारतीय नाट्य शास्त्र की सांस्कृतिक मर्यादाओं का उल्लंघन किया था।[2] इस युग में हास्य के भी कई रूप चले।

इस युग के नाटककारों की रंगमंचीयता भी विचारणीय है। डा वेदपाल खन्ना ने श्री राधाकृष्ण दास के महाराणा प्रतापसिंह या राजस्थान केसरी (1897) के लिए लिखा है[3] — नाटक के पहले दृश्य में ही टेकनीक की भारी भूल दिखाई पड़ती है। इस दृश्य में जब परदा उठता है तो महाराणा का दरबार लगा हुआ है। इतने में नेपथ्य में गान की आवाज सुनाई देती है और जब तक नेपथ्य गान समाप्त नहीं हो जाता तब तक महाराणा तथा अन्य पात्र मंच पर बिना किसी चेष्टा गति या वाक् के मौन धारण किए बैठे रहते हैं। कला और टेक्नीक के विचार से यह बड़ा अस्वाभाविक प्रयोग है।

ये नाटककार पाश्चात्य नाटक की आत्मा तक सिद्धांत और व्यवहार की दृष्टि से पहुँच नहीं पाए। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने जो नाट्य-रचना की उसमें केवल नाटक के बहिरंग में ही परिवर्तन हुआ अंतरंग में समसामयिक कथा-वस्तु के चयन और युगीन चेतना के समावेश के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ।[4] इसके कहने का अभिप्राय केवल यही है कि भारतेन्दु युग के नाटकों में केवल नाट्य धर्म का पालन किया गया है[5] दूसरी ओर यह भी स्वीकार्य है कि भारतेन्दु युग में नाटक अभिनय के लिए ही लिखे गये थे। उनकी भूमिकाओं और प्रस्तावनाओं में रंगमंचीय तत्वों जैसे रंग सज्जा, वेष भूषा, प्रकाश योजना तथा नेपथ्य संगीत आदि का प्रमाण मिलता है[6]

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुं चन्द्रप्रकाश सिंह पृ 256 257
—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास डा सोमनाथ गुप्त पृ 85 86

2 हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन डा वेदपाल खन्ना विमल पृ 68

3 वही पृ 64

4 प्रसाद नाट्य और रंग शिल्प डा गोविन्द चातक, पृ 4

5 वही पृ 5

6 वही पृ 258

निश्चय रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी रंगमंच के अभ्युत्थान में भारतेन्दु और उनके युग का ऐतिहासिक महत्व है। भारतेन्दु युग में हिन्दी रंगमंच को एक निश्चित दिशा भी मिल गयी। तत्कालीन मंचित कृतियों पर दृष्टि डालते हुए हम इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि भारतेन्दु कालीन मंच पर ऐतिहासिक पौराणिक और सामाजिक नाट्य कृतियों का प्राधान्य था। ये कृतियां आदर्श यथार्थ पूर्ण तो थी ही साथ ही इनमे व्यंग्य और विद्रोह का भी पुट था। भारतेन्दु कालीन नाट्य प्रस्तुतीकरण मुख्य रूप से जन जागरण के लिए और गौण रूप से कलात्मक मनोरंजन के लिए होता था। अभिनीत नाटकों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्राबल्य था। भारत दुर्दशा, नील देवी आदि इसके उदाहरण हैं। सामाजिक नैतिकता और मानवीय मूल्यों की रक्षा भी इनका उद्देश्य था। वस्तुतः यह युग सुधारवादी था इसलिए तत्कालीन नाट्य कृतियां सामाजिक आदर्श से ओत प्रोत दिखाई देती हैं। भारतेन्दु के समकालीन पारसीक थियेटर के नाट्य प्रदर्शन अमर्यादित हो चले थे उनमें भाव और भाषा की शुद्धता नष्ट हो गयी थी इसलिए भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य रंगकर्मियों ने शुद्ध साहित्यिक हिन्दी नाट्य कृतियों को महत्त्व दिया, साथ ही भारतीय विचारधारा को भी बल प्रदान किया। इन कृतियों में सत्य हरिश्चन्द्र वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति शकुंतला (राजा लक्ष्मण सिंह) कलयुगी जनेऊ रामाभिषेक अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, कलि प्रवेश, गोसंकट, जयनारसिंह की, आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युगीन नाट्य कृतियों में गद्यपद्य पूर्ण संवाद ब्रज और खड़ी बोली का सम्मिलित प्रयोग पर्याप्त रंग संकेत, दीर्घ संवाद सरल सरस भाषा और स्वाभाविक अंक दृश्य विभाजन प्राप्त होता है। इन पर संस्कृत नाट्य विधान का गंभीर प्रभाव है साथ ही बंगला मराठी, अंग्रेजी आदि के संस्पर्श के कारण कुछ नए मौलिक प्रयोग उपस्थित करने की भावाकुलता भी।

भारतेन्दु कालीन हिन्दी मंच पर अभिनय को पर्याप्त महत्व दिया जाता था अभिनय कला में अतिनाटकीयता अधिक थी। उच्च स्वर, संगीत पूर्ण वाणी और सुंदर आकार प्रकार को अधिक प्रश्रय दिया जाता रहा है। इस युग में स्त्री पात्रों की भूमिकाएं भी पुरुष ही किया करते थे। अभिनय कला को सुव्यवस्थित और सुसम्पन्न बनाने के उद्देश्य से कुछ क्लबों और नाट्य प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गयी थी। भारतेन्दु का 'थियेट्रिकल क्लब' इसका एक उदाहरण है। इस युग के प्रमुख रंगकर्मियों में भारतेन्दु के अतिरिक्त माधव शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र भट्ट गोपाल दत्त आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग की प्रमुख नाट्य संस्थाएं प्रायः नाट्य

सभा रेल्वे थियेटर श्री रामलीला नाटक मंडली नेशनल थियेटर नागरी प्रवर्द्धिनी सभा बलिया नाट्य समाज (1884) भारतेन्दु मंडल कानपुर, एम ए क्लब, श्री भारत मनोरंजनी सभा कानपुर रसिक मंडल, विक्रम नाट्य समिति भारत एन्टरटेनमेंट क्लब, विजय नाट्य समिति आदि संस्थाएं कार्यरत थी।

भारतेन्दु कालीन मंच व्यवस्था और नाट्य प्रस्तुतीकरण अधिक जटिल नहीं दिखाई देता। इस युग के कुछ प्रयोग अवश्य उल्लेखनीय है जैसे राम लीला की चित्र मन्दिरा के समान नाटकों की मौन भांकी चौखटों से परिपूर्ण मंच, व्यक्तिगत घरों (घरेलू मंचो) पर नाट्य प्रदर्शन सार्वजनिक स्थानों (मेला, बाजार आदि) में चल मंच का आरम्भ आदि। इन मंचो पर परदों का प्रयोग और दृश्यांकन आरम्भ हो गया था। पारसीक प्रभाव से कभी कभी चमत्कार प्रदर्शन भी किया जाता था जैसे दुर्गेश नन्दिनी में दुर्ग तथा कारागार का दृश्य और वीरेन्द्र सिंह के सिरोच्छेदन का चमत्कार।

भारतेन्दु युगीन दर्शक और समीक्षक वर्ग का विश्वस्त विवरण प्राप्य नहीं है। केवल ब्राह्मण नामक पत्र में जी राम नारायण त्रिपाठी और प्रताप नारायण मिश्र द्वारा लिखित कुछ नाट्यालोचनाएं प्राप्त होती हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय प्रबुद्ध दर्शकों का अभाव था। इसकी अर्थव्यवस्था का भी कोई निश्चित स्रोत नहीं दिखाई देता। यह प्रबंध प्राय नाट्य प्रेमी व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक आधार पर किया जाता था।

स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग का हिन्दी रंगमंच के इतिहास में अभूतपूर्व योगदान रहा है।

द्विवेदी युगीन हिन्दी रंगमंच—

युग प्रवर्तक आचार्य द्विवेदी ने 'नाट्य शास्त्र' नामक रचना लिखी परन्तु अन्दित नाटक न लिखे जाने पर जो क्षोभ व्यक्त किया उससे उस युग में कुछ परिवर्तन आया और व्यर्थ के नाटककारों की छटनी हो गयी। उन्होंने लिखा नाटक लिखने की प्रणाली का जिन्हें अत्यल्प भी ज्ञान नहीं उन्होंने भी हिन्दी में नाटक लिखने की कृपा की है—नाटक लिखना लोगों ने खेल समझ रखा है।[1] इस प्रकार की कड़ी

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ 493
—हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 331
—प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प डा गोविन्द चातक पृ 8

चेतावनी और भटमना से कुछ कचरे[1] और नीम हकीम'[2] नाटककारों की बाढ रुक गयी और अच्छे नाटककार उभर कर सामने आए। इनमे अयोध्या सिंह उपाध्याय बालकृष्ण भट्ट कौशिक उग्र गोविन्द वल्लभ पंत, मिश्र बंधु किशोरी लाल गोस्वामी सुदर्शन माखन लाल चतुर्वेदी, जी पी श्रीवास्तव चतुरसेन शास्त्री मथिलीशरण गुप्त आदि मुख्य थे। इनके अलावा भगवती प्रसाद रुद्र दत्त शर्मा, लोचन प्रसाद कृष्णानंद जोशी कुंजी लाल जैन जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी नाटक लिखे। लाला सीताराम सत्य नारायण कविरत्न, रूप नारायण पाण्डेय आदि ने कुछ नाटकों के अनुवाद भी किए। कथानक की जटिलता, चरित्र चित्रण और संघर्ष की शिथिलता तथा जीवन के उद्दीप्त क्षणों को नाटकीय स्थिति में पकड़ने की सामर्थ्यहीनता इन नाटकों में फिर भी बनी रही जिसके कारण द्विवेदी युग के नाटकों की साहित्यिक उपलब्धि सीमित ही मानी जायगी। डा सोमनाथ गुप्त और गुलाबराय ने इस काल को संधि काल कहा है।[3]

संभवत इसलिए कि भारतेन्दु से प्रसाद के बीच की कड़ी की नाटकीय एवं रंगमंचीय रूप में जोड़ने का काम द्विवेदी जी ही करते रहे। यों यह काल एक प्रकार से नाट्य परिष्करण युग अथवा द्विवेदी-दीक्षा युग ही है। कुछ विद्वानों ने इसे 'अनुवाद युग' भी कहा है परन्तु यह नाम उपयुक्त जान नहीं पड़ता। सही माने में यह भारतेन्दु युग के नाटकों का ह्रास काल ही है।[4]

यह युग महान् राजनीतिक हलचलों और राजा राम मोहन राय स्वामी दयानंद लार्ड कर्जन, कांग्रेस गरम-नरम दल बंगभंग विरोधी आन्दोलन का युग था। इस समय मदन मोहन मालवीय और राजर्षि टण्डन जी का सहयोग पाकर माधव शुक्ल और महादेव भट्ट जैसे अभिनेताओं ने क्रांतिकारी कदम उठाये। अब इनके प्रयत्न से संस्थापित नाट्योपनान्त्रियों और नाट्य प्रवृत्तियों का अध्ययन अपेक्षित है।

द्विवेदी युगीन रंगमंच पर समग्र रूप से दृष्टि डालने से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इस युग में अभिनीत होने वाली नाट्य कृतियां प्राय ऐतिहासिक पौराणिक और सामाजिक विषयों से सम्बद्ध थी। किन्तु बीच बीच में

---

1 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 333

2 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प डा गोविन्द चातक पृ 89

3 हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास डा सोमनाथ गुप्त पृ 89 (चौथासंस्करण)

4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा डा कुं चन्द्रप्रकाशसिंह पृ 335

व्याज रूप से राजनीतिक समस्याओं की ओर भी सकेत कर दिया जाता था। उदाहरणार्थ महाराणा प्रताप नाटक का प्रारम्भ जय जय श्री त्रिलोक देव भारत हितकारी गीत से किया गया था और सीता स्वयवर नाटक में धनुष यज्ञ प्रसग के अन्तर्गत यह प्रक्षेप किया गया था कि ब्रिटिश कूटनीति के समान कठोर शिव धनुष को टस से मस नहीं किया जा सकता। ऐसा उल्लेख है कि मालवीय जी ने इस पर आपत्ति प्रकट की थी। तात्पर्य यह है कि तत्कालीन नाट्य प्रदर्शनों द्वारा जन जागृति उत्पन्न करने का उपक्रम किया जाता था। यह आयोजन कहीं-कहीं प्रतिबंधित भी कर दिए गए थे। माधव शुक्ल द्वारा सचालित हिन्दी नाट्य समिति सरकारी कोप-भाजन बन जाने के कारण बद कर दी गयी थी। सभवत इसीलिए इस युग के नाट्य प्रदर्शन में प्राप्त होने वाले राजनीतिक सकेत प्राय प्रतीकात्मक हैं। इस काल की प्रमुख अभिनीत कृतियों में अधेर नगरी नील देवी हर हर महादेव शकुन्तला प्रयाग रामागमन, कुवनदहन चन्द्रकलाभानुकुमार रामायण सत्य हरिश्चन्द्र महाराणा प्रताप सुभद्रा हरण वीर अभिमन्यु मेवाड-पतन भीष्म, शाहजहा चन्द्र गुप्त (डी एल राय) मुद्रा राक्षस राम लक्ष्मण सवाद (1913) महाराणा राजसिंह सर्गमित्र आदि हैं। इस युग में विदेशी नाटकों जैसे जूलियस सीजर का हिंदी रूपान्तर भी खेला गया। इसके अतिरिक्त अच्छे नाटकों की अनेक आवृत्तियां भी हुईं जैसे महाराणा राज सिंह के 8 बार खेले जाने का प्रमाण मिलता है।

द्विवेदी युग एक प्रकार का सकलन युग है। इसमें संस्कृत नाट्य यूरोपियन नाट्य शैली पारसीक थियेटर लोक नाट्य और हिन्दी के निजी रगमच का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। नाट्य कृतियों में अनूदित कृतियों की भरमार है और नाट्य शैलियों में कई कलाओं का सम्मिश्रण है।

इस युग के प्रमुख रंगकर्मियों में माधव शुक्ल बाल कृष्ण भट्ट पुरुषोत्तमदास टंडन, मदन मोहन मालवीय गोपालदास ब्रजचद, जगन्नाथदास श्री कृष्णदास डा श्याम सुन्दर दास, राय कृष्ण दास रघुनाथ वाजपेयी राजाराम नागर रमा शकर गुलेरी केशव प्रसाद खत्री ईश्वरी प्रसाद भाटिया बाबू नारायण प्रसाद अरोडा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कैलाश नाट्य समिति कानपुर में सर्व प्रथम युवा कलाकारों द्वारा स्त्री पात्रों की भूमिका अदा करने का उल्लेख भी इस युग में मिलता है।

द्विवेदी युग की प्रमुख नाट्य सस्थाओं में नागरी प्रवर्द्धिनी सभा (काशी) श्री राम लीला नाटक मडली (प्रयाग), बायज ड्रामेटिक क्लब (काशी), नागरी

नाट्य कला संगीत प्रवर्तक मंडली (काशी) नागरी नाटक मण्डली (काशी) भारतेन्दु नाटक मंडली (काशी) काशी नाटक मंडली (काशी), आनन्द भारतेन्दु नाटक मंडली (काशी), हिन्दी नाट्य समिति (प्रयाग) हिन्दू यूनियन क्लब लखनऊ भारत नाट्य समिति कानपुर के नाम नाट्य समिति कानपुर हिन्दी नाट्य परिषद् कलकत्ता आदि की गणना की जाती है। ये संस्थाएं व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा स्थापित, संचालित थीं। इनकी आर्थिक स्थिति प्रायः शोचनीय थी। नागरी नाट्य कला संगीत-प्रवर्तक नाटक मंडली को अवश्य धनाढ्य संस्था कहा गया है।

इस युग के नाट्य प्रस्तुतीकरण बहुत कलात्मक नहीं थे। मंच का निर्माण सार्वजनिक स्थल पर ही होता था और घर में छोटे-छोटे परदे लगा कर के नाट्य प्रदर्शन किया जाता था। कुछ मंडलियों के पास पर्याप्त नाट्य उपकरण थे। प्रायः ये संस्थाएं उधार और मांगनी के परदों से काम चलाती थी। इसके प्रस्तुतीकरण प्रायः दीर्घ कालिक होते थे। जैसे माधव शुक्ल ने रामायण नाटक लगातार तीन दिनों तक चला था। एक एक नाटक की अनेक आवृत्तियां होती था जैसे भारतेन्दु मंडली के महाराणा प्रताप नाटक को निरंतर दो वर्षों तक खेला गया था। नाटकों के पूर्वाभ्यास का भी प्रमाण मिलता है। सत्य हरिश्चन्द्र का पूर्व अभ्यास भारतेन्दु नाटक मंडली द्वारा लगभग एक वर्ष तक किया गया था।

द्विवेदी युगीन प्रस्तुतना में सादगी दिखाई देती है। कभी कभी कुछ चमत्कार प्रयोग भी मिल जाते हैं जैसे सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में एक ट्रांसफर सीन का विधान किया गया था जिसके अनुसार भगवान के प्रकट होने समय श्मशान स्वर्ग में परिणत हो गया था। द्विवेदी युगीन अभिनय कला अतिनाटकीयता प्रेरित थी। इसमें हास्य रस और प्रहसन को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था। इसीलिए रंगले पन में मसखरेपन पाशाकों का प्रचलन था। इस युग के रंगकर्मों में सभी वर्गों के व्यक्ति थे। राजाओं महाराजाओं का सम्मिलित होना विशेष गौरव का विषय बनता था। कुलीन वर्ग प्रायः अपना कला प्रेम प्रदर्शित करने के लिए कलाकारों को पुरस्कार स्वरूप रौप्य पदक प्रदान करता था। इसी युग की नागरी नाटक मण्डली ने मुद्रित आमंत्रण पत्रों द्वारा दर्शकों को बुलाना आरम्भ किया। रंगमंचीय समीक्षाओं का भी इस युग में पर्याप्त-प्रचलन हो गया था। हिन्दी-प्रदीप-सरस्वती अभ्युदय, मर्यादा, विशाल भारत आज, भारत जीवन' आदि में इसके प्रमाण प्राप्य हैं। अर्थ व्यवस्था प्रायः सम्पादन उद्योग के आधार पर की जाती थी। सरकारी अनुदान के उदाहरण प्राप्त नहीं होते हैं।[1]

बल दिया है।[1] प्रसाद के नाटकों में गीत कविताओं के साथ नृत्य की प्रवृत्ति भी संस्कृत से अपनाई गई है। प्रसाद के नाटकों में आकर्षक दृश्यों के पीछे पारसी प्रभाव है।[2]

रंगमंच पर युद्ध नदी समुद्र आंधी आग मेघ मल्ल युद्ध उल्कापात आदि इस प्रभाव के उदाहरण हैं। वस्तुत पारसी रंगमंच पर आग पानी और आंधी के दृश्य इतने लोकप्रिय थे कि प्रसाद उसका विरोध करने पर भी उन्हें छोड़ न सके।[3] यही बात पात्रों के अचानक प्रकट होने में देखी जा सकती है। पारसी रंगमंच के दर्शकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए वे साँप चीता भेड़िया आदि का भी मंच पर लाते हुए न भूले।[4] प्रसाद के कई गीतों में पारसी रंगमंच का हल्का पन है[5] यथा-

1 लूट लिया मन ऐसा चलाया तीर कमान
(विशाख पृ 45)

2 मेरे मन को चुराके कहाँ ले चले।
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला के चले।।
(विशाख पृ 53)

3 प्यारे निर्मोही होकर मत हमको भुलाना रे।
(अजात शत्रु पृ 41)

4 बच्चा बच्चा से खेल हो प्रेम भरा सकते मन में—
(अजात शत्रु)

ये गीत भी पात्रों पर थोपे गए हैं यद्यपि ये कथावस्तु में बाधक नहीं होते।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि प्रसाद के नाटकों में रंगमंचीय परिस्थितियों की ओर ध्यान कम और साहित्यिक सौष्ठव की ओर अधिक पाया जाता है।[6] अस्तु यह स्पष्ट है कि प्रसाद ने संस्कृत की दृश्य विधायक संवाद परम्परा को पुनः सुधारा है नाटक में शब्दों को नाटकीय मौलिकता एवं अर्थवत्ता प्रदान की है। स्वगत भाषणों[7] की उपयोगिता का खंडन किया है। नाटक के आरंभ में स्वगत

---

1 प्रसाद नाट्य और रंग शिल्प डा गोविन्द चातक पृ 272
2 वही पृ 273
3 वही पृ 274
4 वही पृ 275
5 वही पृ 276 77
6 हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि डा गिरिजा सिंह पृ 15
7 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प डा गोविन्द चातक पृ 293

भाषण ।। हैं तो मंच पर अपेक्षित वातावरण की सृष्टि करते हैं और अंत में आते हैं तो दृश्य की पर परिणति प्रस्तुत करते हैं। उनके नाट्य गीत प्राय नाटक की आत्मा और उपयुक्त वातावरण निर्माण में सहायक होते हैं प्रसाद के गीतों की सृष्टि मनोरंजन के लिए भी हुई है।[1] कई गीत राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने वाले हैं।

प्रसाद ने भारतेंदु कालीन राष्ट्रीय विचारधारा को बल प्रदान किया है और परम्परा का निर्वाह किया है। इनके गीतों में परिस्थिति विशेष का उद्घाटन 'मनोरंजकता' मानवी प्रेम' और ईश तथा देश प्रेम' भी है।[2]

प्रसाद के मंचित नाटक—

प्रसाद जी का यह कथन सत्य है कि हिन्दी का कोई अपना रंगमंच नहीं है।[3] उस समय वास्तव में हिन्दी रंगमंच संतोषप्रद नहीं था। उन्होंने पारसी रंगमंच को हिन्दी का भाग नहीं माना है उनके नाटक साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं किन्तु उनके प्रदर्शन में बहुत जोर पड़ता है। उन्होंने भविष्य में नाटकोपयुक्त रंगमंच बनने की कामना की थी।[4] श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के अनुसार प्रसाद जी के नाटकों को 'बिना काटे छांटे मंच पर प्रस्तुत करना कष्टसाध्य है। कुछ तो उतने लम्बे नाटक हैं कि उन्हें पूर्ण रूपेण प्रस्तुत किया जाय तो दर्शकों को सारी रात हाल में बैठना पड़ेगा।[5] पर इसका अर्थ यह नहीं कि उनके नाटक मंच पर प्रस्तुत किए ही नहीं जा सकते। निर्देशक मंच का अधिष्ठाता होता है। उसे पूर्ण अधिकार होता है कि वह नाटकों में अपनी सुविधानुसार काट छांट करे। इस दृष्टि से प्रसाद के नाटक अरंगमंचीय नहीं कहे जा सकते। प्रसाद जी के समय में चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त अजातशत्रु आदि नाटक मंचित हुए थे। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार बताया जाता है कि सन् 1926 में काशी में प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक का मंचन हो रहा था उसके दर्शकों में स्वयं प्रसाद जी भी विद्यमान थे।[6] 13 14 दिसम्बर सन् 1933 की बात है 'चन्द्रगुप्त नाटक काशी के रत्नाकर रसिक मंडल द्वारा खेला गया था, जिसके दर्शकों के रूप में स्वयं जयशंकर प्रसाद और सम्पूर्णानन्द आदि जैसे वरिष्ठ व्यक्ति बैठे थे। कहते हैं पूर्वाभ्यास के समय भी स्वयं प्रसाद कलाकारों के मध्य बैठा करते

1 प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डा प्रेमदत्त शर्मा प 45
2 हिंदी नाटक साहित्य का इतिहास डा सोमनाथ गुप्त, प 157
3 काव्य और कला तथा अन्य निबंध प्रसाद प 106
4 नाट्यम इलाहाबाद प 49
5 नागरी पत्रिका वर्ष 1, अंक 6-7 मार्च अप्रेल 1968 प 24
6 प्रसाद और आज का हिन्दी रंगमंच डा करुणाशंकर लाल प 96

थ। चन्द्रगुप्त नाटक के पात्रों में सर्व श्री बनारसीदास ??नीदास ??राम रहन वन्नी बाबू प्राताप सीता राम चतुर्वेदी चन्द्र शेखर ??लिन सहाय?? और डा वीरेन्द्रनाथप्रसाद व प बालानाथ पाड आदि व्यक्तियों ने भाग लिया था।[1] चन्द्र गुप्त नाटक प्रसाद जी के बाद भी कई बार मंचित गया। श्री शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र' सुधाकर पाण्डेय आदि के द्वारा भी मचित हो चुका है। था रुद्र ने चाणक्य की भूमिका निबाही था।[2] नागरी नाटक मडली (काशी) के कलाकारों द्वारा स्कन्दगुप्त नाटक भी मचित हो चुका है जिसमें श्री वीर बाबू और दोरेश्वर बनर्जी ने प्रशंसनीय भूमिकाए की थी।[3] काशी के अतिरिक्त प्रसाद जी के नाटक और कई जगह मचित हो चुके हैं। आज भी हो रहे हैं और अभी इनके प्रतिराधिक मचन की सम्भावनाए भी हैं।

अनेक संस्थाओं द्वारा उनकी अन्य कृतियां कामायनी पुरस्कार आदि प्रसाद आदि को नाट्य के रूप में प्रदर्शित किया गया है। एक अत्यन्त प्रमुख और जटिल किन्तु साथ ही गहरी अभिव्यजनाओं से भरपूर विषयवस्तु (कामायनी) को नाट्य और अभिनय द्वारा स्थापित करने के प्रयास में (निर्देशक) श्री नरेन्द्र शर्मा का यत्न 'एक नये रचनात्मक स्तर के रूप में सिद्ध हुई है। निष्कर्ष यह है कि प्रसाद के नाटकों को अरगमचीय बतलाना उचित नहीं है।

वस्तुत प्रसाद के नाटकों के सर्वथा अभिनेय का प्रयास उस समय अस्वीकृत कर लिया गया था किन्तु आगे के नाट्य मडली के अभिनयों ने असत्य प्रमाणित कर दिया। इस मडली ने नागरी प्रचारिणी सभा के स्वर्णजयन्ती महोत्सव पर चन्द्रगुप्त नाटक का सफल अभिनय किया। काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन पर स्कन्दगुप्त नाटक का बड़ा सफल अभिनय हुआ था। द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथोत्सव के अवसर पर ध्रुवस्वामिनी का सफल अभिनय हुआ था। उस समय तक ध्रुवस्वामिनी प्रकाशित नहीं हुई थी यह अभिनय प्रसाद जी की पाण्डुलिपि के आधार पर किया गया था।[4]

प्रसाद के नाटकों पर दृश्य बाहुल्य का आक्षेप किया जाता है पर इस समस्या का निदान सरल है। असम्बद्ध दृश्यों को काट छांट कर उन्हें दूसरे से मिलाकर अर्थात् नाना बहुत सम्पादन कर पात्रों की कटौती और भाषा में किंचित

---

1 नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6-7 मार्च अप्रैल 1968) पृ 95
2 वही पृ 98
3 वही पृ 97
4 हिन्दी नाट्य साहित्य और रगमच की मीमांसा डा कुंवर चन्द्र प्रकाशसिंह पृ 364

परिवर्तन अथवा सवादों को कुछ जोड़ तोड़ कर फालतू और असम्बद्ध दृश्यों को हटाया जा सकता है।[1]

किंतु सफल निर्देशक वही है जो प्रसाद के नाटकों को अविकल प्रस्तुत करे। उन्हें नव प्रचलित मंच पनोमोनिक थियेटर पर तो बहुत सुविधा के साथ उतारा जा सकता है।

प्रसाद के समकालीन रंगकर्मी एवं उनके नाट्य प्रस्तुतीकरण—

प्रसाद के कई समसामयिक नाट्य लेखक हैं जैसे सवश्री सुदर्शन (दयानन्द 1917) बलदेव प्रसाद मिश्र (मीरा बाई 1918) 'वासना वभव', 'असत्य सकल्प 1925 प्रेमचन्द (करबला 1924 बद्रीनाथ भट्ट (दुर्गावती 1926) वेन चरित्र (1921) वियोगी हरि (प्रबुद्ध यामुन 1929) छद्म योगिनी (1923), उदय शंकर भट्ट (चन्द्रगुप्त मौर्य 1931 विक्रमादित्य 1933, गोविन्द दास (हर्ष 1935) मथिली शरण गुप्त (तिलोत्तमा और चन्द्रहास 1916) अवध 1925 मिश्र बंधु (पूर्व भारत 1922 तथा 'उत्तर भारत 1923) सुदर्शन (अजना 1922), लक्ष्मी नारायण मिश्र (सन्यासी, मुक्ति का रहस्य 1932 और 'राक्षस का मन्दिर 1931) दुर्गादत्त पाण्डे (रास नाटक 1924), कुन्दनलाल शाह (राम लीला नाटक 1927) मथुरादास (रुक्मिणी परिणय 1917) विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक (भीष्म 1918) शिवनन्दन मिश्र (उषा 1948) द्वारिका प्रसाद (वनवास 1921) गोविन्द वल्लभ पंत (वरमाला 1925) अंगूर की बेटी, अन्तःपुर का छिद्र जगन्नाथशरण (कुरुक्षेत्र 1928), कामता प्रसाद गुरु (सुदर्शन 1931) बेचन शर्मा उग्र (महात्मा ईसा 1922) चन्दराज भंडारी (सिद्धार्थकुमार 1922 और सम्राट अशोक 1923 जगन्नाथ मिलिंद (प्रताप प्रतिज्ञा 1928 कृष्णकुमार मुखोपाध्याय (तुलसीदास 1929 आदि।

ये नाटक अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं और महापुरुषों के चरित्रों पर आधारित हैं। ये प्रायः चरित्र प्रधान नाटक हैं। इनका उद्देश्य जन मानस में देश प्रेम और स्वातन्त्र्य प्रेम उत्पन्न करना था।

कुछ ऐसे भी नाटक आए जो राजनैतिक जागृति के प्रतीक थे उनमें काशी नाथ वर्मा का समय (1917) प्रेमचंद का संग्राम (1922) कन्हैया लाल का देश दशा (1923) न मर्गसिंह का गुलामी का नशा (1924) तथा इनके साथ कुछ समस्या नाटक, अनुवाद और प्रहसन भी इस काल में लिखे गए।[2]

---

1 प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प डा गोविन्द चातक पृ 285 86

2 हमारी नाट्य परम्परा श्री कृष्णदास पृ 579 म 81

उपरलिखित नाटकों की इस भीड़ के बावजूद भी यह युग मंचन की दृष्टि से सूना ही रहा नाट्य प्रदर्शन इस युग का विषय नहीं रहा इसीलिए इनके प्रदर्शित नाटकों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

प्रसाद युग के कुछ अभिनेता लेखकों का पता अवश्य चला है जिनमें पंडित हरिशंकर प्रसाद बाबू दुर्गा प्रसाद और पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र उल्लेखनीय हैं। रुद्र कार्तिकेय भी अपने को उग्र मंडल के सदस्य मानते हैं। पंडित हरिशंकर प्रसाद उपाध्याय अहमदाबाद की पारसी हिन्दी नाटक के सूर विजय में वेतनिक नाटककार थे। इन्होंने उस कम्पनी के महाभारत नाटक में भीम की भूमिका ग्रहण की थी। इनके दो नाटक काशी दर्शन और काशी विश्वनाथ महत्वपूर्ण हैं जिनमें प्रथम नाटक में काशी के गुण्डों का पर्दाफाश किया गया है।[1] इन्होंने राष्ट्रीय नाटक भी लिखे थे। बाबू दुर्गा प्रसाद जी बम्बई की इम्पीरियल नाटक कम्पनी से सबद्ध थे। उनके नाटक 'वीर हम्मीर' ने पर्याप्त प्रसिद्धि पायी। गुजराती मराठी और अंग्रेजी पात्रों ने एक स्वर से दुर्गा प्रसाद जी को हिन्दी का महान् नाटककार स्वीकार किया और उनकी तुलना गोल्डस्मिथ ही नहीं, शेक्सपियर तक की।[2] दुर्गा प्रसाद जी ने काशी में अभिमन्यु का सफल अभिनय भी किया था। वे प्रतिनायक अथवा खलनायक की भूमिका बहुत खूबी से निभाते थे। प्रसिद्ध साहित्यकार उग्र जी की नाट्यकृति महात्मा ईसा ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की थी। इन्होंने द्विजेन्द्र लाल राय के चन्द्रगुप्त नाटक में छाया की भूमिका की थी।

इसके अतिरिक्त उक्त युग के अन्य रंगमंचीय तत्व पूर्वाभ्यास रंगलेपन, प्रस्तुतीकरण दर्शक संगीत प्रकाश ध्वनि प्रयोग अर्थव्यवस्था मंच निर्माण मंचन आदि का स्पष्ट एवं विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

हिन्दी रंगमंच के इतिहास में प्रसाद युग का अभूतपूर्व योगदान है। इस युग में नाट्य कृतियों को शुद्ध साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया गया और उन्हें सुरुचि सम्पन्न भी बनाया गया। प्रसाद जी के नाट्य प्रयोगों द्वारा एतिहासिक पौराणिक सामाजिक समस्यापरक एकांकी भाव नाटक गीति नाट्य आदि शिल्पों का आविष्कार हुआ और इस प्रकार रंगमंच में विविधता या बहुरूपता के दर्शन हुए। इन कृतियों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का सन्निवेश तो है साथ ही पर्याप्त रंग संकेत, विधिवत अंक दृश्य विभाजन कुतूहल और रोमांचक दृश्य भी प्रकट हुए। इनकी भाषा तथा भाव वस्तु कवित्वपूर्ण बन गए और इस प्रकार ये नाटक संस्कृत

2 नागरी पत्रिका अंक 6 7 मार्च अप्रैल 1978 पृ 93

3 वही पृ 94

नाट्य परम्परा से संयुक्त हो गए। प्रसाद युग पर पारसीक थियेटर का प्रभाव तो पड़ा ही था कुछ कुछ पाश्चात्य ट्रेजेडी एवं भारतेंदु का भी प्रभाव देखा जाता है। इस नाटकों में ऐतिहासिक विषयों का आधिक्य है और रोमांटिक-कल्पना का भी। नाट्य कृतियाँ प्रायः और धार्मिक या महाराष्ट्र शैली में लिखी गयी हैं।

इस युग के रंगमंचीय प्रदर्शन अत्यल्प हैं। संस्थाबद्ध प्रयास के रूप में 4 5 नाट्य संस्थाएं सक्रिय दिखायी देती हैं। नागरी नाटक मंडली (काशी) हिन्दी नाट्य समिति (प्रयाग) इलाहाबाद यूनिवर्सिटी एसोसियेशन कलचर सेंटर (इलाहाबाद) आदि। रंगकर्मियों में माधव शुक्ल डा. रामकुमार वर्मा राय कृष्ण दास श्री कृष्णदास अभिनव भरत सीताराम चतुर्वेदी, 'रुद्र' काशिकेय, सर्वानंद आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग के मंच पर स्त्रियों के उतरने की समस्या पहिले जमी ही थी। कुमारी सत्यवती ने माधुरी में रंगमंच पर स्त्रियों का स्थान शीर्षक निबंध प्रकाशित कर इसे कलाकारों को आमंत्रित किया था किंतु इसकी भी उग्र प्रतिक्रिया हुई थी।[2]

इस युग के प्रस्तुतीकरण अपेक्षाकृत जटिल दिखाई देते हैं। प्रसादजी अत्यंत समुन्नत और सुविकसित रंगमंच की मांग कर रहे थे। परिणामतः हिन्दी नाटक मंच से कुछ दूर हो गया। अर्थ व्यवस्था भी बहुत सुनिर्धारित नहीं थी हां दर्शकीय समीक्षाओं का विकास अपेक्षाकृत काफी विकसित हो गया था। 'जागरण, इन्दु, सरस्वती' माधुरी' 'प्रभा' आज में इसके प्रमाण द्रष्टव्य हैं।

निश्चयतः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद युग ने रंगमंच की सैद्धान्तिक सामग्री नाट्य कृतियां और शास्त्रीय पृष्ठभूमि प्रदान की है।

प्रसादोत्तर हिन्दी रंगमंच—

प्रसादोत्तर युग में हिंदी रंगमंच सम्बन्धी अनेक प्रकार के प्रयोग और परीक्षण दिखाई देते हैं। वस्तुतः हिन्दी रंगमंच का व्यवस्थित रूप यहीं प्रकट होता है। इस काल की प्रमुख नाट्य संस्थाओं में पृथ्वी थियेटर (बम्बई) आदर्श भारतेन्दु नाटक मंडली काशी) कल्चर सेंटर (इलाहाबाद), जन नाट्य संघ (इप्टा) ब्रज रंग परिषद (कलकत्ता) रंगमंच (प्रयाग), नूतन कलामंदिर (कानपुर) नीटा (इलाहाबाद। भारतीय विद्या भवन (इलाहाबाद), राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (दिल्ली) थ्री आर्ट्स क्लब (दिल्ली), तरुण संघ (कलकत्ता) काढा (कानपुर) हिन्दी नाट्य परिषद (कलकत्ता) अनामिका (कलकत्ता) संगीत कला मंदिर (कलकत्ता),

---

1 रंगमंच और स्त्रियां सम्पादक बनारसी दास चतुर्वेदी साहित्य सौरभ पृ 233

भारत भारती (कलकत्ता) श्री मारवाड़ नाट्य मण्डल (जोधपुर) नाट्य रंगलोक (जयपुर अजमेर रंग शाला (इलाहाबाद) नाट्य केन्द्र (इलाहाबाद), भारत नाट्य सस्थान (प्रयाग) त्रिवेणी रंगमंच (इलाहाबाद) बालकन जी बारी (इलाहाबाद) रंगवाणी (इलाहाबाद), प्रयाग ता (इलाहाबाद) इलाहाबाद आर्टिस्टस एसासिएशन आदि।

प्रमुख रंगकर्मियो म श्री पृथ्वीराज कपूर डा भानुशंकर मेहता गोविन्द शास्त्री बचन शर्मा उग्र डा राम विलास शर्मा बलराज साहनी, डा रागय राघव, उदय शकर भट्ट अमृत लाल नागर डा जगन्नाथ प्रसाद शर्मा सावल जी उपेन्द्रनाथ अश्क मोहन महर्षि उमाशकर मानता पे पी चन्द्रा विमला रैना, रमेश महता विष्णु कपूर, ओम शिवपुरी गिरीश के सुमन गणपति चन्द्र भण्डारी, विश्वनाथ शर्मा (विष्णु) अनिल गुप्त रूपराज व्यास बाबूलाल बोहरा, अतुल नारायण नागर मोहन महर्षि प्रेमचन्द प्रकाश नागर बजभेव त्रिलोकी नाथ भारद्वाज, श्रीमती शारदा भारद्वाज प्रतिभा अग्रवाल शामानन्द जालान विजय बोस विनोद रस्तोगी आदि आदि उद्धरणीय है। इन सब मे महत्वपूर्ण हैं श्री पृथ्वीराज कपूर—

जिन्होंने पृथ्वी थियेटस की स्थापना 15 जनवरी 1944 को बम्बई म की। इसका उद्देश्य पृथ्वीराज जी के ही शब्दो म था— पृथ्वी थियेटस का निर्माण मने इसलिए किया है कि रंगमच के माध्यम स हिन्दुस्तान की आम जनता को शिक्षित व राष्ट्र के लिए जागरूक बना सकू, ताकि इस विदेशी हुकूमत का जुआ उतार कर जनता फक सक।[1] इस सस्था मे लगभग 90-100 कुशल कलाकार थे। श्री ओकार शरद न 150 छोटे मोटे कलाकार बतलाए हैं। इतन कलाकारो की सस्था को सचालित करन का श्रेय श्री पृथ्वीराज जी को ही है। इन्हे लेकर उन्होने भारत के कोने कोने म जाकर शकुन्तला दीवार पठान गद्दार आहुति, कलाकार, पैसा, किसान आदि नाटय कृतियो को प्रदर्शित किया। सगीत व्यवस्था प्रकाश निदेशन एव सचालन का कायभार वे ही सम्भाले रहत थे। सचालन के लिए इन्हे अथक परिश्रम करना हाता था क्योकि सस्था का 25 हजार रु मासिक खच था।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से देखन पर विदित होता है कि श्री पृथ्वीराज के रंगशिल्प म नाटयधम और रंगपूजा को पर्याप्त स्थान मिला। उनके नाटकों में उपास्य का आह्वान पूवरंग की उपासना और मगलाचरण का विशेष विधान रहा है। अभिनय आरम्भ होने पर एक झकार युक्त वाद्य बजाया जाता था जिसकी ध्वनि शन शन दूरागत हो जाती थी। यदि रात्रि का दृश्य बतलाया जाता हो

1 पृथ्वीराज नाट्यालय पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्रथ लक्ष्मीशकर व्यास पृ 303

अंधकार के साथ आकाश में चन्द्रमा और तारे भी उसी स्वाभाविकता के साथ चमकते एवं प्रकाश करते दिखलाए जाते थे। तारा को सचमुच टूटते हुए भी बतलाया जाता था। प्रभात, ऊषा एवं बालरवि के प्रकाश की अरुणिमा का भी चमत्कार मंच पर बताया जाता था। घर में रोशनदानों के मार्ग से तथा वातायनों से सूर्य एवं चन्द्र के प्रकाश की किरणों की आयोजना दर्शक वृन्द को विस्मय विमुग्ध कर देती थी। श्री पृथ्वीराज ने रंगमंच की प्राचीन परम्परा का अनुगमन किया या साथ साथ देश काल के अनुसार उसमें परिवर्तन भी किए थे। जैसे मंच पर दूर से बोलना तथा विप्लव के वर्जित दृश्य उन्होंने मंच पर दिखाये। इसके लिए श्री पृथ्वीराज कपूर ने मंच की पृष्ठभूमि तथा अपेक्षित भाव संचार हेतु प्रकाश आयोजना का सहारा लिया है।[1] पृथ्वीराज के अभिनय कौशल का एक उदाहरण मिलता है–एक बार काशी में आहुति नाटक का अभिनय हो रहा था। महिलाओं की गोद के बालक रुदन कर ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते थे कि अभिनय में बड़ी बाधा पहुंचती थी। एक दृश्य समाप्त होने के बाद पृथ्वीराज मंच के बाहर आए और दर्शकों से प्रार्थना की कि ऐसे समय में रोने वाले बच्चों को बाहर ले जाना चाहिए। संयोग की बात है कि दूसरे दृश्य में आगे की पंक्ति में बैठी महिला की गोद का बालक रोने लगा। पृथ्वीराज मंच पर अभिनय कर रहे थे। उन्होंने उस अभिनय प्रसंग में कहना शुरू किया अरे पड़ोस के बच्चे बड़े रोते हैं औरतें उन्हें नहीं संभाल पाती। ला मुझे बच्चा देदे। महिला समझ गई और तत्काल उसे शान्त कराने चली गई इस प्रकार नाटकीय कला के निर्वाह में कोई बाधा आए बिना अभिप्रेत कार्य सध गया।[2]

इनके प्रस्तुत नाटकों के कथाशिल्प में एक स्वाभाविक विकासक्रम है। इनमें न अतिमानवीय तत्व हैं और न कोई कृत्रिम अप्राकृतिक नाटकीय चमत्कार। इनके नाटकों में देश भक्ति एवं साम्प्रदायिक एकता की कलात्मक अभिव्यक्ति दृष्टव्य है। नाटकों के कथोपकथन स्वाभाविक एवं व्यंग्यपूर्ण होने के कारण मर्म पर सीधी चोट करते हैं। श्री पृथ्वीराज के नाट्यआयोजन विशेष अवसरों पर देखे जाते हैं जैसे अकाल पीड़ित बंगाल आई० एन० ए० का मुकदमा जहाजियों का विद्रोह पोस्टमैनों की कुलहिन्द हड़ताल किमरा काँग्रेस आदि। वास्तव में पृथ्वी थियेटर का जन्म अखबारों की इन सुर्खियों के वातावरण में हुआ।[1] इनके नाटकों द्वारा साम्प्रदायिक एकता का शंखनाद फूंका जाना भारतवर्ष की बहुत बड़ी सेवा थी।

---

1 पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्रंथ पृ 304

2 वही पृ 305

श्री पृथ्वीराज द्वारा बार बार राप गिरा कर तीस तीम चालीस-च लीस सीन दिखान की परम्परा भी समाप्त कर दी गयी।[2] मच सज्जा की ओर श्री पृथ्वीराज विशेष ध्यान रखत थ। उहोन बडे बडे खभो छत्रधारी सिहासनो और चित्राकित दीवारो तक को भ य रूप मे प्रस्तुत किया है। यहातक कि इनक स्थानो को भी प्रदर्शित किया है कण्व अपनी अन्तर्दृष्टि में प्रेमी दुश्यत और शकुन्तला को देखते हैं। यह दृश्य अधेरे म च पर प्रकाश स्थला की सहायता म प्रदर्शित किया गया एक प्रकाश पु ज ध्यान मग्न कण्व पर क द्रित था तथा दूसरा राजकीय जुगल पर।[3] बताय लिखित शकु तला' नाटक म मच सज्जा एव परिधान के सम्ब ध में कई मतातर ह श्री नर त्तम यास के अनुसार शकु तला नाटक के दृश्यों म तडक भडक नही था तत्कालीन युद्ध वातावरण कल्पित किया गया था। पोपाका मे चमक दमक नही थी पुरातन परिधान था।[4]

श्री राधश्याम कथावाचक क अनुसार पृथ्वी थियटस क सभी नाटको ने सीन सीनरी की तडक-भडक और नाच गान की र गीनी स अपने को ऊपर उठाकर एक दो सटम क द्वारा ही दशक समाज को कथानक सवाद और अभिनय की त्रिवेणी म स्नान कराया है।[5]

इन कायक्रमा की कटु आलोचना भी प्राप्त होती है।[6] इनका शकु तला नाटक का नाटय प्रस्तुतीकरण स्तर च्युत कहा गया है।

पृथ्वी थियटस न बम्बई मे किराये के आपरा हाउस म ही नाटय प्रदशन किए वह भी सप्ताह म कवल दो दिन शनिवार और रविवार को सुबह क्योंकि मध्याह्न एव सायकाल इसके वाग्पीठ में सफेद पर्दा लगाकर फिल्मे चलाई जाती थी। नाटक समाप्त होने के बाद पृथ्वीराज जी स्वय सिर झुकाए प्रवेश द्वार पर झोली

---

1 पृथ्वीराज और नाटय कला पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्र थ श्री बलराज साहनी पृ 313
2 पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्र थ पृ 316
3 पृथ्वी थियेटस पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्र थ श्री बलवन्त गार्गी पृ 341
4 श्री नरोत्तम यास प्रशस्ति पृथ्वीराज कपूर अभिनदन ग्र थ त्रिवदी रगमच प्रकाशन बम्बई।
5 राधश्याम कथावाचक पृथ्वी और दीवार श्री पृथ्वीराज कपूर अभिनन्दन ग्रथ
6 पृ वी थियटस का कृतित्व पथ्वीराजकपूर अभिनदन ग्र थ डा रुक्मणी त्रिपाठी प 321

फैलाकर खड़े हो जाते थे दर्शक गण उसमें यथा शक्ति दान देकर बाहर निकल जाते थे। इस प्रकार एकत्रित धन राशि से बाढ़ पीड़ितों की सहायता की जाती अथवा अकाल ग्रस्त मानव सेवा में वह पैसा दे दिया जाता था।

पृथ्वीराज नाटक प्रदर्शन के बीच थियेटर में पूर्ण शांति बनाए रखने पर जोर देते थे। पर्दा उठने से पहिले बाहे का एक घंटा जोर से बजाया जाता था, जिसको सुनकर दर्शकगण अपने अपने स्थान पर आ विराजते। कड़ी गर्मी में भी वे बिजली के पंखे बन्द करवा देते दर्शक पसीने में तर बैठे रहते। इस समय के लिए अपने स्थानों पर रखे हुए हाथ के पंखा का ही उपयोग कर पाते थे। जब कभी कोई दर्शक जोर से खांसता था या अकारण ही किलकारी लगाता, तो पृथ्वीराज उसको झिड़कने के लिए स्वयं ही मंच पर आ जाते। इस प्रकार अपने दर्शकों पर रंगशाला का वह अनुशासन आरोपित करते जो उनके कलात्मक संस्कारों के विकास के लिए अनिवार्य होना है।[1]

इन नाटकों में गीतों एवं यत्र-तत्र नृत्यों का भी समावेश हुआ है। 'शकुंतला' नाटक से जब दुष्यन्त चला जाता है तब एक गीत होता है—

रही न होश में नजर चले गए चले गए।

मंच पर जब गाना गवाया जाता तो पहले बिल्कुल अंधेरा कर दिया जाता था फिर धीरे धीरे प्रात काल का जोगिया लाइट होती और उसके बाद सवेरा बतलाया जाता था।[2]

श्री पृथ्वीराज की यह संस्था अब उनकी दीर्घावस्था जनित ध्वनि शैथिल्य के कारण बन्द हो गई है फिर भी वे उसके पुनरुद्धार के विश्वासी हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में पृथ्वीराज जी का योग अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने पारसी थियेटर से स्पर्धा कर हिन्दी रंगमंच को युगरुचि के अनुकूल सर्वाङ्गीण स्वरूप दिया है। आज का उन्नत रंगशिल्प उनकी साधना और प्रेरणा का ही सुपरिणाम है।

श्री पृथ्वीराज के अतिरिक्त इस युग की अन्य उपलब्धियां भी विचारणीय हैं। इनमें सर्व प्रमुख है—नाट्य प्रयोग। इस युग ने बाल मंचों की स्थापना की। बालकन जी बारी संस्था का बाल दुर्गोत्सव, प्रदर्शन उल्लेखनीय है। इसका निर्देशन एक बाल कलाकार देवव्रत द्वारा किया गया था।

---

1 पृथ्वी थियेटर्स पृथ्वीराज कपूर अभिनंदन ग्रंथ श्री यशवन्त गार्गी पृ 343
—रंगमंच श्री यशवन्त गार्गी पृ 204-205

2 श्री पृथ्वीराज कपूर से व्यक्तिगत वार्ता

इस युग मे नाटय कला का विविध प्रशिक्षण आरभ हो गया था। नाटय केन्द्र (इलाहाबाद) ने सर्व प्रथम प्रदशन का तकनीकी प्रशिक्षण आरभ किया। भरतनाटय सस्थान (प्रयाग) ने प्रदशन एव प्रशिक्षण पर नाटय प्रवीण की उपाधि भी आरभ की। राष्ट्रीय नाटय विद्यालय ने इस सम्बध मे एक पाठयक्रम निर्धारित किया जिसके अनुमार रगमच का सद्धातिक एव व्यावहारिक ज्ञान देकर कला प्रतिभाओ को उभारने का प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से अखिल भारतीय स्तर के नाटय अधिवेशन भी होने लगे। इप्टा के लखनऊ इलाहाबाद मेरठ शिमला अधिवेशन ऐतिहासिक महत्व के सिद्ध हुए हैं। इस सस्था ने लगभग 400 नाटक खेले जिन्हे लगभग 4 लाख व्यक्तियो ने देखा।

इसी युग मे एक राष्ट्रीय स्तर का रग आन्दोलन आरभ किया गया। परिणामत मच रूपो की खोज और विदेशी नाटय रूपों के अध्ययन की शुरूवात हुई। सस्थागत अथवा राजकीय प्रयासो द्वारा उत्कृष्ट रगकर्मियों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता दी जाने लगी। भारतीय नाटय सघ (प्रयाग) ने अपने 23 केन्द्र स्थापित कर इस काय मे अभूतपूव सहयोग दिया। जन नाटय सघ (इप्टा), प्रयोगो की दिशा मे बहुत सक्रिय रहा है। उसने एक ओर मूक अभिनय की परम्परा स्थापित की (जसे रागेय राघव के आखिरी धब्बा में) और इसने छायाचित्र (शेडो प्ले) का मिश्रित रूप भी प्रयुक्त किया। यह सस्था यूनेस्को से सम्बद्ध होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुच गयी। इसने प्रथम बार आशुनाटको के प्रयोग किए जसे 'प्लानिंग' 'परिवार गिरती दीवार' आदि और गीतो को नाटय से अलग सांस्कृतिक कायक्रम, सास्कृतिक सध्या के रूप म आयोजित करके गीत नाटय सहगान हास्य व्यग्य आदि का नया विधान प्रस्तुत किया। इन सस्थाओ के प्रदशन 3 4 घटो के कहे गए हैं। अधिकतर नाटय प्रस्तुतीकरण दोपहर 3 बजे दखे जाते हैं। ये प्रदशन शहरो गावो म घूम घूम कर भी किए जाते थे। जसे नीटा ने बाढ पीडितो की सहायता हेतु कई नाटक खेले।[1] इप्टा ने भी बगाल के दुर्भिक्ष से प्रेरित होकर अनेक प्रदशन किए और धन सचित कर अकाल पीडितो को भेजा।

इस युग के प्रदशन खुले मच (Open Air Theatre) पर भी आरभ हो गए जसे आज का सवाल नाटक बेकर पार्क आगरा मे बिना प्रकाश और मच सज्जा के 1942 म खेला गया। अधिकाश सस्थाओ ने टिकट व्यवस्था आरभ

डा रामकुमार वर्मा से वार्ता

1 दे भारत की हिन्दी नाटय सस्थाए एव नाटय शालाए डा विश्वनाथ शर्मा पृ 14 16

कर दी थी और किराए के मंचों का प्रयोग भी शुरू हो गया। कुछ संस्थाएं विज्ञापनों से धन कमा लेती थीं और टिकट नहीं लगाती थीं जैसे कलकत्ता की भारत भारती। इस युग की प्रमुख अभिनीत कृतियों में नाट्य रूपान्तरों की भरमार दिखाई देती है। कुछ उल्लेखनीय कृतियां हैं– कफन (1957), गोदान (नामान्तर धूप छांह 1959) तथा गबन (1954) रंगभूमि (नामान्तर, सूरे की आंखें 1960), पंच परमेश्वर निमंत्रण राजा जी का दिल बैठा जाये सवा सेर गेहूं ईदगाह, बड़े भाई साहब टगोर कृत डाकघर चिर कुमार सभा नागर जी का नवाबी मसनद सेठ बांके मल उसने कहा था आकाशदीप कामायनी शतरंज के खिलाड़ी आदि उल्लेखनीय हैं। नृत्य नाट्य रूप में लोहे की दीवार कामायनी आदि के प्रमाण प्राप्त हैं। इन कृतियों में सामाजिक सुधार और राजनीतिक व्यंग्य तो है ही साथ ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता भी द्रष्टव्य है जैसे अजन्ता (इलाहाबाद) का अधूरी आवाज (1959)। अन्य कृतियों में जादू की कुर्सी पंचशील, आखिरी धब्बा, 10 हजार, राहगीर टूटे तारे कोणार्क, कांचन रंग पृथ्वी का स्वर्ग आदि। इन कृतियों में समाजवाद सामाजिक क्रांति और मनोवैज्ञानिक बारीकी दिखायी देती है। 22 पात्रीय 'राहगीर' में नायिका प्रधान ट्रेजडी का प्रयोग किया गया। किशलय मंच (इलाहाबाद) में 60-70 बालकों को एक साथ मंच पर प्रस्तुत किया गया। इलाहाबाद आर्टिस्ट ऐसोसिएशन ने प्रदर्शन के पूर्व नाटक की विज्ञप्ति (प्रारंभिक परिचय) प्रकाशित करने की परम्परा स्थापित की। कहीं-कहीं मास्क (मुखौटा अभिनय) और मुखौटों का अभिनय भी प्रचलित हुआ। नीरा (इलाहाबाद) ने बिना माइक के नाटक खेले। कुछ संस्थाओं ने अपने स्थायी दर्शक बना लिए और इस प्रकार नाट्य प्रदर्शन क्षेत्र में नए से नए प्रयोग होने लगे। इनमें पूर्वाभ्यास को महत्व तो दिया जाता रहा दर्शकों को आकर्षित करने के लिए प्रचार प्रसार की पर्याप्त व्यवस्था की गयी और नाट्य समीक्षाओं के लिए यथोचित व्यवस्था की गयी। उदाहरणार्थ अनामिका की समीक्षाएं धर्मयुग, हिन्दुस्तान दिनमान तथा भारत आदि पत्रों में द्रष्टव्य हैं।

उपर्युक्त कालावधि में हिन्दी रंगमंच का प्रयोग और प्रचलन निःसंदेह बड़ा संतोषप्रद है। इस युग में वैतनिक आधार पर श्रेष्ठ कलाकारों को नियुक्त कर सुव्यवस्थित नाट्य संस्थाओं के अवधान में विभिन्न रुचियों कलाओं और नाट्य प्रयोगों से परिपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। इसी युग में छाया चित्र, एकालाप पूर्णांकी एकांकी भावनाट्य, गीति नाट्य ऑपेरा मिनि नाट्य लोक नाट्य, झांकियां झलकियां, क्षण स्थिर दृश्य, मूक नाट्य, मास मुशायरा आदि नाट्य प्रयोग देखे

जाते हैं। इनमें क्रमशः व्यावहारिकता स्वाभाविकता, यथार्थ मनोवैज्ञानिक सक्षमता, प्रभावोत्पादकता, मनोरंजकता आदि तत्व प्राप्त होते हैं। इस युग में सरकारी अनुदान अथवा अनुदान अथवा राजकीय प्रोत्साहन प्रदान किया गया। उदाहरणार्थ अनामिका को 10000 रुपया अनुदान का संकेत मिलता है। कलाकारों को राष्ट्रीय उपाधियां, जीविका और वृत्ति दिए गए और नाट्य प्रशिक्षण के लिए साधन सम्पन्न संस्थाएं भी संस्थापित की गयी। परिणामतः हिंदी नाट्य प्रदर्शन बहुत जन-प्रचलित हुआ। भारतेन्दु नाट्य रूपक जैसे प्रदर्शन को 3000 से भी अधिक दर्शकों ने देखा था। इस युग के अर्थ व्यवस्था के लिए टिकट परम्परा प्रारंभ की गयी और नाट्य समीक्षाओं की तो बाढ़ आ गया। समीक्षाओं के लिए पत्र पत्रिकाओं में निश्चित और नियमित स्तंभ आने लगे और सैद्धान्तिक व्यावहारिक दोनों पक्षों का विश्लेषण किया जाने लगा। इस युग के रंगमंच के लिए विज्ञापन प्रचार प्रसार अर्थात आमंत्रण, पत्र पास पोस्टर, सिनेमा स्लाइड, साइन बोर्ड आदि का श्री गणेश हुआ।

उपर्युक्त रंगमंचीय संस्थाएं प्रायः व्यावसायिक हो गयी इनका चल प्रदर्शन कुछ कम हो गया और इन्होंने अपने स्थायी मंच जुटाने का सफल असफल प्रयत्न किया। ये रंगकर्मी प्रायः वेतन भोगी व्यावसायिक कलाकार हैं। राजकीय अनुदान और दर्शकों से प्राप्त निधि द्वारा इनके प्रस्तुतीकरण अपेक्षाकृत अधिक सुविधा के साथ होते हैं। इस काल के मंच पर यूरोपीय तत्वों का निर्विघ्न प्रवेश दिखायी देता है। ध्वनि प्रकाश, मंच निर्माण मंच सज्जा, अभिनय रंगलेपन आदि से सम्बंधित नए नए प्रयोग भी यहां प्राप्त होते है। तात्पर्य यह है कि यह युग हिन्दी रंगमंच के सर्वाङ्गीण विकास का युग है। इस काल का हिंदी रंगमंच सर्वथा आधुनिक कहा जा सकता है।

हिन्दी का समसामयिक रंगमंच

स्वाधीनता के बाद साठोत्तरी हिन्दी रंगमंच का अध्ययन विभिन्न तत्वों के आधार पर करणीय है जिससे हिन्दी रंगमंच की वर्तमान स्थिति का पता लग सके। यह सत्य है कि आज का रंगमंचीय प्रदर्शन मंच पर नाटक की पंक्तियों का साभिनय पाठ मात्र नहीं प्रत्युत उसके साथ ही अन्य कई दृश्य मूलक माध्यमों और आयामों का समन्वित रूप हो गया। [1]

इस दशक में नाट्य प्रस्तुतीकरण के निम्नलिखित रूप द्रष्टव्य हैं—

1–नाट्य रचनाओं का रंगमंच।
2–महाकाव्यों के नाट्य रूपान्तरों का प्रदर्शन।
3–परम्परागत नाटकों का मंचन।
4–संस्थाओं द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतर्गत सम्पन्न लघु नाट्य प्रदर्शन।
5–सरकारी–नाट्य महोत्सव और नाट्य प्रतियोगिताएं।
6–कथा रूपों का नाट्यायोजन।
7–गीति नाट्य, आपेरा और बैले।
8–लोक नाट्यों का अभिजात (नागर) प्रदर्शन।
9–ध्वनि रूपक।
10–छायानाटक।
11–चौराहों के नाट्य प्रदर्शन स्ट्रीटप्लेज)
12–नाटकीय आशु प्रयोग (इम्प्रोवाइजेशन)।
13–एब्सर्ड नाट्य—प्रदर्शन।
14–हैपेनिंग।
15–बाल रंगमंच।
16–महिला रंगमंच।
17–फिल्मी—नाट्य।
18–अन्य नाट्यरूप।

1—रंगदर्शन श्री नेमीचन्द्र जैन पृ 49

हिन्दी के समकालीन विविध नाट्य रूप—

पिछले दशक म हि दी रगमच ने अनेक प्रकार के प्रयोग किए हैं। इनम सब प्रथम नाट्य रचनाओं का प्रदशन उल्लेखनीय है। ये वस्तुत परम्परित प्रदशन हैं। इनका प्र तुतीकरण पूव प्रचलित है, इसलिए इस सदभ मे इसके विस्टपपण की आवश्यकता नही है। अ य प्रयोगो मे लोकनाट्य ध्वनि रूपक छाया नाटक महिला रगमच सडको पर नाटक बाल रगमच हैपनिग एब्सड नाटक द्विपात्रीय त्रिपात्रीय एकाकी अभिनय नवालाप भावनाट्य मूकाभिनय, माक मुशायरा कवि दरबार फमी डेस आदि प्रयोग यथा स्थन दशनीय है।

इस कालावधि म नाटय प्रस्तुतीक रण कई अवसरों पर देखे गये हैं। कभी-कभी सस्थाओ द्वारा आयोजित लघुनाट्य प्रदशन आयोजित होते हैं। सरकारी सस्थाए अपने नाट्य समारोह मे यदा-कदा नाट्य प्रतियोगिताए आयोजित करती हैं और साथ ही नाट्य विचार गोष्ठि और नाट्य शिविर भी सम्पन्न होते हैं। हि दी रगमच न इस बीच पश्चिमी थियेटर से अनेक तत्व आत्म सात किये है। विदेशी लेखको म ब्रेख्त और बेकेट के नाटक बडे लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं। अ य भाषाओं के हि दी रूपा तर भी सफलता पूवक खेले गए है जस रूस का बगले वाले।

इन नाट्य प्रयोगो मे सबसे मह वपूण है एब्सड नाटक की परम्परा। एब्सड ड्रामा पश्चिम की देन है। इसम उलजूल और असगत स्थितिया का बेतुके सवादा तथा मसखर पात्रो द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। एब्सड मच पर अनेक प्रकार की ऊट पटाग उपहासात्मक और विडम्बनापूण भाकिया दिखायी जाती हैं। प्रत्येक दृश्य सन्दर्भों म कटा रहता है। नाटक कोई तक सिद्ध उद्देश्य युक्त नही होता। उसकी कहानी भा निता त अटपटी दिखाई देती है। कभी कही सगीतात्मक अभिनय कभी मूक अभिनय और कभी हसने का दृश्य दिखाई देता है। पश्चिम के कुछ नाटको म भयानक तथा रोमाचक दृश्य प्रस्तुत किए जाते हैं। हिन्दी नाटक ने इन्हे अपने मच पर स्वीकार किया है हिन्दी स्वाग की कहानी यहा फिर जागत हो गयी है पिछले वर्षों मे खरिया का घेरा (काकेशियन चाक सकल) गोदो के इन्तजार म (वेटिंग फार गोदो) आदि एब्सड नामक अनेक बार मचित हुए है। इन्ही के प्रभाव से कुछ मौलिक एब्सड नाटक भी लिखे गये हैं जिनम मोहन राकेश का बीज नाटक और आधे अधूरे उल्लेखनीय हैं। इस नाटको का बिखरा हुआ कथा सूत्र बिना नाम के पात्र असबद्ध प्रलाप और विघटन पूण वस्त्र योजना इसी व्यथता बोध का परिचायक है। शिशलय मच द्वारा प्रदर्शित एक टा मामा इ जेक्शन

और चिड़ियों की एक आलग (प्रमत राय) इसी संदर्भ में गणनीय हैं। एब्सड नाट्य आन्दोलन के प्रचार प्रसार की अभी अनेक सम्भावनाएं शेष हैं।

अन्य कृतियों में लोक कथाओं के नाट्य रूप उल्लेखनीय हैं। श्री जगदीश चन्द्र माथुर का पहला राजा इस क्षेत्र का एक सफल प्रयोग है। कुछ कलाकारों ने शास्त्रीय नाटकों को लोक नाट्य रूप में परिवर्तित कर दिया है जैसे मृच्छ कटिक में नगाड़ा का प्रयोग करके श्री हबीब तनवीर ने उस नौटंकिया शैली में ढाल लिया है।

स्फुट प्रयोगों में बिना कहानी का नाटक किशलय द्वारा मंचित 'भूखी प्रतारणाया' उल्लेखनीय है। इस बीच संवाद विहिन मूक अभिनय भी देखे गए हैं। पात्रों के कथोपकथन संकेतों द्वारा या ध्वनि लहरियों के सहारे प्रकट करके मौन नाट्य, भाव नाट्य का नया प्रयोग किया गया है। एबसर्ड मंच पर पात्र विहीन नाटक भी खेले गए हैं वहां केवल कुछ स्थूल वस्तुओं द्वारा कथा का संकेत प्रस्तुत किया गया है। समसामयिक मंच पर स्वगत कथन, पूर्व रंग, मुखौटों का प्रयोग, मुँह-का अभिनय आदि भी प्राप्य हैं। जापानी रंगमंच 'काबूकी और ना' नाटक (नूह) के हिन्दी प्रयोग भी यत्र तत्र किए गए हैं। कलकत्ता में इटली स्पेन की तरह दो मंजिला मंच हिन्दी रंगमंच का विकसित प्रयाग हो है।

स्पष्ट है कि समसामयिक हिन्दी रंगमंच बड़ा प्रयोग शील है। उसने देश-विदेश की नई पुरानी सभी कलाओं का समाहार करके अपना मौलिक रूप गठित किया है और इस दिशा में निरन्तर यत्नशील रहा है।

नाट्य कृतियां—

सम्प्रति नाटकों में बड़ा वैचित्र्य और रूप वैविध्य दिखलायी देता है। डा लक्ष्मी नारायण लाल के मतानुसार[1] आधुनिक नाटकों की कथावस्तु केवल 'मूड' और तर्क का स्वरूप मात्र है। वे लिखते हैं– आधुनिक रंगमंच में यह कलात्मक सीमा है प्रकृतिवादी दृष्टि की उसकी रंगशाला की जिसकी चरम सीमा है रेसाइन का रंगमंच'– जहां न नाटक में कथावस्तु है जहां न नाटक में नायक है न जहां जीवन की मांसलता है न विराट द्वंद्व है। सब कुछ जहां केवल मूड और तर्क पर आधारित है।'

आज रंगमंच में एक विचित्र कल्पनात्मक शक्ति है जो दर्शकों के द्वारा नाटक की अभिनयात्मक वृत्ति में अनुभूत की जा सकती है। वह शक्ति क्षेत्र हैं यथार्थ और कल्पना के कलात्मक समन्वय में। इन दोनों तत्वों की समन्वित शक्ति से जो रंगमंच

---

1 रातरानी (नाटक), डा लक्ष्मीनारायण लाल पृ 67

बनता है उसमे कथा का निर्माण घटनाओ के चयन की अपेक्षा पात्रो के काय, उनके कम तथा उनकी चेतना के विकास सघष और उदय के आधार मे होता है। चेतना का यही धरातल रगमच म काव्य का श्रोत बनता है। इसकी यही आन्तरिक अवित्ति समूचे नाटक मे एक लय एक गति एव रग स्वर लिपि की प्रतिष्ठा करती है। इसमें एक व्यक्ति के ग्रह उसके काय एव गति एव रग स्वर लिपि की प्रतिष्ठा करती है। इसम एक व्यक्ति के ग्रह उसके काय उसके मूड की अपेक्षा नाटक के सभी पात्रो के समूचे काय को आधार बनाया जाता है। स्वतत्रता के बाद रगमच के कई रूप परिलक्षित होते है। नाट्य कृतियो म पौराणिक ऐतिहासिक, जीवन-परयन्त समस्या प्रधान, सिनमा नाटक एकाकी गीति नाटक रेडियो नाटक प्रतीक नाटक आदि। एतिहासिक नाटको म लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत कवि भारतेन्दु', सेठ गोविन्दास कृत भारतेन्दु और रहीम समस्या नाटको मे डा लाल कृत अधा कुआ गीति नाट्यो मे डा धमवीर भारती-कृत 'अधा युग, एकाकी नाटको म कृष्ण चन्द्र कृत मराव के बाहर डा वर्मा कृत औरगजब की आखिरी रात प्रतीकात्मक नाटको म डा लाल कृत 'मादा कैक्टस उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त नृत्य नाट्य (Ballet) छाया नाट्य सगीत रूपक एक पात्रीय नाटक (Mono logue) स्किट, लघु नाटक आदि भी इस युग के विशिष्ट प्रयोग है।[1]

वतमान नाटकों की कथावस्तु अधिकांशत प्रतीकात्मक होती है। इनमे एतिहासिक प्रतीक भी प्राप्य है। 'आषाढ का एक दिन' का कालिदास आज के सृजन शील व्यक्ति का प्रतीक है। मोहन राकेश ने कहा है कि मेरे नाटकों का परिवेश मर आन्तरिक सस्कार पर आधारित है। यह इतिहास का पुनराख्यान नही है। यह अपने समकालीन सन्दभ को अतीत के खण्ड म देखन का प्रयास है।[2]

वतमान नाट्य कथावस्तु मे विरोधी व्यक्तियो और विरोधी परिस्थितियों का ममावश घटनाओ म अकस्मिक प्राकृतिक प्रकोप जसे पुल टूट जाना आधी पानी आना आदि) का समावेश भी होता है।[3] और परिस्थितियो के अनुरूप घटित घटनाओं को नाट्य रूप मे बाध कर नाटकीय भाषण के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे नाट्य रूपो को सडक पर भी खेला जान लगा है लखनऊ म अभी श्री क पी

---

1 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवचन डा गिरीश रस्तोगी पृ 98 से 102

2 लघ शीपक नाट्य रचना का सस्कार भारतीय नाट्य रूप और आधुनिक रगमच साप्ताहिक हिन्दुस्तान (21 1–68) मोहन राकेश

3 हिन्दी नाटको की शिल्प विधि डा गिरिजा सिंह पृ 209

सक्सेना द्वारा लिखित 'हमारी गली हमारा खून' किसी सड़क के नुक्कड़ पर खेला गया।[1] यह नाटक बंगला देश के स्वातंत्र्य संग्राम की घटनाओं से लिखा गया जिसमे बंगला देश म क्रांति और कत्ले आम पाक सनिकों की बबरता मुक्ति, फौज की जीत, रेडियो पाकिस्तान की झूठी खबरें, याह्या खा के शांति एव अमन के झूठे दावों की पोल का पर्दाफाश किया गया है। इस प्रकार वतमान युग की कथावस्तु अधिकतर राजनीतिक उथल पुथल से परिपूर्ण दिखाई देती है। कथानक मे प्राय मानवीकरण की पुरानी परम्परा को ही अपनाया जाता है। उक्त नाटक मे चीन (अजीज दीन खालिद), और अमेरिका (अजीज अहमद) का अभिनय कोष्ठकांकित व्यक्तियों द्वारा किया गया था। इस प्रकार के नाटकों मे गीतों का भी यत्र तत्र प्रयोग होता है जिसका प्रयोजन दशकों मे जोश जगाना ही है। बनारस विश्व विद्यालय के छात्रों ने दिल्ली के कनाटप्लेस म काफी हाउस के पास एक सड़क पर नाटक 'संजय उवाच' खेला जिसमें छात्रों और अध्यापकों पर होने वाले अत्याचारों और उपकुलपति प्राक्टर तथा पुलिस अधिकारी का पर्दाफाश किया गया। इसके आरंभ मे एक छात्र के द्वारा ढोल बजाया गया था जिसमे दशक आ खड़े हुए। बीच-बीच मे संगीत का पुट देने के लिए कनस्तर बजाया जाता था।[2]

14 मई 1970 को लखनऊ म सड़क नाटक 'कम्बोदिया दाह-दृश्य प्रस्तुत किया गया।[3] इस नाटक का कथानक भी कम्बोदिया म हुए मानवता के अपमान की दर्दनाक स्थिति को तीव्र व्यंग्य से प्रस्तुत किया गया तथा इसमें गन्दी राजनीति और स्वाथगत अंतर्राष्ट्रीयता का पर्दाफाश किया गया था। इसे दृश्यों म प्रस्तुत किया गया। प्रथम दृश्य समय साय 6-30 बजे स्थान अमीनाबाद मौन दृश्य था एक रिक्शा तथा निक्सन का पुतला बैनर और दस बीस लखनऊगण तथा दो मशालें। द्वितीय दृश्य समय 7 30 बजे अमरिका लाइब्रेरी के सामने। तीसरा दृश्य हजरतगंज में कुछ लड़के कुछ लेखक नए पुराने (जिनमें भगवती लाल वमा भी थे) मशाल लेकर सूत्रधार ने जोशीले नारे के साथ नाटक आरंभ किया। इसी प्रकार सेतुमंच की ओर से अ अ गु ग ब्रह्रे नाटक जयपुर की सड़कों पर भी खेला जा चुका है।[4] नए कथानकों के कुछ ऐसे प्रयोग भी देखने को मिले हैं जो फटेसी

1 दिनमान (30 मई 1971) पृ 43
2 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (5 जनवरी 1969) पृ. 50
3 दिनमान (31 मई 70) पृ 52
4 दिनमान 27 जून 71, पृ 43

से प्रभावित है।[1] वर्तमान हिन्दी नाटकों ने जहां से भी जो कुछ मिला उसे ग्रहण किया है। बम्बई में यमी मराठी कलाकारों द्वारा सई पराजपे का लिखा एक तमाशा अच्छा खासा मंचित हुआ[2] जिसमें सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों पर व्यंग्य था।

इस युग में हिंदी रंगमंच की ओर कई अहिंदी संस्थाओं और कलाकारों का झुकाव बढ़ता जा रहा है। बम्बई की संस्था थियेटर यूनिट तो दूसरी भाषाओं के नाटक (रूपांतरित कर) हिन्दी मंच पर प्रस्तुत करने में बहुत सक्रिय है। हिन्दी मंच पर रूपांतर एवं अनूदित नाटकों का प्रस्तुतीकरण क्रमशः बढ़ता जा रहा है। व्यंग्य प्रधान नाटकों में विनायक पुरोहित कृत स्टील फ्रेम का जो रूपांतरित आयोजन सत्यदेव दुबे के द्वारा प्रस्तुत किया गया वह महत्वपूर्ण है। इसमें सरकारी अधिकारियों पर भयंकर छींटा कशी की गयी है। परन्तु फिल्मी गानों का समावेश दर्शकों एवं समीक्षकों को अवश्य अरुचिकर लगा है।[3] इस युग के प्रतिष्ठित रंगकर्मी हिन्दी नाटकों में फिल्मी गीतों के प्रयोग के समर्थक हैं। दिल्ली में भी अनुवाद का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। लिटिल थियेटर ग्रुप द्वारा सतोष कुमार घोष के बंगला आलेख अजातक का हिन्दी अनुवाद संस्था अभियान द्वारा विजय तेन्दुलकर विरचित पछी एसे आते हैं का सरोजिनी वर्मा द्वारा अनुवाद संस्था यात्रिक द्वारा सई पराजपे द्वारा किए गए हिन्दी अनुवाद एक तमाशा अच्छा खासा प्रस्तुत हो चुके हैं।[4] प्रथम नाटक में एक संतानहीन दम्पति की कहानी है, दूसरे में सामाजिक कुरितियों पर आधारित एक प्रेम मूलक कथानक है और तीसरा नाटक सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य प्रधान है। इसके साथ साथ कुछ आशु प्रयोग[5] भी हुए हैं जिनमें जमादारिन चपरासी छेरी छेरा और कागज का पुतला आदि हैं। इनमें भी छोटे छोटे कथानक हैं।

स्वगत भाषण का आज भी कई नाटकों में प्रयोग होता है। पगला घोडा में कार्तिक कम्पाउण्डर की भूमिका वाले पात्र से इसका प्रयोग कराया गया है।[6]

---

1 दिनमान 13 जून 71 पृ 42
2 धर्मयुग (16 मई 1971) पृ 45
3 धर्मयुग 16 मई 1971) पृ 47
4 अजातक पछी एसे आते हैं और लोक नाटय धर्मयुग (2 मई 1971), पृ 22
5 वही पृ '43
6 साप्ताहिक हिन्दुस्तान 19 अक्टूबर, 1964 पृ 27

बिम्बवादि और अमूर्त कथावस्तु से पूर्ण नाटक भी प्रदर्शित होते हुए देखे गए हैं। निर्देशिका अमल अल्लाना ने अनर्स्ट टालर का मासेज एण्ड मैन नाटक प्रस्तुत किया जो इसी प्रकार का था।[1] राजनीतिक अव्यवस्था एवं अत्याचारों की कटु आलोचना भी आजकल नाटक का विषय बन गया है। हमीदुल्ला के नाटकों में यही छाया द्रष्टव्य है। इसी प्रकार का द्विपात्रीय नाटयरूप श्री सागर लिखित 'भिखमंगे' रायपुर की संस्था 'हस्ताक्षर' द्वारा बिलासपुर की एक सड़क पर प्रस्तुत किया गया था।[2] प्रकृति-प्रकोप युक्त लघु कथानकों के नाटयरूप भी मंचों पर दिखाए जाने लगे हैं। कामायनी में वर्णित महाप्रलय और खण्ड प्रलय की पुष्टि की सार्थकता में विश्वनाथ शर्मा विरचित एवं निर्देशित जोधपुर में मंचित द्विपात्रीय नाटयरूप "कोयना नगर का भूकम्प" भी इसी श्रेणी में गणनीय है।

विशेषतः आजकल के कथानक मनोवैज्ञानिकता पर भी आधारित हैं वे मनुष्य के बाह्य जीवन से कम और आन्तरिक विचारधाराओं से अधिक सम्बंधित हैं। इस दृष्टि से मोहन राकेश का आधे अधूरे विशेषतः विचारणीय है। यह नाटक मध्यवर्गीय जन-जीवन की यथार्थ स्थिति का दर्पण है इसमें दो पात्र मुख्य हैं-पुरुष महेन्द्र नाथ और स्त्री सावित्री इन दोनों पति-पत्नी के मन चाहे दाम्पत्य जीवन की कहानी पर नाटक केन्द्रित है। पुरुष व्यापार में सब कुछ खोकर स्त्री पर निर्भर है निकम्मे पति और नाकाबिल औलाद (बड़ी लड़की बीना (बिन्नी), छोटी लड़की किन्नी लड़का दिनेश) के कारण पत्नी चिड़चिड़ी प्रकृति की है। इस नाटक का कथ्य कुछ विशिष्टता रखता है। स्त्री की घर की स्थिति से ऊब कर किसी और की तलाश में है। वह सबों को आधे-अधूरे समझती है। वह क्रमशः 4 पुरुषों से सम्बन्ध रखती है (जिन्हें लेखक ने पुरुष 1 पुरुष 2 पुरुष 3 पुरुष 4 की संज्ञा दी है) किन्तु उनमें भी उसे कोई पूरा आदमी नहीं मिलता। पूरे आदमी के साथ जीवन व्यतीत करने के विचार से नाटक की नायिका सावित्री सब से अलग-अलग सम्बंध रखकर रख लेती है किन्तु निष्फल। फिर आखिर उसे उसी जीवन में रहना पड़ता है। उसे यही कहना पड़ता है—बिल्कुल एक से हैं आप लोग। अलग-अलग मुखौटा पर चेहरा? चेहरा सबका एक ही। इसकी प्रतिक्रिया घर के बच्चों पर भी होती है। वे बिगड़ जाते हैं। बड़ी लड़की बीना अपनी मां के मित्र मनोज से विवाह कर लेती है किन्तु उसका भी दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं रहता। छोटी लड़की

---

1 जफर अहमद मासन एण्ड मैन रंगमंच की सीमा रेखा का अतिक्रमण साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30 मार्च 1969 पृ 59

2 धर्मयुग (23 अगस्त 1970), पृ 39

किन्नी 13 वष की उम्र मे ही कसा नोवा की कहानियां पढने और स्त्री पुरुष के यौन सम्बधो मे रूचि लेन लग जाती है और लडका अशाव अभिनयिया कीत स्वोरों और रोमास की जिन्दगी में निमग्न रहता है। मा के साथ इन चारो अकला क प्रवध सम्बध और पिता के अकमण्यता का प्रभाव इन बच्चों पर पडता है। नाटक का प्रारभ एक काले सूट वाले आदमी महेद्रनाथ मे होता है और अत भी महेद्रनाथ के वापस घर लौटने पर ही होता है। यह नाटक बुद्धि जीवियों के लिए एक उलझन है। इसकी ढरो समक्षाए हुई हैं।[1] नाटककार न वस्तुत इस युग क विघटित मध्यवर्गीय शहरी जीवन पर व्यग्य किया है। लेखक न मुग चरित्र पात्रों की मन स्थितियों और विविध भावनाओ को पुस्तकाकार रूप म रख कर यह बतलाने का प्रयास किया है कि हम किधर जा रहे हैं ? इसके नाटय प्रस्तुतीकरण से समस्या और अधिक बन जाती है। लेखक समाधान के लिए प्रतिबद्ध नही हैं। गिरीश क सुमत कृत 'आधा आदमी भी इसी शृखला मे गणनीय है।

आधे अधूरे के पात्रो के नाम सम्बधी विवाद को लकर बहुत कुछ लिखा गया है कुछ समीक्षकों ने लडके का नाम दिनेश माना है और कुछ न अशोक। श्री अक्षोभ्येश्वरी प्रताप एव श्री शो ही ने दिनेश[2] श्री विष्णुकान्त शास्त्री एव श्री नेमिचन्द्र जैन आदि ने अशोक[3] नामों से इस पात्र का उल्लख किया है। सही नाम अशोक ही है। लेखक ने पात्र सम्बधित सूचना क विवरण म का मू वा, स्त्री बडी लडकी, छोटी लडकी और लडका लिखकर छोड दिया है। यद्यपि इन नामो का उद्घाटन सवादो क मध्य हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक म इन पात्रो क नाम यदि नही उभरते तो यह नाटक अपनी इस सत्यता पर खरा उतर सकता था कि इसके पुरुष 1 पुरुष 2 पुरुष 3 पुरुष 4 बडी लडकी, छोटी लडका और लडका हम लोगों म ही स कोई अमुक पात्र है। नामोल्लेख कर देने से इस नाटक का आरोपण हम सब पर नही होता प्रत्युत उन पात्रो तक ही सीमित रह जाता है। अत का मू वा का यह कथन कि इसलिए इस समय मे खडा हूँ वहा मेरी जगह आप भी हो सकत थे और मैं किसी न किसी अश मे आप में से हर एक व्यक्ति हू।

---

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30 माच 1969 11 मई 1969 तथा धमयुग 20 अप्रल 69 18 जनवरी 70

2 धमयुग (20 अप्रेल 1969) पृ 21
— साप्ताहिक हिन्दुस्तान 8 नवम्बर 1970 पृ 46

3 धमयुग (18 जनवरी 1970 पृ 22
— साप्ताहिक हिन्दुस्तान (11 मई 1969) पृ 55

युक्ति संगत जान नहीं पड़ता। यह प्रयोग कुछ आधा अधूरा रह गया है। वस्तु विन्यास व प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कुछ और नवीन नाटकों के कथानक और उनकी नवीनता की परीक्षा करणीय है—

1 श्री ब्रजमोहन शाह कृत त्रिशंकु—

इसका कथानक, राजधानी के वर्तमान रंगकर्म में फैली अराजकता और सर्वविग रोग सम थ्येटर की ओर पूरी प्रभावता के साथ इशारा करता है।[1]

2 ज्ञानदेव अग्निहोत्रि कृत शुतुरमुर्ग —

नाटक के विभिन्न पात्रों के माध्यम से लेखक ने मानव स्वभाव की शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति का परिचय दिया है जो समस्याओं का समाधान करने के बजाय उनसे पलायन करके अपनी रक्षा करना चाहता है। अवसरवादी बनकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है एक झूठा सच्चा बड़ा सा माहौल खड़ा करके उसके आवरण में अनेक बड़ी-छोटी समस्याओं को विस्तृत करने का प्रयत्न करता है, स्वयं अपने आपको भुठलाता है।[2]

3 विजय तेन्दुलकर कृत 'शान्तता कोर्ट चालू आहे' —

इस नाटक में मानव स्वभाव की जटिलताओं और स्थितियों के राग द्वेष से एक आन्तरिक तनाव का चित्रण किया गया है। इसमें सामान्य जन की कथा है जिसमें कभी कहीं आधुनिकता का 'पोज' दीख पड़ता है। इसका हिन्दी नाट्य रूपान्तर खामोश अदालत जारी है और चुप। कोर्ट चालू है" के नामों से प्रस्तुत किया जा चुका है।

4 बादल सरकार कृत सारी रात—

(अनु डा प्रतिमा अग्रवाल)

यह नाटक दिल्ली की नाट्य संस्था 'अभियान' द्वारा अभिनीत हो चुका है। इसमें मुख्य पात्र वृद्ध स्त्री और पुरुष हैं। यह संतान रहित दम्पति की कहानी है। इसमें पात्रों की विचित्र सर्जना है जो इन्डस्ट्री में कार्य करने वाला एक वृद्ध पुरुष को रात भर नींद नहीं आती। वह टहलता है और अपनी सहचरी से हुई बातों की जुगाली करता रहता है। साथ ही मानवी सम्बंधों तथा आकांक्षाओं से सम्बन्धित सिद्धान्तों को गढ़ता रहता है पत्नी को मूक दुख है कि सात वर्षों के लम्बे वैवाहिक जीवन के बाद भी उसका जीवन साथी उसे समझ नहीं सका। वह

---

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान 8 नवम्बर 1970 पृ 46

2 धर्मयुग 20 अप्रैल 1969 डा प्रतिमा अग्रवाल पृ 22

भी रात भर जागती हुई अपने मानसिक भ्रमों का चित्र लिडका में अंकित करती रहती है। सारा नाटक अंतर्द्वन्द्व और पीड़ा से भरा हुआ है। कारणहीन, युक्तिहीन और बुद्धीहीन ढंग से प्रेम करने वाले इन पात्रों का जीवन सामाजिक परिवेश के साथ मेल नहीं खाता पर श्री सुरेन्द्र वर्मा की दृष्टि में सारा यह अंतर्द्वन्द्व और पीड़ा नकली एवं निर्जीव हो जाते हैं।[1]

श्री ब्रज मोहन शाह ने सारी रात के लिए लिखा है— न समझने समझा सकने की बेबसी जब मानव मन में एकाकीपन को जन्म देती है तब यह अपने अभाव को भरने के लिए स्वप्न बिम्बों की शरण लेता है। स्वप्न बिम्बों के आयाम कुन्द किए जाने पर स्मृतियों की अभिव्यक्ति हो जाती है। बादल सरकार के सारी रात का यही मूल बीज है।

आज की नाट्य कृतियां में रंग निर्देश पर्याप्त मात्रा में किए जा रहे हैं। नाटक की भूमिकाओं में नाट्य वस्तु उद्देश्य और प्रदर्शन पद्धति का विस्तृत उल्लेख होता है साथ ही उनके प्रस्तुतीकरण के कुछ चित्र और शिल्प सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। उदाहरणार्थ मोहन राकेश के नाटक अवलोकनीय हैं।

इसी प्रकार बादल सरकार के बाकी इतिहास एवम् इन्द्रजित श्री जगदीश चन्द्र माथुर कृत पहला राजा आदि नाट्य प्रयोग बहुचर्चित रहे हैं। ये कृतियां अपनी वस्तु और शिल्पगत नवीनता के कारण स्तुत्य सिद्ध हुई हैं।

नाट्य पुनरावृत्ति और फिल्मीकरण (फिल्मी नाट्य)

महानगरों में दर्शक संख्या के आधिक्य वश एक नाटक की एक प्रस्तुति ही पर्याप्त नहीं होती अतः एक ही नाटक अनेक बार प्रदर्शित किया जाता है। दिल्ली की नाट्य संस्थाओं (विशेषतः अनामिका) के नाटक एक ही रंगपीठ पर और शहरों में घूम घूम कर मंचन किए जाते हैं। नुक्कड़ नाटकों के भी कई प्रदर्शन होते हैं।[3] मोहन राकेश के नाटक आधे अधूरे का दिल्ली बम्बई और कलकत्ता में कई पुनरावृत्तियां हो चुकी हैं। इस नाटक का फिल्मीकरण भी किया गया है। मधुमालती कृत यह फिल्म 'आधे-अधूरे' पूरी हो गयी है।[4] इसमें दिशान्तर के कलाकारों का

---

1 धर्मयुग (13 दिसम्बर 1970 श्री सुरेन्द्र वर्मा पृ 30

2 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (27 जून 1971) श्री ब्रज मोहन शाह पृ 51

3 दिनमान (30 मई 71) पृ 43

4 धर्मयुग 21 सितम्बर 1969 पृ 42

परा यूनिट है। ग्राम शिवपुरी ने महेन्द्रनाथ, पुरुष 1, पुरुष 2, पुरुष 3, और पुरुष 4 की मयुक्त भूमिकाएं की हैं। फिल्म इन्स्टीट्यूट पूना में इसकी शूटिंग हुआ है। इस प्रकार यह नाटक एक फिल्मी नाटक बन गया है। फिल्मांकन प्रयोग की दृष्टि से ही किया गया है। इसमें नाटक के ढांचे एवं नाटक की आत्मा का हनन नहीं किया गया है। वस्तुत हिन्दी मंच में 'थियट्रीकल मूमेंट' हेतु इसका निमाण किया गया है। इसी प्रकार के फिल्मीकरण प्रयास भापा के एक दिन पगला घाड़ा एवम् इन्द्रजित आदि नाटकों पर भी चल रहे हैं। श्री उदय शंकर जी ने 'शंकर स्कोप' द्वारा नाटक और सिनेमा का अद्भुत सम्मिश्रण करके दोनों कला शिल्पों की अभिवृद्धि की है।

महाकाव्यों के नाट्य रूपान्तर

फिल्मांकन या नाट्य फिल्मों की भाति नाट्यकाव्यों का प्रयोग भी वस्तुतः में उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य कला परिषद् के द्वितीय नाट्य समारोह में श्री नरेन्द्र शर्मा द्वारा कामायनी के कथ्य को नृत्यनाट्य के रूप में प्रदर्शित किया गया। डेढ़ घंटे के समय में इस नृत्य नाट्य के कुछ चुने हुए अंशों को गीत नृत्य, अभिनय और संगीत द्वारा प्रदर्शित किया गया। इसमें स्वय श्री शर्मा ने मनु की भूमिका निभाई थी। इस प्रकार के प्रदर्शन अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं। समीक्षकों के अनुसार रंग विन्यास और सतीश भाटिया का संगीत भावदशाओं के अनुरूप नहीं था।[1] यों प्रयोग की दृष्टि से यह आयोजन प्रशस्य माना गया है।

इसी प्रकार उपन्यासों और कहानियों के नाट्य रूपान्तर प्रचलित हो रहे हैं। जिस गुणात्मकता का प्रदर्शन उद्धृत किया जा सकता है। समसामयिक नाट्य प्रदर्शनों में लड़ाई नामक कहानी का हिन्दी नाट्य रूपान्तर महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। हिन्दी मंच ने अन्य भाषाओं के क्लासिकल नाटकों जैसे शकुन्तला मिट्टी की गाड़ी (मृच्छकटिकम्) को भी स्थान दिया है। सम्प्रति ऐतिहासिक पौराणिक और शास्त्रीय कथावस्तु का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। कामायनी की नृत्य नाटिका इस दृष्टि से एक सफल प्रयास है।

हिन्दी रंगमंच के अन्य प्रयोगों में नव विन्यास के इन नव नाट्य रूपों प्रयोगों का विवरण देना अपेक्षित होगा जो सम्प्रति हिन्दी मंच पर छाए हुए हैं। इनमें हैपनिंग प्रमुख है।

---

1 दिल्ली में नाटक समारोह साप्ताहिक हिन्दुस्तान 27 जून 71 पृ 31

श्री नदकिशोर मित्तल ने इसका अर्थ बताया है- जब कोई कलात्मक अभि-व्यक्ति कला और सामाजिक मान्यताओं से ऊपर उठ जाये जब दर्शक और अभि-नेता का भेद मिट जाये और दर्शक वह होनी का एक ऐसा अनायास आयोजन बन जाय जहा देखने सुनने वाला भी स्वय को अग समझने लग तो वह अभिव्यक्ति हैपनिंग बन जाती है।[1] प्रताप शर्मा के नाटक प्रो हैज-ए वार क्राई, को भी होना ही कहा गया है। यद्यपि इसकी भाषा अग्रेजी है पर इसकी पृष्ठभूमि और घटना-चक्र देशी है जसे (1) श्मशान का दृश्य और बीस वर्ष बाद उस पर नाचती नाट कीय छायाए। (2) पिता पुत्र के आपसी तनाव। इस नाटक मे द्वन्द्व कुठा से युक्त तिहरी त्रासदी है। यह नाटक नाटक की रूढ़ सीमाओ का लाघ कर 'होना' हो गया है। श्री प्रताप शर्मा न इसके प्रदर्शन के लिए 100 सीटों वाना थियेटर अपनाया था जिसम कुल 20–30 दर्शक थे। इसमे कुल 3 पात्र (पिता पुत्र मा) थ जो स्टेज से बाहर तक आ जाते थ, जिसस उनके और दर्शको के बीच आतरिक सम्बध कायम हो सके। हैपेनिंग पश्चिम की देन है। वहा चौराहों पर प्रस्तुत होने वाले नाटकों के साथ साथ हैपनिंग बहुप्रचलित हैं[2]

इसके अतिरिक्त जापानी 'काबुकी' और नोह नाटक की भी यत्र तत्र चर्चा होती है पर व हिन्दी रगमच पर घटित नही किए जा सकते अस्तु उनका परिचय यहा भी अपक्षित नहा है।

इस युग की एक और बडी देन है बाल रगमच। आज इसके विभिन्न रूप देखे जा सकते है। पुर्तगाली लेखक मारिआ क्लारा माशाडो कृत नीला घाडा (अनत-न्त द्वारा अनूदित) नाटक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा खेला गया। इस नाटक म बाल सुलभ अबोधना है, फटसी है और मासूम बच्च सपने है जिन्ह बडो का निमम ससार तोड नही पाता। बालक वीसेंट अपने मामूली टट्टू को सुन्दर नीना घोडा कहता है और उस बहुत प्यार करता है। पिता उसे मरियल समझ कर बेच डालता है। यह वियोग वीसेट का असह्य है अत उसकी खोज म निकलता है। साथ म एक बच्ची भी हो लेती है। व घोडा पा लेते है। इस प्रकार कथानक तो साधारण और छोटा है किन्तु इसम बाल जगत की कई मन पसद चीजें समाविष्ट है।

---

1 होनी होनी और हानी और हानी धमयुग (22 फरवरी 1970 पृ 21

2 सगीत नाटक अकादमी का नाट्य महोत्सव एक दृष्टि दैनिक तरुण राजस्थान जोधपुर (8 मार्च 1970), डा सूय प्रसाद दीक्षित पृ 2

इसी प्रकार माडन स्कूल नई दिल्ली के द्वारा भी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानी 'लड़ाई' का विनिता चतुर्वेदी द्वारा नाट्य रूपान्तर श्री ओम शिवपुरी के निर्देशन मे प्रस्तुत हुआ। यह लड़ाई अनेकानेक प्रसंगों म विभाजित थी। इसमे विशेषता यह थी कि प्रतीकात्मक जाल की पृष्ठभूमि वाला विस्तृत मंच तमाम हिस्सा म बाटा गया था। देश प्रेम भरे गीतों द्वारा स्थिति पर प्रकाश डाला गया था। इसमें 51 कलाकारों ने भाग लिया। ध्वनि और प्रकाश व्यवस्था का उपयोग भी किया गया था। आकाशवाणी लखनऊ के श्री जयदेव शर्मा 'कमल' न अप्रल, 1970 म बाल नाटक 'लालटेन वाला' प्रस्तुत किया जिसमें 45 बाल कलाकार थ। घटना चक्र इतना तेजी से चलता है कि कोई बालक मंच पर बेकार प्रतीत नहीं होता। यही नाटक जब सीतापुर इटर कालेज की ओर से रायबरेली में खेला तब इसमें सचमुच की रेलगाड़ी जो 36 फुट लम्बी तथा 5 फुट ऊची थी प्रात हुए बतलाई गयी थी।

निदेशक और निदेशन—

प्रशिक्षित नाट्याचार्य (निदेशक) इस युग की विशेष देन है जिसका श्रेय राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली को है। इन नव शिक्षित निदेशको से हिन्दी रंगमंच को नाट्य प्रस्तुतीकरणों की वही भी वृद्धी हुई है। इन्होने प्रस्तुतीकरण के नए आयाम नई दिशा, नए प्रतिमान नए रंग बोध और सन्दर्भ प्रस्तुत किए है। इससे हिन्दी रंग आन्दोलन विकासो मुख हुआ है। आज नाट्य कृति को मचित करने का ढंग निर्देशकों द्वारा काल बोर्ड पर ग्राफ बनाकर सिखाया जाता है। इस प्रकार की निर्देशन प्रक्रिया म श्री इ अल्काजी का नाम विशेषत गणनीय है। निदेशन के आज दो रूप दृष्टव्य हैं—(1) थियोरीटिकल डायरेक्शन तथा (2) प्रेक्टीकल डायरेक्शन। नएपन का यह बोध पाश्चात्य रंगरूपों से प्रभावित है। नवीन शिक्षा ख्याति प्राप्त अथवा पजीकृत निदेशक बनाने में तो अभी पूर्ण सफल नही हुई है पर हां कुछ नए-पुराने अनुभवी निर्देशको मे जसे डा सत्यव्रत सिन्हा सवदानद, रमेश मेहता, जयदेव शर्मा 'कमल' विनोद रस्तोगी, ओम शिवपुरी श्यामानन्द जालान, डा प्रतिभा अग्रवाल कृष्ण कुमार मोहन महर्षि, डा भानु मेहता हबीब तनवीर, सत्यदव दुबे, गिरीश क सुमन, रणबीरसिंह, मणिमधुकर, एस वासुदेव, सरताज नारायण माथुर, मदन मोहन माथुर, भानुभारती और ए जी खान आदि गणनीय है। शिक्षित निर्देशको से कहीं बढ़कर आज अनुभवी निर्देशक रंगनिदेशन मे सफल सिद्ध हो रहे हैं।

पात्र अभिनेता एवं अभिनय—

वर्तमान हिंदी रंगमंच ने पात्र, अभिनेता और अभिनय के क्षेत्र में कई प्रयोग किए हैं। प्राचीन मंच या नाट्य कृतियों में पात्रों के नाम दिए जाते थे पर अब दिन प्रतिदिन इसमें नयापन दिखाई दे रहा है। मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' में पुरुष एक पुरुष दो पुरुष तीन और पुरुष चार विनोद रस्तोगी के अप्रकाशित नाटक दैनिक जन तन्त्र में कलाकारों के नाम हैं मैं, तुम, ये, वे हम सबके सब।[1] संभवतः यह इसलिए किया जा रहा है कि इस युग में किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व स्वयं में पूर्ण नहीं है। ऐसे व्यक्तित्व भी हजारों के हो सकते हैं। अतः जो भी चरित्र नाटककार के द्वारा उभारा जाता है वह आप हम, तुम में से ही है। अब यह आवश्यकता नहीं समझी जाती कि नाटक का नायक धीरोदात्त या धीरललित ही हो। वह हँसमुख, मस्त मगर जिम्मेदार नौजवान भी हो सकता है।[2] आजकल कम पात्रों का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए त्रिपात्रीय, द्विपात्रीय और एक पात्रीय (एकाकी) नाट्य रूप देखे गये हैं। नाटक का सम्पूर्ण कथानक संवादों पर ही निर्भर होता है। द्विपात्रीय नाट्य रूपों में रायपुर की संस्था 'हस्ताक्षर' का उदाहरण दिया जा सकता है जिसके द्वारा द्विपात्रीय नाटक 'भिखमंगे' का सफल प्रदर्शन 19 जुलाई 1970 को बिलासपुर में किया गया था। इसी प्रकार 'पंछी ऐसे आते हैं' का नायक सूत्रधार के रूप में कार्य व्यापार को आगे बढ़ाता है और स्थितियों पर बराबर टिप्पणी करता चलता है।[3]

बादल सरकार के नाटक 'सारी रात' में वृद्ध पुरुष और स्त्री नाम दिए गये हैं। ये पात्र उनके प्रतीक हैं जिनके साथ इस नाटक में कथित घटनाएं घटित होती हैं। इस नाटक का (डा. प्रतिभा अग्रवाल के द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद) दिल्ली की 'अभियान' संस्था द्वारा खेला जा चुका है।[4] इन पात्रों में स्वगत भाषण भी विद्यमान है।

आज अधूरे में ही व्यक्ति चारों पुरुषों की भूमिका करता है यह प्रयोग कास्टिंग से तो उचित है निर्देशक के लिए पात्र चयन में भी सुविधा प्रदान करता है किन्तु दर्शकों को समझने के लिए यह कठिन हो जाता है। दर्शक यह नहीं समझ पाते

---

1 दैनिक जनतन्त्र (इलाहाबाद 27 सितम्बर 1969) पृ 2

2 अजातक 'पंछी ऐसे आते हैं' और लोक नाट्य धर्मयुग (2 मई 1971), पृ 22

3 धर्मयुग 2 मई 1971, पृ 22

4 रंगमंच दिल्ली की चिट्ठी धर्मयुग (13 दिसम्बर 1970) पृ 30

कि जो प्रारंभ मे सावित्री के पति के रूप म सामने आता है, बाद में वही मनोज, सेठ सिंघानिया जुनेजा और खन्ना जसे पात्रों का रूप धारण कर लेता है। इस प्रयोग को दर्शकों की सुविधा के लिए नाटकीय व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। यह असुविधापूर्ण अवश्य है।

बादल सरकार के नाटक 'पगला घोड़ा मे भी अभिनेत्री सुधा शिवपुरी ने मालती, मिल्ली, और लक्ष्मी की भूमिकाएं की हैं।[1] दिल्ली मे निर्देशिका अमल अल्लाजी द्वारा रिंगरोड पर प्रदर्शित अनस्ट टालर का मासज एण्ड मैन नाटक प्रस्तुत किया जिसमें नामहीन पात्रो का प्रयोग था। उसमे केवल युद्ध दृश्य ही बतलाया गया था। यह बिम्बवादी नाटक प्राय अमूर्त कथावस्तु के रूप मे पेश किया गया था।[2]

वाचिक अभिनय (सम्भाषण) दिनों दिन पठन पाठन के पास सिमटता चला आ रहा है। पात्र हाथों म अपने अपने सवादों की लिखी प्रतियां लेकर भाव-भंगिमा के साथ खुल मच पर पढ़ते हैं। यह बिल्कुल ही नया प्रयोग है। इसके साथ सगीत, प्रकाशयोजना आदि के सभी उपकरण प्रयुक्त किए जाते हैं। पटना में ऐसे प्रयोग किए जा रहे हैं। मच बिना साज सज्जा के केवल गगा के चबूतरे को बनाया गया और ध्वनि प्रसारण यत्रों के सामने इसी प्रकार पठन पाठन का अभिनव अभिनय किया गया। पटना की सस्था 'अरग द्वारा' उत्तर महाभिनिष्क्रमण नाटक की प्रस्तुति भी इसी प्रकार की थी।[3] सवाद-शून्य अभिनय प्रयोग भी चले हैं। जिनमे मूकाभिनय प्रयोग होता है और वाचिक अभिनय को समाप्त कर दिया जाता है। 'बस स्टोप' इसी प्रकार का सफल प्रयोग है जो गीत एव नाटक प्रभाग (जोधपुर) के द्वारा प्रदर्शित हुआ है। इस प्रकार सवाद योजना जो माइक, टेप-रेकार्डर रेडियो के माध्यम से होती हुई आज लुप्त प्राय होती जा रही है। अस्तु पार्श्ववाचक अथवा प्रोम्पटर की आवश्यकता को भी समाप्त किया जा रहा है।

समकालीन हिन्दी मच ने पात्रों के कई प्रयोग किए हैं। एक ओर मच पर एक पात्रीय द्विपात्रीय त्रिपात्रीय आयोजन हुए हैं दूसरी ओर '20 बरस का दुल्हा, दुल्हन 60 की' मे 35 पात्र उतारे गए हैं। खरिया का घेरा में 85 पात्रों की

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान 19 अक्टूबर, 1969 पृ 27
2 मासज एण्ड मन रंगमच की सीमा रेखा का अतिक्रमण साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30 3 69 जफर अहमद पृ 59
3 गुरुचिकी तलाश दिनमान 31 जून 1971 पृ 42

भीड दिखाई देती है। आज भी प्राय अभिनेताओं को पाट याद करने होते हैं पर कुछ संस्थाए (जैसे कलकत्ता की भारत भारती) मात्र प्रोम्प्टिंग के सहारे प्रदर्शन करती है। कुछ संस्थाओ (जैसे अनामिका) ने कलाकारो को वाचिक अभिनय का प्रशिक्षण आरंभ कर दिया है। राष्ट्रीय नाटय विद्यालय अभिनय प्रशिक्षण केन्द्र है जहा पर सभी प्रकार के आंगिक वाचिक और आहार्य (वस्त्रभूषा सम्बधी) अभिनयो की शिक्षा दी जाती है। आज के अनेक रंगकर्मी सफल सिद्ध कहे जा सकते हैं। सरकार भी रमेश मेहता जैसे कलाकार को राष्ट्रपति पुरस्कार देकर प्रोत्साहित कर रही है। पूर्वाभ्यास कही कही समाप्त हो गया है और कुछ सस्थाओ मे विधिवत चल भी रहा है वस्तुत अभिनय कला की दृष्टि से वतमान रंगमच विकासो मुख कहा जा सकता है इस सन्दभ मे श्री सज्जन जैसे कलाकार की चर्चा की ही जानी चाहिए जिसने रसों और भावो की अनेक भिन्न प्रवृत्तियो वाली भूमिकाओ का सफल निर्वाह करके नए कीतिमान स्थापित किए है।

मच व्यवस्था और प्रस्तुतीकरण

प्राचीन युग मे नाटक, दर्शक अभिनेता तथा इन से सम्बधित सभी पक्ष चहार दीवारी के भीतर ही सम्पन्न होते थे। पहले नाटकों का प्रस्तुतीकरण गुफाओ और मदिरो मे होता था फिर नाटयाभिनय उनके बधन से मुक्त होकर बाहर आया फिर भी उसने अपने मच (तीन भाग से बद) का अनुबधन नही छोडा था। इस युग में उसने सब कुछ त्याग दिया है तीनो प्रकार के अनुबधित मच से मुक्ति पाकर वह मुक्ताकाशी मच बन गया है। इसने स्वय को तो स्वतत्र किया ही है साथ मे दर्शको को भी अपने स्वरूप मे ढाल लिया है। वे भी अब छत आच्छादित स्थल विहीन स्थान पर बठना पसन्द करने लगे हैं। दिल्ली मे इ अल्काजी का मुक्ताकाशी मच इसी का परिणाम है।

मुक्ताकाशी मच के नमूने भारत के अन्य स्थानो मे भी मिल सकते हैं। राजस्थान मे इसका रूप विद्यमान है। यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के मच का प्रचलन कब कहा से हुआ। हा लोगों ने इसे नया प्रयोग मानकर अवश्य पसन्द किया है।

इस प्रकार का प्रयोग यथार्थ प्रदर्शन के साथ साथ यह भी बतलाना चाहता है कि नाटय प्रदर्शन केवल रूप का आरोपण है और वह रूप है समाज का दिन प्रतिदिन बदलता स्वरूप। अब नाटय प्रस्तोता कुछ भी छुपा कर रखना नही चाहते। वे दर्शको को बुद्धिजीवी मानते हुए नाटक के सभी पक्षो का उद्घाटन कर

देते हैं। इस प्रयोग ने दर्शकों पर भारी बौद्धिक दबाव डाला है। हिन्दी रगमच अब दर्शकों के पर्याप्त निकट आ गया है किन्तु अब भी एकाकार स्थिति सम्भव नहीं हो सकी है।

सामिप्य की स्थिति के उद्देश्य से हिन्दी रगकर्मियों ने नुक्कड़ नाटक, चौराहा नाटक, सड़क पर नाटक आदि आरम्भ कर दिए हैं। इसमें कहीं-कहीं केवल तख्तों पर ही अभिनय प्रस्तुत किया जाता है जिसमें न पखवाइयों की आवश्यकता होती है और न जवनिकाओं की। ध्वनि प्रसारण मचों का प्रयोग तो करना ही पड़ता है किन्तु रूप सज्जा की इसमें आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार के नाटय प्रस्तुतीकरण इसे भाषण के नाटकीय रूप के समीप ला छोड़ते हैं। लखनऊ में श्री के० पी० सक्सेना द्वारा प्रस्तुत 'हमारी गली हमारा खून' बगला देश की स्वतन्त्रता की माग पर आधारित इसी प्रकार का नाटक है।[1]

नई मच व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य हैं —

(1) ध्वनि प्रसारण। (2) प्रदर्शन की तैयारी। (3) चारों तरफ (दर्शकों के मध्य) अपने व्यक्तियों (रक्षकों) को नियुक्त करने का प्रबंध आदि। सड़क पर नाटक[2] में सड़क का ही मच होता है। उसमें तख्तों की आवश्यकता नहीं होती। अभिनेता कुछ लिखित बिल्ले अपने कपड़ों पर लगा लेते हैं। यह अभिनय बड़ा आकस्मिक और कुतूहलपूर्ण होता है।

अन्य मचों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे चक्रिल (रिवाल्विंग स्टेज) मच। (2) चौखटाकार मच (3) वैगन स्टेज (4) लिफ्ट स्टेज (5) ट्रेडमिल स्टेज (6) बाक्स स्टेज (7) प्रतीक मच (8) नाट्य धर्मी मच और (9) आकाश रेखा सयुक्त पीठ मच।

चौखटाकार मच तो वर्षों से प्रचलित है। चक्रिल मच भी प्रसादोत्तर युग में प्रयुक्त हो चुका है इसमें सारे दृश्यबध विद्युत चालित होकर घूमते हैं। वैगन और लिफ्ट स्टेज मचों द्वारा स्थानान्तरित कर दिए जाते हैं। ट्रेड मिल स्टेज बिजली द्वारा परिचालित पट्टियों पर निर्भर होते हैं। बाक्स स्टेज तीन ओर से बद रखे जाते हैं। द्विपरिणयात्मक और त्रिपरिणयात्मक स्टेज क्रमश दो और तीन भागों से खुले दिखाई देते हैं। आकाश रेखा सयुक्त पीठ मच कई खण्डों के होते हैं जो मशीनों द्वारा ऊपर नीचे कर दिए जाते हैं। ये सारे मच बिना परदे, पख-

---

1 दिनमान (30 मई 1971) पृ 43
2 साप्ताहिक हिन्दुस्तान (5 जनवरी 1969) पृ 50

वाई के होते है। इन दिनों हिन्दी नाटय क्षेत्र म ये बहुत प्रचलित और उपयोगी सिद्ध हो रह हैं। स्पष्ट है कि मच निर्माण की दिशा से हिन्दी रगमच ने सफल प्रयोग किए है। कुछ सस्थाओ न मच सज्जा का तिरस्कार कर दिया है इलाहाबाद की 'कला दपण' सस्था ने 'बफ की मीनार' नाटक का प्रात 9 बजे प्रदशन करक समय का बधन तोड दिया। इमा प्रकार अनामिका न ध्वनि यत्रों को अस्वीकार करक एक नया प्रयोग प्रस्तुत किया। कहा-कही काठरानुमा मच भी प्रयुक्त हुए है। ये सारे प्रयोग हिन्दी रगमच की प्रौढता क परिचायक है। नए मच प्रयोग की दृष्टि स एक अन्य क्षेत्र मच भी उल्लेखनीय है। राजधानी म निर्देशिका अमल अल्काजी द्वारा अनस्ट टालर (1893–1939) क नाटक मासज एण्ड मन (1919) का रिंग राड पर प्रस्तुत किया गया। उन्होने पूरे हाट मिक्स प्लाट' को ही स्टेज का रूप मान लिया और सामने खुले स्थान पर दशको के बठने की व्यवस्था कर दी। नाटक की कथा वस्तु पुरानी थी राजनतिक परम्पराओ के प्रति विद्रोह इसका उद्देश्य था। यह बिम्बवादी नाटक अमूत कथावस्तु के रूप मे खेला गया। *इसम युद्ध का दृश्य भी था। सभी नामहीन पात्र थे।* [1] इसे *यथाथ मच'* का एक रूप कहा गया है।

मच सज्जा

आज का हिन्दी रगमच चटकीला बनावटी रग सज्जा के विरुद्ध है। आज मच पर दो प्रकार की सज्जा का प्रचलन है–(1) नाटयधर्मी सज्जा (2) प्रतीक धर्मी सज्जा। श्री नेमिचन्द्र जन के मतानुसार इस युग मे यथाथवादी रग सज्जा पर बल दिया जान लगा है। हर नाटक म वही डाइग रूम या अन्य प्रकार के कमरे वही फर्नीचर वही रग हुए फलक (फ्लट) उनमें कट हुए दरवाजे, 'खडकिया इत्यादि। अब नाटक मे चिपटवा परदे का स्थान फलको ने ल लिया है। यह है नाटय धर्मी मच सज्जा। प्रतीकधर्मी मच सज्जा म केवल खिड़की बताकर पूर मकान का आभास कराया जाता है अथवा एक पड बताकर उस स्थान विशेष का बोध कराया जाता है। आज कल क स्टाट स्टज म लेम्प पोस्ट का मच पर प्रदशन मच क प्रतीकधर्मी सज्जा की ओर ही इगित करता है। यहा तक कि रेन वाल वातावरण का बताने क लिए भी प्रतीकधर्मी सज्जा का प्रयोग किया

---

1 मासज एण्ड मन रगमच की सीमा रखा का अतिक्रमण साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30 माच 69 जफर अहमद पृ 59

2 रग दशन श्री नमिचद्र जन पृ 48

जाता है। पहले रात का समय बताने के लिए प्रकाश के माध्यम से रात बताई जाती थी। किन्तु अब घड़ी में 12 बजाकर मंच पर सूचना दिया जाता है। एब्सर्ड ड्रामा में देशकाल वातावरण को समाप्त ही कर दिया गया है।

किन्तु नुक्कड़ नाटक और सड़क नाटकों में—अथवा पथ-मंच सज्जा की आवश्यकता नहीं होती। आज प्राय पात्रानुकूल वेषभूषा पहनाई जाती है भड़कीली नहीं। आधे अधूरे इसका उदाहरण है।

नाट्यारंभ नाट्यांत सम्बन्धी प्रयोग

आज नाटक को प्रारंभ करने के कई तरीके काम में लाए जाते हैं। कुछ रंगकर्मी प्रकाश को धीमा करके सीधा परदा खोल देते हैं और नाटक आरंभ हो जाता है, यह साधारण तरीका है। कुछ रंगकर्मी परदा खुलने से पहले संस्कृत के श्लोकों द्वारा मंगलाचरण करते हैं कुछ प्रस्तोता दर्शकों को बिठाने के लिए पहली दूसरी और तीसरी घंटी बजाते हैं। यह प्रयोग बम्बई[1] की 'थियेटर यूनिट' के श्री सत्यदेव दुबे करते हैं। कलकत्ता की संस्थान अनामिका, पदातिक के निर्देशक श्यामानंद जालान और कृष्ण कुमार भी यही प्रयोग करते हैं। जब दर्शक आकर बैठ जाते हैं तो एक आवाज आती है 'नमस्कार—'। फिर जो संस्था आयोजन प्रस्तुत कर रही है उसका नाम उच्चरित करते हुए बीच बीच में संगीत की लहरियां छेड़कर लेखक, निर्देशक और खेले जाने वाले नाटक का नाम पाठप्रवक्ता द्वारा नेपथ्य से बताया जाता है। कुछ ऐसे भी नाटक हैं जिनका प्रारंभ नाटकीय संवादों से ही होता है जिसका सम्बन्ध रंगमंच के काल्पनिक और दर्शक के वास्तविक संसार से है।[2] लिटिल थियेटर ग्रुप के द्वारा 'अजातक' नाटक की प्रस्तुति में यह प्रयोग किया गया था।

कलकत्ता में अनामिका द्वारा 14 6 70 को प्रस्तुत 'आधे अधूरे' नाटक के प्रारंभ होने से पूर्व आलोक का प्रकाश तीनों ओर बिल्कुल समाप्त कर दिया गया फिर मंच पर पर्दे के आगे एक काला सूट वाला आदमी दिया सलाई की तीली सुलगाकर सिगरेट जलाता हुआ आता है। फिर उसकी हुई ताली के साथ धीरे धीरे हल्का सा प्रकाश उभरता है। यह काले सूट वाला आदमी इस नाटक का सूत्रधार कहा जा सकता है।

नाटक प्रारंभ होने से पूर्व एक और प्रयोग प्राप्त है जिसे अंग्रेजी में 'कर्टेन-काल' कहा जाता है। हिन्दी में इसका नामकरण नहीं हुआ कर्टेन काल का शाब्दिक

1 दिनमान (13 सितम्बर, 1970) पृ 43
2 प्रकाशक, पढ़ो ऐसे आते हैं और लोकनाटक धर्मयुग (2 मई 1971) पृ 22

अथ 'परदे के पास आगमन' अथवा मंचागमन। इसमें अभिनेता परदे के पास आकर दर्शक समाज को नमन करते हैं और इसके बाद उनका कार्य आरंभ होता है। कई नाट्य संस्थाओं द्वारा नाटक की समाप्ति पर सारे कलाकार मंच पर आते हैं और 'जन गण मन' गाते हैं। इसमें दर्शक भी खड़े होकर साथ देते हैं। यह आधुनिक 'भरत वाक्य' का नवीनतम रूप कहा जा सकता है। नाट्यारंभ से पूर्व मंच पर आने के आजकल कई तरीके प्रचलित हैं। प्रथम नाटक के कार्य व्यापार को आरंभ करने से पहले एक एक पात्र परदे के पास अथवा थोड़े से खुले परदे (ताकि उसका शरीर दिखाई न दे सके) के अन्दर दिखाई देता है। जो भी पात्र आता है उसके मुख पर प्रकाशवृत्त पड़ता है। उस समय वह अपनी भूमिका का बहुत महत्वपूर्ण संवाद बोलता है फिर संगीतपूर्ण ध्वनियों के साथ वह अंधकार में विलीन हो जाता है। पुनः प्रकाशवृत्त के उभरने के साथ ही दूसरा कलाकार दिखाई देता है। इसी प्रकार सभी मुख्य पात्रों की झलक मिल जाती है। इसके बाद मुख्य नाटक आरम्भ होता है। जोधपुर में गिरीश के सुमन लिखित एवं निर्देशित नाटक 'चार उंगलियां एक अंगूठा' तथा रमेश मेहता विरचित एवं विश्वनाथ शर्मा (विष्णु) द्वारा निर्देशित 'रोटी और बेटी' में यह प्रयोग किया गया था। किसी नाटक की झांकी अथवा झलक दिखाया जाना भी वंदन काल कहलाता है जिसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—

प्रेमी नहीं मैंने फैसला कर लिया है मैं यहीं हूं और यहीं रहूंगा।

(कहकर सामने सोफे पर बैठ जाता है प्रेमिका उसकी ओर देखती हुई स्निग्ध ढंग से मुस्कराती है। उन दोनों पर आलोक वृत्त धीरे धीरे बुझने लगता है—पर्दा)।

तालियों की गड़गड़ाहट—जोर से लगातार—मंच पर तीव्र प्रकाश के साथ पर्दा फिर खुलता है कलाकार हल्के से झुक कर दर्शक समूह की प्रशंसा के प्रति नमन करते हैं।[1]

समीक्षक श्री सुरेन्द्र वर्मा कर्टेन काल का सही स्वरूप वहां मानते हैं जहां प्रदर्शन के बाद मंच पर सभी कलाकार एक दूसरे का हाथ थामे सामने आते हों।[2] अनामिका (कलकत्ता) के एवं इन्द्रजित नाट्य प्रदर्शन के बाद इसी प्रकार का प्रयोग हुआ था। कहीं कहीं नाटक की भूमिका उद्घोषक के द्वारा पढ़ी जाती है और कहीं

1 रंगमंच दिल्ली की दिशा धर्मयुग (18 जुलाई 1971), सुरेन्द्र वर्मा पृ 22
2 वही पृ 38

कहीं कहीं मार्गदर्शी पत्र छपे परचे दर्शकों में वितरित किए जाते हैं फिर नाटक प्रारम्भ किया जाता है।

प्रकाश के नए प्रयोग—

अभिनय को गति प्रदान करने में पूर्व स्मृति संयोजन (फ्लेश बैक सिस्टम) एक अत्यन्त उपयोगी प्रयोग है। अभिनेता के मस्तिष्क में उठे विचारों को इसी माध्यम से आकार दिया जाता है। घटनाएं पात्र एवं परिवेश सभी एक-एक करके आंखों के सामने चित्रित हो जाते हैं। इसमें मंच के एक ओर सफेद पर्दा टांग दिया जाता है जिसके पीछे कलाकार अभिनय करता रहता है। उसके पीछे से प्रकाश डाला जाता है ताकि उस अभिनेता की परछाई सफेद परदे पर पड़े। इस प्रकार बीती घटनाओं की स्मृति प्रस्तुत की जाती है। दिल्ली की नाट्य संस्था 'अभियान' ने बादल सरकार के नाटक 'पगला घोड़ा' में इसका प्रयोग किया है[1]

नाट्य प्रस्तुतीकरणों में विस्फोटक दृश्यवस्था को बताने के लिए स्लाइडों का भी प्रयोग होता है जैसे दिशान्तर द्वारा प्रस्तुत हिरोशिमा में बम विस्फोट के लिए इसका प्रयोग हुआ[2]

आलोक सम्पात के सहारे कथानक की पूर्व स्मृति हेतु फ्लेश-बैक तकनीक का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसमें पात्र अपने साथ घटित घटनाओं को याद करता है किन्तु इसमें अधिकतर पात्र और नाटक के मध्य संतुलन खो जाने का भय बना रहता है।

प्रकाश के माध्यम से परदा का प्रयोग भी उठ रहा है क्योंकि प्रकाश स्वयं अब परदों की जगह प्रयुक्त होने लगा है अर्थात् रंगपीठ के आलोक को बिल्कुल मंद कर दिया जाता है जिससे दर्शकों की दृष्टि से मंच पर होने वाली मंच सज्जा अथवा दृश्यान्तर गतिविधियां ओझल हो जाती हैं। पहले अंक अथवा दृश्य के समाप्त होने पर बार बार परदा किया जाता था अब उसकी आवश्यकता नहीं। प्रकाश नियोजन ने परदे का प्रचलन समाप्त कर दिया है। किन्तु यह प्रयोग केवल वहीं संभव हुआ जहां प्रकाश के उपकरण पूर्णतः उपलब्ध हैं।

ध्वनियों के नए प्रयोग

ध्वनि व्यवस्था रंगमंच का एक महत्वपूर्ण पक्ष है हिन्दी रंगमंच में इस पर्याप्त प्रयत्न किया जा रहा है। सनसनीपूर्ण वातावरण चीखें भयानक आवाजें

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान 19 अक्टूबर, 1969 पृ 20

2 तीन टन का स्वाग और हिरोशिमा धर्मयुग (12-7-1970) सुरेन्द्र वर्मा पृ 20

तूफानों बिजली की कड़क, आदि के लिए टेप रिकार्ड से प्रयोग होने लगा है। कई नाटकों में फ्लैश बैक (पूर्व स्मृति संयोजना) हेतु सफेद पर्दे के ऊपर प्रकाश के माध्यम से परछाई के साथ साथ टेप रिकार्ड चलता है और वातावरण की सृष्टि करने में सहायक सिद्ध होता है। ध्वनि प्रभावों से वातावरण एवं मनःस्थिति को बनाने उभारने में मदद ली जाती है। यहाँतक कि भय मातम कुतूहल और रोमांस आदि भाव ध्वनि के माध्यम से प्रभावोत्पादक बनाए जाते हैं। 'दिशान्तर' द्वारा प्रस्तुत नाटक 'हिरोशिमा' में इसी प्रक्रिया को प्रयुक्त किया गया है।[1] वहाँ स्पीकर्स के आधार पर एक बिल्कुल नया तरीका अपनाया गया है। इससे मीलों तक बैठे दर्शक वर्ग को संवाद सुनाई देते हैं। भारत में प्रथम बार फ्रेंच शब्द 'सों एट ल्यूमिए' (आवाज और रोशनी) से फ्रांस में उद्भूत प्रयोग के आधार पर ध्वनि को प्रकाश के साथ मिलाकर एक नया प्रयोग श्री कर्नल हेमचन्द्र गुप्त के द्वारा किया गया है। इसमें अभिनेताओं को बोलने की आवश्यकता नहीं होती वे केवल भावाभिनय करते रहते हैं। यह प्रकाश ध्वनि और अभिनय के योग से निर्मित प्रयोग है अस्तु महत्वपूर्ण है। इसका प्रथम प्रयोग 1919 के जलियां वाला बाग की स्थिति दिखाने हेतु 16 अप्रेल 69 को लगातार 2 दिनों तक हुआ। इसी प्रयोग के आधार पर अमृतसर के कम्पनी बाग में 'जगवाला हुआ' का प्रदर्शन 23 नवम्बर 69 से 9 मई 70 तक हुआ। दर्शकों की वहाँ भयंकर भीड़ थी। प्रस्तोता इसे जल्दी समाप्त करके चले जाना चाहते थे परन्तु पंजाब सरकार इसे समाप्त नहीं करवाना चाहती थी। इस त्रिमिश्रित प्रयोग का नाम कर्नल हेमचन्द्र गुप्त ने पेनोसोनिक थियेटर रखा है।

अन्य चमत्कार

नए रंगमंच में यद्यपि चमत्कारिक प्रयोग कम हो गए हैं फिर भी कहीं कहीं सुरक्षित हैं। बादल सरकार ने अपने नाटक 'सारी रात' में अभी कुछ चमत्कार प्रयोगों द्वारा दर्शकों को आकर्षित किया है। इसमें पात्रों की उंगलियों के इशारे पर रोशनी जलती बुझती है और ये सामने खड़े मन की गोपनीय बातें जान लेते हैं। इस कमरे में जो कहा जाता है उसकी अक्सर प्रतिध्वनि भी सुनाई देती है।[2] ऐसे रहस्यमय वातावरण तथा कौतुकी चरित्रों के कारण नाटक चमत्कारिक और कुतूहल पूर्ण सिद्ध होते हैं।

---

1 तीन टके का स्वांग और हिरोशिमा धर्मयुग (12 7 70, सुरेन्द्र वर्मा पृ 20

2 दिल्ली की चिट्ठी धर्मयुग 13 दिसम्बर, 70 सुरेन्द्र वर्मा पृ 30

अर्थ व्यवस्था--

हिन्दी का रंगमंच, अब हेतु वे सब प्रयत्न करता है जो पहले व्यावसायिक रंगमंच करता था। अन्तर इतना ही है कि निम्नस्तरीय लोकप्रिय (फूहड़) प्रदर्शन न करके प्रयोगशील नाटक प्रदर्शित करता है। आज के शौकिया रंगमंच का अर्थ है जो टिकट बेच नाटक दिखाता हो, कलाकारों को पैसा देता हो, हाल किराये पर लेता हो और सरकारी अनुदान प्राप्त करता हो। 1970 में दिल्ली की नाट्य संस्था 'दिशान्तर' ने 4 नाटकों से दस दिवसीय नाट्य समारोह को टिकट लगाकर चलाया जिसमें 'आधे अधूरे' और मौलियर के 'कंजूस' के चार प्रदर्शनों के सारे टिकट समारोह के आरंभ होने से कई दिन पहले ही बिक चुके थे।[1] संवाद और यात्रिक जैसी संस्थाओं से ही दिशान्तर को आर्थिक चातुर्य की शिक्षा मिली है। 1936 तक टिकट की बात किसी ने सोची भी नहीं थी।[2] यह प्रथा 1950 के बाद ही आरंभ हुई प्रतीत होती है। वर्तमान हिन्दी रंगकर्मियों के सामने अर्थ व्यवस्था हेतु टिकट बेचने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। नाट्य प्रेमी जनता स्वेच्छा से अथवा संयोजकों के अनुरोध के कारण टिकट खरीदती है। इनकी दरें 1/-से 25/- तक पाई जाती हैं। टिकटों के मूल्य के अनुसार दर्शकों में श्रेणी भेद कर दिया जाता है। आय कर से बचने के लिए कभी कभी टिकटों के स्थान पर रंग बिरंगे निमंत्रण पत्र बेचे जाते हैं और आर्थिक प्रबंध किया जाता है।

सरकारी योगदान---

मंचन की अर्थ व्यवस्था मात्र टिकटों से नहीं सुलझाई जा सकती। कोई व्यक्ति तथा संस्था भी इसका नियमित प्रबंध नहीं कर सकती है। यह दायित्व अन्ततः प्रशासन पर आता है। गत दो दशकों में इसी दृष्टि से कई सरकारी नाट्य संस्थाएं (अकादमियां) स्थापित की गई हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत संस्थाओं को भी स्फुट रूप से शासन द्वारा अनुदान दिए जाने लगे हैं।

दिल्ली प्रशासन द्वारा स्थापित 'साहित्य कला परिषद्' के नाटक समारोह प्रायः होते रहते हैं। द्वितीय नाटक समारोह जो दिल्ली में हुआ (19 मई से 9 जून 1971 तक) उसमें परिषद् ने भारत के प्रसिद्ध कलाकारों को आमंत्रित किया।

---

1 दिशान्तर साप्ताहिक हिन्दुस्तान 8 नवम्बर 70 श्री जितेन्द्र कुमार पृ 45

2 काशी रंगमंच का वह अप्रतिम चाणक्य साप्ताहिक हिन्दुस्तान 13 सितम्बर 70 श्री सदानन्द पृ 30

इसमें श्री नरेन्द्र शर्मा ने प्रसाद कृत "कामायनी" को नृत्य नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया। सरकार की ओर से उन्हें एतदर्थ विशेष अनुदान दिया गया। इस समारोह में दिनकर का हिरोशिमा अभियान का 'सारी रात' नाटक भी प्रस्तुत किए गए। परिषद् का उद्देश है नाटक को जन जीवन के अधिक निकट लाना तथा दिल्ली की नाट्य संस्थाओं को प्रोत्साहन देना।

संस्कृति के प्रदर्शन एवं विस्तार हेतु राजकीय प्रोत्साहन रंगमंचीय गतिविधियों के आरंभ काल से ही दिया जा रहा है। पहले यह बादशाही था अर्थात् राजा महाराजे कलाकारों को प्रसन्न होकर मुद्राएं अलंकरण अशर्फी, पदक आदि देते थे, अब बादशाहत हट गयी तो शाही (सरकारी) प्रोत्साहन में भी किसी प्रकार की कमी नहीं आई है हां रूप अलग अलग अवश्य हैं। पहले इसे न्योछावर कहते थे अब इसे कहते हैं अनुदान। डा. लक्ष्मी नारायण सुधांशु के शुभ प्रयत्नों के फलस्वरूप 1951 के उत्तरार्द्ध में इन अकादमियों की उत्पत्ति हुई।[1] पंडित जवाहर लाल नेहरू और अब्दुल कलाम आजाद के समय में कला की त्रिवेणी (ललित साहित्य और संगीत) का रूप उभर कर हमारे सामने आता है। सरकार की ओर से इन तीनों अकादमियां (साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी) का निर्माण हो गया और अब यूनियन मिनिस्ट्री आफ एडयुकेशन से इन्हें प्रति वर्ष अनुदान दिया जाता है। ये तीनों अकादमियां सम्पूर्ण भारत में कला की उन्नति हेतु प्रयत्न करती है। हर अकादमी के अलग अलग बोर्ड और जनरल कौंसिल' विभाग होते हैं। ये अकादमियां बोर्ड एवं जनरल कौंसिल द्वारा संचालित होती है। कई बड़े शहरों में सलाह समिति (एडवाइजरी कमीटी) का गठन भी किया जाता है जिसका काम स्थानीय कला प्रोत्साहन की ओर ध्यान देना होता है। इन राज्य और केन्द्रीय अकादमियों का काम संस्थाओं के द्वारा पारस्परिक नाटकों का आयोजन करना विचार गोष्ठियां करना, नृत्य एवं नाट्य समारोह नाट्य प्रशिक्षण शिविर, संगीत समारोह नाट्य अनुसंधान केन्द्र आदि स्थापित करना लोक रंगमंचीय प्रयोजन सर्वेक्षण एवं रिकार्डिंग करना, संस्थाओं को अनुदान देना असमर्थ कलाकारों को आर्थिक सहायता छात्रवृत्तियां, पुस्तकों एवं वाद्य-यन्त्रों के क्रय हेतु अनुदान प्रदान करना मान्यता प्राप्त (पंजीकृत) संस्थाओं को प्रदर्शन और प्रस्तुतीकरण हेतु आर्थिक सहायता देना आदि है। अकादमियों के अपने पुस्तकालय, संग्रहालय, प्रकाशन कार्य, मंच आदि हैं। इनमें कुछ संस्थाएं विशेषतः उल्लेख्य हैं—

---

1 नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6 7 मार्च-अप्रेल 68 पृ 66

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली—

इसके निदेशक श्री ई. अल्काजी हैं। इस विद्यालय का उद्देश्य नाट्य प्रशिक्षण देना है। प्रति वर्ष 12 छात्रों को 200/- रु. महिने छात्रवृत्तियां दी जाती हैं और नाट्य प्रशिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा अवधि 3 वर्ष की होती है। विद्यालय में एक रिपर्टरी ग्रुप भी है जिसमें 6 सदस्य होते हैं। इन्हें 1 वर्ष के अनुबन्ध आधार पर रखा जाता है। इनको प्रति माह 350/- रु. दिए जाते हैं। यह सुविधा केवल अद्वितीय छात्रों को ही प्रदान की जाती है। अधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की अवधि बढ़ायी भी जा सकती है। इस ग्रुप का एक वर्ष में 4 या 5 पूर्णाकी नाट्य प्रस्तुतीकरण अपनी शैली पर करने पड़ते हैं। इसी प्रक्रिया में आथेलो 'थ्री पैनी आपेरा' प्रस्तुत किए जा चुके हैं। मृच्छकटिक भी एक बार खेला जा चुका है। इसमें सभी प्रकार की भाषाओं संस्कृत, मराठी, अंग्रेजी आदि के नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं। यहां तक कि लोक संस्कृति के ठेठ नाट्य को समझने के लिए गुरुओं को बुलाया जाता है। जैसे कुटियाटम यक्षगान, अविपाना, गुरुओं को बुलाकर 6 से 9 महिने तक उनके व्याख्यानों से छात्रों को लाभान्वित किया जाता है। कई नाट्य संस्थाएं जो सरकारी अनुदान के भरोसे उत्पन्न अवश्य होती हैं कभी-कभी सरकारी नियमों का पालन न करने पर नष्ट हो जाती हैं।[1] यही कारण है कि 20 वर्षों से हिन्दी रंगमंच ने अनुपात में उतनी उन्नति नहीं की है जितनी करनी चाहिए थी। इसीलिए यत्र तत्र संगीत नाटक अकादमी की कटु आलोचनाएं होती हैं।[2] किन्तु यह स्थिति सब जगह एक सी नहीं है। उत्तर प्रदेश सरकार का ध्यान इस ओर बहुत गया है। वहां पर सरकार की ओर से काशी में नटराज नाम से एक स्थायी हिन्दी रंगमंचीय संस्था का निर्माण किया गया है। इस संस्था के प्रयास से हिन्दी रंगमंच विकसित हुआ है।[3] सरकार की ओर से ही राम नगर के महाराजा को 80 हजार रुपये प्रति वर्ष रामलीला के आयोजन हेतु दिए जाते हैं। बंगाल में 1969 तक कलकत्ता की अनामिका को 15000 रु. मिले हैं। पर 1970

---

1 रंगमंच के लिए दो सरकारी योजनाएं धर्मयुग 25-9 66 हबीब तनवीर पृ 17

2 हिन्दी मंच के शत्रु और हमारा उत्तर दायित्व नागरी पत्रिका वर्ष 1 अंक 6-7 मार्च, अप्रेल 1968 परिपूर्णानन्द वर्मा पृ 32

—जयपुर का रंगमंच उपलब्धि और सीमाएं धर्मयुग (14 6 70) पृ 21

3 आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव डा उपेन्द्र नारायणसिंह पृ 238

के बाद यह अनुदान ब द हो गया। भाषाओं के प्रचार हेतु सरकार की ओर से धन-राशि मिलती है किन्तु यह सगीत नाटक अकादमी के विचाराधीन है।

राजस्थान सगीत नाटक अकादमी जोधपुर को सन् 1970-71 के वित्तीय वर्ष में राज्य सरकार से कुल 2 00,000 रुपये वार्षिक अनुदान के रूप म प्राप्त हुए जिसमें से कुल 13800 रुपये अनुदान स्वरूप मान्यता प्राप्त सस्थाओ को दिए गये। असमर्थ कलाकारो को 5160 रुपये तथा 2767 रुपये छात्रवृत्ति के रूप में और शोध सर्वेक्षण पर 4300 रुपये अनुदान स्वरूप दिए गये।

रवीन्द्र मच--

भारत सरकार ने देश के बडे-बडे शहरों में मच निर्मित कराए हैं। इनकी भव्य ईमारतो पर लाखो करोड़ों रुपयों की लागत लगाई है और इनके नाम रवी द्र मच, रवीन्द्र सदन, रवीद्रालय रवीन्द्र भवन आदि रखे हैं। इन रवीन्द्र मचो का प्रतिदिन का किराया बहुत अधिक है अत साधारण और मध्यम वित्त स्तरीय सस्थाए तो इसका उपयोग भी नहीं कर सकती।

अनुदान के अतिरिक्त कभी-कभी सरकारी स्तर पर नाटयोजन सम्पन्न होते हैं। राजस्थान सरकार द्वारा सचालित राष्ट्रीय एतता कायक्रम के अन्तगत जयपुर, टोंक, बूदी, कोटा तथा अजमर में भी कुछ नाटक प्रस्तुत हुए हैं उनम श्री कृष्ण चन्दर कृत दरवाज खोलने तथा प्रबोध जोशी कृत ईश्वर अल्ला तेरो नाम' प्रमुख है।[1]

भारत सेवक समाज—

सरकारी सस्थाओं की सहायता से भी कुछ नाटय समारोह सम्पन्न होते रहते हैं। जस कभी कभा भारत सेवक समाज की ओर से भी नाटयायोजन होत दिखते हैं। भारत सेवक समाज प्रयाग न अखिल भारतीय स्वदेशी लीग प्रदशिनी और मेला प्रयाग (27 नवम्बर 1955) से (1 दिसम्बर 55) म रमेश मेहता कृत नाटक हमारा गाव प्रस्तुत किया था जिसमे नीटा प्रयाग के कलाकारो ने भाग लिया था। इसी प्रकार राजस्थान मे भी हिन्दी रगमच के सवाथ भारत सेवक समाज बहुत सक्रिय रहा है।

विज्ञप्ति—

अर्थ व्यवस्था का एक अ य माधन है विज्ञप्ति। इन दिनों विज्ञप्ति के नए-नए प्रयोग दिखाई द रहे है। सम्प्रति, नाटय आयोजनों की सूचना समाचार पत्रों

---

1 दिनमान, 25 जुलाई 71, पृ 9

लाउड स्पीकरों और प्रचार पत्रों (पैम्फलेटों) द्वारा दी जाती है। श्री विनोद रस्तोगी ने अपनी संस्था 'रंग शिल्पी' द्वारा अभिनीत अपने अप्रकाशित नाटक 'दनिक जनतंत्र' व 47 वें प्रस्तुतीकरण की कोरल क्लब रंगशाला में मंचस्थ होने की सूचना अखबार द्वारा दी। इस युग में नाट्याभिनय व पूर्वाभ्यास आदि की सूचनाएं दैनिक समाचार पत्रों में प्राय दृष्टिगत होती हैं। कलकत्ता बम्बई और दिल्ली आदि नगरों के दैनिक समाचार पत्रों में सिनेमा विज्ञप्ति के साथ साथ मंचस्थ होने वाले नाटकों की विज्ञप्तियां प्रकाशित होती रहती हैं। इसमें पात्रों निर्देशकों, संगीतज्ञों पार्श्वगायकों प्रकाश व्यवस्थापकों रूप सज्जा एवं मंच प्रबंध कर्ताओं की पूर्व सूचना मिल जाती है। आज यह प्रचार प्रसार का मुख्य साधन है। स्पष्ट है कि प्रबंध व्यवस्था की दिशा में हिन्दी मंच बहुत प्रयत्नशील और सक्रियरत है।

प्रसाधन—

वर्तमान युग में दो प्रकार के प्रसाधन देखे जाते हैं (1) असाधारण प्रसाधन और (2) साधारण प्रसाधन। असाधारण में पारमीयुगीन चमत्कार प्रदर्शन के उद्देश्य को अलग रखकर एतिहासिक एवं पौराणिक नाट्य प्रदर्शन में पात्रानुकूल वेश विन्यास और रंगरंजन (रंगलेपन) किया जाता है जो कुछ कठिन भी होता है। कभी कभी ऐसे पात्रों का मेकअप समय अधिक ले लेता है। जैसे इस युग के देवानेवल अभिनेता को नारद मुनि बनाने के लिए उसके सिर पर सफेद कपड़ा बांध कर उस पर भिगोई हुई मट (एक प्रकार का पदार्थ जो गरीबों के लिए आज भी साबुन का काम देता है) का लेपन इस प्रकार किया जाता है ताकि सिर के बाल न दिखें। मेकअप करते समय खड़ी शिखा के स्थान पर एक पतली और छोटी दाढ़िका भी लगादी जाती है जिसे बाद में पुष्पों से सुशोभित कर दिया जाता है। ऐसे नाट्य प्रदर्शनों का प्रचलन आज बहुत कम होता है, अस्तु इस प्रकार के कठिन मेकअप की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है कभी कभी सामाजिक और राजनीतिक नाट्य प्रदर्शनों में भी अतिकठिन रंगलेपन की आवश्यकता पड़ जाती है। भयानक मुखाकृतियों-जबड़े का फटा होना नाक का मोटा और टेढ़ा-मेढ़ा होना, आंख का बाहर निकले हुए बताना आदि कठिन रंगलेपन के उदाहरण हैं। यत्र-तत्र नाट्य प्रदर्शनों में इनका अवलोकन किया जा सकता है। साधारण प्रसाधन इस युग की विशेषता है। आज का रंगकर्मी यथार्थ प्रदर्शन चाहता है अतः नाटक की वस्तु और स्थिति के आधार पर रंगलेपन किया जाता है जैसे कोयना नगर का भूकम्प द्वितीय लघुनाटक में भूकम्प से हताहत वृद्ध पुरुष का मेकअप उसकी अर्द्ध-श्वेत दाढ़ी, बढ़े हुए बाल और फटे हुए वस्त्रों के भीतर से दिखाई देने वाला जर्जर गात

मुंह से निकलना हुआ गाढ़ा लहू मांस पेशियों और टूटे हुए घुटनों से बहता हुआ खून आंख और हाथ पर लगी कालिख और कीचड़ बिखरे हुए बाल जैसा रंगलेपन स्थिति अ य रंगलेपन' का उदाहरण है। इस प्रकार के रंगलेपन का करैक्टर मेकअप भी कहा जाता है। अत्यधिक यथार्थ को बताने के लिए मेकअप के उपकरणों को अब बिल्कुल भी प्रयुक्त नहीं किया जाता जैसे क्रेप, फाउंडेशन पेस्ट रूज, लिपिस्टिक आदि का प्रचलन दिनो-दिन समाप्त होता जा रहा है। पात्रों को बिना इन गहरे मेकअप तत्वों के (केवल पाउडर और आंखों पेंसिल का प्रयोग करके) मंच पर उतारा जाता है। आधे अधूरे नाटक इसका एक उदाहरण है। पात्रों के वस्त्रादि भी पात्रानुकूल होते हैं। अतः प्रसाधन, पुनः यथार्थ की ओर अग्रसर हो रहा है। पहले मेकअप अलग कक्ष मे हुआ करता था किन्तु कुछ नाट्य प्रदर्शन ऐसे भी देखे गए हैं, जिनमे अभिनेता दर्शकों के सामने उनके देखते देखते मेकअप करके कुछ का बन जाता है। अर्थात् नाटक क्या है, नाटक कैसे होता है का प्रचलन जो आज हम मंच पर देख रहे हैं वह प्रवत्ति रंगलेपन की दिशा मे भी बढ़ रही हैं। आज सारे परदों को हटा कर परदे के पीछे के भेद को सबों के सम्मुख बनाए जाने की प्रवत्ति को नवीन दिशा का सम्बोधन दिया जा रहा है।

दर्शक—

दर्शक रंगमंच के अभिन्न अंग है। उनकी रुचि ही प्रयोगो का जन्म और प्रोत्साहन देती हैं। प्रबुद्ध दर्शक अपने युग की स्थिति विशेष अथवा घटना विशेष से प्रभावित होते है। यदि उनके सामने पुराने कथानकों को प्रस्तुत किया जायेगा तो वे अनुपात में उतनी रूचि और सहानुभूति नही दर्शायेंगे जितनी वे अपने युग की घटना-विशेष के नाट्य रूप को देखकर व्यक्त करेगें। दर्शक सच्चे अर्थों में सहृदय सामाजिक द्रष्टा और भोक्ता होता है अतः उसका पक्ष भी मननीय है।

आधुनिक नाटकों की प्रस्तुती करण के अनुकूल दर्शकों ने भी अपने आपको ढालने का प्रयत्न किया है। उन्हें न टकघर मे बैठकर नाटक देखने की आदत थी, किन्तु नवीन नाट्य प्रयोगो ने उन्हें सड़क पर चौराहो पर अथवा नुक्कड़ पर खड़ा कर दिया है।[1]

आज दर्शकों की प्रतीक्षा नाटको की एक बड़ी समस्या बनी हुई है। "गोदो के इंतजार में नाटक दर्शकों के कारण 6-30 की जगह 7-30 बजे 'माध्यम' नामक संस्था द्वारा) आरंभ पाया।[2]

---

1 दिनमान (30 मई 1971) पृ 43
— सड़क पर नाटक स्ट्रीट स्टाइल' साप्ताहिक हिन्दुस्तान (5 1-1969) पृ 50

2 गोदो के इन्तजार म साप्ताहिक हिन्दुस्तान 10 दिसम्बर 1970 पृ 57

दर्शकीय प्रतिक्रियाएं

इन दिनों दर्शक समीक्षा पत्र का प्रयोग अतिप्रचलित हो रहा है। इसे अंग्रेजी में 'पब्लिक ओपीनियन पोल' कहते हैं। यह प्रयोग एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। इसका प्रचलन सर्वप्रथम कानपुर में हुआ। वहां की संस्था 'दी एम्बेसेडर्स' (जिसकी स्थापना 1961 में हुई) के द्वारा 1962 में इस प्रकार का प्रयोग पुस्तकाकार[1] रूप में किया गया। इसमें इन्होंने नाटक के विषय में 'जाडे की एक रात' सामाजिकों से उनके विचार व्यक्त करने के लिए एक 'दर्शक सुझाव प्रपत्र' वितरित किया जिसमें दर्शकों से मांग की गयी थी कि वे नाटक के प्रति अपनी राय, शिकायत, सुझाव और मांग प्रकट करें। यह प्रपत्र सुझाव पत्र के साथ-साथ समीक्षा पत्र भी था। इसके अनुसार प्रस्तोता दर्शकों की रुचि को पहचान कर अथवा उनके द्वारा आरोपित दोषों का निवारण कर भविष्य में प्रस्तुतीकरण को श्रेष्ठतर बना सकते हैं। ऐसे प्रयोग भारत के कई स्थानों पर हुए हैं। जोधपुर (राजस्थान), कलकत्ता आदि में भी ऐसे बहुत से प्रयोग हुए हैं।[2]

कई बार दर्शकीय प्रतिक्रियाओं को समेट कर निर्देशक अथवा लेखक उन्हें प्रकाशित करा देते हैं। जैसे चिड़ियों की एक झालर (ले. ममता राय) की प्रतिक्रियाओं को लेखक एवं नाट्य निर्देशक श्री विजय चौहान ने प्रकाशित करके[3] समाज के सम्मुख रख दिया है। इस प्रकार के प्रयोग से यह लाभ हो सकता है कि नाटक के लिए जनता जनार्दन का अभिमत प्राप्त हो जाए और उन्हें भी संतोष लाभ हो। आज के रंगकर्मी मात्र समीक्षक की मान्यता को स्वीकार न कर पूरे दर्शक वर्ग की समीक्षाओं को बहुमत के आधार पर अपनाना चाहते हैं। यह पद्धति पर्याप्त प्रजातान्त्रिक है।

वर्तमान नाटकों में कहीं कहीं पाठ प्रवक्ता (उद्घोषक) द्वारा दर्शकों को पूर्व परिचित करा दिया जाता है ताकि वे विषय वस्तु को भली भांति समझ सकें। एब्सर्ड नाटक स्वयं को दर्शकीय प्रतिक्रिया से दूर घोषित करता है फिर भी दर्शकीय समीक्षाओं और प्रतिक्रियाओं के प्रति सचेष्ट सभी दिखायी देते हैं।

---

1 दी एम्बेसेडर्स पब्लिक रिलेशन्स डिपार्टमेंट, कानपुर नगर महापालिका
2 शिल्प व प्रयोग की कसौटी पर नाट्य मेला अमरदूत (7 अप्रेल 1971) पृ 6-7 तथा दिनमान (11 अप्रेल 1971) डा विश्वनाथ शर्मा पृ 45
3 धर्मयुग 30 मार्च 1969 पृ 53

आज दो प्रकार की समीक्षा प्रणाली (पुस्तकीय एवं प्रदर्शनीय) का प्रचलन है। इस युग की समीक्षा प्रणाली का अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए हिन्दी रंगमंच के समीक्षकों का विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक है, जिससे स्पष्ट हो सके कि समीक्षा प्रक्रिया का क्या नया आयाम है ? रंगमंचीय समीक्षा को उभार कर सामने लाने का श्रेय इस युग की पत्र पत्रिकाओं को है जिन्होंने रंगमंच के लिए एक अलग *स्तंभ बना रखा है। इनमें धर्मयुग साप्ताहिक हिन्दुस्तान नव भारत टाइम्स ब्लिट्ज,* दूतवाणी पत्रिका (राजस्थान) नटरंग आदि मुख्य हैं। इनके साथ साथ स्थानीय पत्र पत्रिकाओं ने भी इस स्तंभ का आरंभ किया है। प्रमुख नाट्य समीक्षकों में कुछ उल्लेखनीय नाम और समीक्ष्यकृतियां प्रस्तुत्य है (1) सुरेन्द्र वर्मा-समीक्ष्य, अजातक, पंछी ऐसे आते हैं (2) एक तमाशा अच्छा खासा आदि।[1]

उक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि समसामयिक हिन्दी रंगमंच शिल्प-प्रयोग स्तर और अपनी विविध कलात्मक उपलब्धियों के कारण महत्वपूर्ण है। इसने परिमाण तथा उत्कृष्टता दोनों दृष्टियों से अन्य विदेशी विभाषी रंगमंचों से सफल स्पर्धा की है और अपनी अनन्त सम्भावनाओं सहित यह अनुदिन प्रगति की ओर उन्मुख दिखाई देता है। वस्तुतः भविष्य इसका वास्तविक निर्णायक होगा।

---

1 अजातक, पंछी से आते हैं और लक नाट्य धर्मयुग (2 मई 1971) पृ 22

समापन –

हिन्दी रंगमंच का भविष्य

हिंदी की रंग परम्परा का क्रमिक विकास हम उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1868 ई.) से ही दिखायी देता है। इससे पूर्व संस्कृत प्रभावित नाटक पारसीक शिल्प लोक नाट्य आदि परम्पराएं अवश्य विद्यमान थी, किन्तु हिंदी रंगमंच का स्वरूप भारतेन्दु काल में ही निर्धारित हो सका। इसके पश्चात् यह कला उत्तरोत्तर विकसित होती रही। आज हिंदी रंगमंच के पास अपना बहुत कुछ है अस्तु इसे पूर्णत: मौलिक और निजी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। अब यह धारणा प्राय: निर्मूल सिद्ध हो गई है कि हिंदी का अपना कोई रंगमंच नहीं है।

हिंदी रंगमंच ने भारतेन्दु काल मे अपना जो स्वरूप निर्धारित किया था वह बडा क्रांतिकारी था और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना तथा देशभक्ति से प्रणोदित था। उस समय इसके दो प्रमुख लक्ष्य थे–(1) पारसी रंगमंच की बढती हुई दुराचारिता (दूषित कला) को परिष्कृत करना और (2) शासन के नर संहारी स्वरूप को समाप्त करने के लिए व्यंग्यात्मक प्रहसनो द्वारा सुसुप्त जन जीवन में जागृति का शंखनाद करना और भारतीयों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रेरित करना। इस द्विउद्देशीय साधना मे तत्कालीन निष्काम रंगकर्मी कमर कस कर जुट गये। उन्हें अपने कार्य में तो सिद्धि प्राप्त हुई ही साथ ही अपने रंगकर्म द्वारा उन्होंने हिंदी रंगमंच की श्रीवृद्धि की।

उत्तर भारतेन्दु रंगकर्मियों ने पूर्ववर्ती कला तत्वो को ग्रहण करते हुए विदेशी नाट्य कला का आत्मसात किया। इनके प्रयासों प्रयोगो और प्रारूपों का हिन्दी पर पर्याप्त प्रभाव पडा। श्रमशील किन्तु साधनहीन (साधन सुविधा विहीन) हिन्दी

रंगकर्मी आज भी इस दिशा में यत्नशील हैं। यद्यपि भारत के अन्य विभाषीय रंगमंच जैसे मराठी, गुजराती, बंगला आदि की तुलना में हिन्दी मंच अभी उतना सम्पन्न नहीं है फिर भी अब वह उल्लेखनीय अवश्य है। आज हम इतना गर्वपूर्वक कह सकते हैं कि हिन्दी का एक अपना रंगमंच है।

हिन्दी रंगमंच को सर्वांगीण बनाने के लिए हमें कुछ उदाहरणों एवं तत्वों की ओर विशेष ध्यान देना है। भरतमुनि ने नाटक को पंचमवेद 'नाट्यवेद' की संज्ञा देकर इसे उच्चकुलीन वर्ग के लिए ही सीमित कर दिया था। फलतः समाज का बहुसंख्यक निम्नकुलीन वर्ग इससे वंचित रहा। इस वर्ग ने अपने मनोरंजन के लिए नाटक में लोकनाट्य (नौटंकी, माच, ख्याल, छिद्दनी कला, भईती आदि को प्राथमिकता दी। दूसरी ओर लीला नाटकों ने इसे धार्मिक रूप दे दिया। इस भेद भाव के कारण एक विकट समस्या खड़ी हो गई। उच्चकुलीन एवं प्रजातंत्र वर्गीय दर्शक और प्रतिभासम्पन्न अभिनेता एक दूसरे की अभिरुचि को समझने एवं संचित करने से वंचित हो गये। परिणाम यह हुआ कि दोनों ही कलाएं पनप नहीं पायीं। भारतेन्दुकाल की मंडली जैसी सस्ती प्रहसनपूर्ण और विद्रूपात्मक प्रस्तुतियों को पारसियों ने अपने मंच में आत्मसात कर भारतीय दर्शकों को आकृष्ट किया और अपना व्यापार आरंभ कर दिया। इसकी प्रतिक्रियावश हिन्दी रंगमंच का शुद्ध साहित्यिक रूप स्थापित किया गया। किन्तु चलचित्रों की सस्ती मनोरंजक सामग्री लोकप्रियता के कारण हिन्दी रंगमंच जन साधारण को अपने शुद्ध साहित्यिक रूप की ओर नहीं आकृष्ट कर पाया। स्वतन्त्रतापूर्व के हिन्दी रंगमंच में स्वरूप निर्धारण का यही अस्तित्व संघर्ष दिखाई देता है। इस कालावधि में नाटक मंच से दूर चला गया और मात्र पाठ्य नाटक बन गया। आधुनिक मंच इन समस्याओं से परिचित है और संघर्षरत भी। वह अपने शुद्ध साहित्यिक रूप की ओर कला प्रेमी दर्शकों को लाने में सफल भी हो रहा है। भले मन ही ऊल जलूल (एब्सर्ड) प्रस्तुतीकरणों को भारत का 90 प्रतिशत दर्शक पसन्द न कर पाए पर नाट्य प्रयोगों को तो नया दर्शकवृन्द महत्व देता ही है। हिन्दी रंगकर्मी कभी कभी पश्चिम की नकल में अत्याधुनिक प्रयोग कर डालते हैं फलतः वे लोकप्रिय नहीं होते। भारतीय जनजीवन चूंकि अभी एब्सर्डिटी से अपरिचित है अस्तु भारतीय दर्शकों का एबसर्ड नाट्य प्रस्तुतीकरणों को पसन्द न आना भी स्वाभाविक है।

किन्तु कुछ एब्सर्ड प्रयोग ऐसे हैं जो पूर्णांकी अथवा एकांकी नाटकों में न आकर एकाभिनयों, पैरोडियों में आते हैं व जनता को निःसन्देह प्रभावित करते हैं

क्योंकि उनका रूप और शैली वैविध्य हास्य के माध्यम से जनता को आनन्दित करता है। सर्वश्री मोहनसिंह रवि वर्मा राजेश पवार, डा राजदान के ऐसे ही प्रयोग हैं। यहां तक कि उद्घोषक के द्वारा उनके नाम की उद्घोषणा के साथ ही दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट से सम्पूर्ण दर्शपीठ गूंज उठता है। परन्तु महज हास्य ही सब कुछ नहीं है। गम्भीर नाट्य प्रस्तुतियों को समझाने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता है। रंगबोध एक गहन साधना है जिसमें प्रस्तोता की सूझ कला, शैली और अभिव्यक्ति की परीक्षा होती है कि वह कहां तक दर्शकों को समझाने में सफल होता है। इसीलिए आज के रंगकर्मियों को दर्शक रुचि का धीरे-धीरे परिष्कार करना होगा। हिंदी का दर्शक आज अपेक्षाकृत बहुत कला सचेत है। इसे यदि अपना अंतिम लक्ष्य मानकर चला जाएगा तो हिन्दी नाट्य निश्चय ही उत्तरोत्तर विकसित होगा रहेगा। आज आवश्यक है कि रंगमंच को अधिकाधिक व्यावहारिक रूप दिया जाए। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया जाए, और प्रायोगिक शिक्षा के लिए रंगमंचीय वर्कशाप और डिप्लोमा कोर्स चालू किए जाय।

सरकार की ओर से भी इस ओर नाटक प्रभाग संगीत नाटक अकादमी, ललित कला अकादमी, साहित्य अकादमी जैसी संस्थाएं खुली हुई हैं जो हिंदी रंगमंच के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सरकार के द्वारा निर्मित भव्य प्रासाद (रवीन्द्र मंच, रवीन्द्रालय, रवीन्द्र भवन आदि) हिन्दी रंगमंच के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है परन्तु फिर भी कर्तव्य शेष है। सरकारी योगदान की वृद्धि की जाए और भारतीय लोकनाट्यों का आधुनिकरण करके एक नागर रूप प्रदान किया जाए। रंगमंचीय प्रदर्शनों के लिए हर प्रकार से प्रतिबंध भी समाप्त कर देने चाहिए। कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में नाट्य प्रस्तुतियों के लिए कलेक्टर से आज्ञा लेनी पड़ती है। ऐसे कठोर अधिनियमों को निरस्त किया जाना चाहिए क्योंकि इन औपचारिक पूर्तियों के कारण इसकी उन्नति में बड़ा बाधा पहुँचती है। मंचों की सरकारी व्यवस्था भी इसी दृष्टि से अपरिहार्य है। सम्प्रति सांस्कृतिक दलों को बाहर भेजने की जो प्रथा है वह भी परिमार्जनीय है। विदेशों में प्रतिनिधिमंडल भेजने से पहिले अपने देश में नाट्य मंडल भेजे जाने चाहिए।[2] और अनुदान देने की सरकारी योजनाओं[2] में पर्याप्त सुधार किया जाना चाहिए।

---

1 लोक शैली की ओर दिनमान (7 मार्च, 1971) पृ 45

2 रंगमंच के लिए नई सरकारी योजनाएं धर्मयुग (25 सितम्बर 1966, पृ 17) श्री हबीब तनवीर

आज सिने जगत की दृष्टि भी रंगमंचीय कलाकारों की ओर बड़ी आतुरता से बढ़ती प्रतीत हो रही है क्योंकि हिंदी रंगमंच के कलाकार सर्व श्री ओम शिवपुरी ए के हंगल, अमरीश पुरी सत्यदेव दुबे दिनेश ठाकुर आदि ने अपनी सहज और स्वाभाविक भूमिकाओं से जो प्रभाव जमाया है वह कमिमाल है। इससे हिंदी रंगमंच और भी प्रतिष्ठित हुआ है। इस प्रकार हिन्दी रंगमंच ने अपनी विकास यात्रा के कई चरण पूर कर लिए हैं किंतु अभी इसका गंतव्य अप्राप्य है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इस रंगमंच को जन जीवन के मनोरंजन ज्ञान-वर्धन और उद्बोधन का विषय बनायें। इसके लिए हिन्दी मंच को त्रिकोणात्मक संघर्ष झेलना होगा। उसे एक ओर हिंदी सिने संसार से होगी दूसरी ओर हिन्दी के परम्परित सतही नाटय ...नों का करना होगा और अंत में हिन्दी की एक ... संस्थापित करना होगा। इस कलात्मक ... साथ वयक्तिक और संस्थागत प्रयत्न ... भविष्य अत्यन्त समुज्ज्वल है। उसकी ... सकती है पर भविष्य की ता अनंत